ISSN: 3049-2211

कृषक मंच

मासिक कृषि पत्रिका

खंड-2 अंक- 7, जुलाई- 2026

Krishakmanch.com

कृषक मंच

मासिक कृषि पत्रिका

ISSN: 3049-2211

सम्पादक मंडल

डा. देवराज सिंह

मुख्य सम्पादक
सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष
सब्जी विज्ञान विभाग
कृषि विज्ञान विभाग, इनवर्टिस विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

प्रिया पाण्डेय

सहायक मुख्य सम्पादक
शोधार्थी
ए.के.एस. विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)।

सहायक सम्पादक

डा. विक्रमा प्रसाद पाण्डेय
पूर्व अधिष्ठाता (उद्यान महाविद्यालय)
आ. न. दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)।

डा. अरविन्द कुमार चौरसिया
सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)।

डा. महेन्द्र कुमार यादव
सहायक प्राध्यापक (सब्जी विज्ञान)
आर.एन.बी. ग्लोबल विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)।

डा. वर्तिका सिंह
सहायक प्राध्यापक (फल विज्ञान)
आई.टी.एम. विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)।

डा. सचि गुप्ता
सहायक प्राध्यापक (पुष्प विज्ञान)
आ. न. दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)।

डा. रविकेश कुमार पाल
सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)
रामा विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)।

डा. सरिता
सहायक प्राध्यापक (पौध रोग विज्ञान)
आर.एन.बी. ग्लोबल विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)।

डा. रविशंकर
सहायक प्राध्यापक (कीट विज्ञान)
स.व.भा.प.कृ. एवं प्रौ. वि.वि., मेरठ (उ.प्र.)।

डा. देवेश तिवारी
सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, तूरा कैंपस (मेघालय)।

डा. कुमार अंशुमान
सहायक प्राध्यापक (मृदा विज्ञान)
के.एन.आई.पी.एस.एस., सुल्तानपुर (उ.प्र.)।

डा. मंजीत कुमार
सहायक प्राध्यापक
लिंगायस विद्यापीठ, फरीदाबाद, हरियाणा।

डा. विवेक पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)
इनवर्टिस विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

डा. कल्याण सिंह
स्वतंत्र लेखक
बांदा कृ. एवं प्रौ. वि.वि., बांदा (उ.प्र.)।

डा. शिवशंकर पटेल
शोधार्थी
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)।

ISSN: 3049-2211

विषय वस्तु

क्र.सं.	विवरण	पृष्ठ सं.
1	अंगूर की बेलों का गूटी कलम (Air Layering) द्वारा तीव्र एवं अनुकूल पौध उत्पादन।	4-6
2	सब्जी फसल जैवसंवर्धन प्रच्छन: भुखमरी तथा पोषण सुरक्षा का उपयोगी निदान।	7-11
3	खेतों से पेट्रोल पंप तक एथेनॉल क्रांति (ई20) और बदलती भारतीय कृषि।	12-14
4	भारत-विस्तार (Bharat-VISTAAR)।	15-16
5	जैविक कृषि में समेकित रोग प्रबंधन: वर्तमान समय की मांग।	17-19
6	मोरिंगा (सहजन): पशुपालन के लिए एक स्थायी और 'चमत्कारी' चारा संसाधन।	20-22
7	धान की नर्सरी तैयार करने की वैज्ञानिक विधि।	23-25
8	कृषि में कृत्रिम बुद्धि (आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) का बढ़ता उपयोग।	26-30
9	पशुधन उत्पादों का विपणन।	31-33
10	डिजिटल भारत और कृषि विपणन: e-NAM की बदलती तस्वीर तथा विकसित भारत @2047 की दिशा में इसकी भूमिका।	34-37
11	जैविक खेती की प्रमुख चुनौतियां, समाधान, अवसर और भविष्य: एक परिदृश्य।	38-42
12	कवक: जैव नियंत्रण एजेंट।	43-45
13	मृदा एवं जल प्रदूषण में सूक्ष्म प्लास्टिक की भूमिका।	46-51
14	दूध के विभिन्न उत्पाद बनाने की वैज्ञानिक विधियां।	52-56
15	आक, नीम और धतूरा: रसायन मुक्त खेती की प्रभावी तकनीक- प्राकृतिक संसाधनों से टिकाऊ कृषि की ओर एक प्रभावी कदम।	57-58
16	धान का गुणवत्तापूर्ण बीज उत्पादन।	59-66
17	नीमास्त्र: प्राकृतिक कीट प्रबंधन की एक प्रभावी जैविक तकनीक।	67-68
18	पराली से पर्यावरण-अनुकूल विश्राम कुटी: कृषि अवशेषों के सतत उपयोग का एक नवाचार।	69-71
19	हरित खाद: मृदा उर्वरता का प्राकृतिक आधार।	72-76
20	प्राकृतिक खेती एवं जैविक खेती: अंतर, लाभ, चुनौतियाँ एवं भविष्य की संभावनाएँ।	77-81
21	सूक्ष्म पोषक तत्वों का फसल उत्पादन एवं गुणवत्ता पर प्रभाव।	82-86
22	जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों का संतुलित उपयोग: लाभ और चुनौतियाँ।	87-90
23	कार्बन संचयन: जलवायु परिवर्तन से निपटने का प्रभावी उपाय।	91-94
24	जैव-चार (Biochar): मृदा सुधार एवं कार्बन संरक्षण का नवीन विकल्प।	95-99
25	पशुपालन में कृत्रिम गर्भाधान : एक वैज्ञानिक एवं लाभकारी दृष्टिकोण	100-101
26	डेयरी पशुओं में अमदकाल (गर्मी में न आना): प्रमुख कारण, निदान एवं वैज्ञानिक बचाव	102-103

अंगूर की बेलों का गूटी कलम (Air Layering) द्वारा तीव्र एवं अनुकूल पौध उत्पादन

राम भास्कर वाघ

पीएच.डी. शोधार्थी

फल विज्ञान विभाग, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू एवं कश्मीर।

अंगूर (*Vitis spp.)* विश्व की एक महत्वपूर्ण फल फसल है, जिसका उपयोग टेबल ग्रेप्स, किशमिश, रस तथा वाइन निर्माण के लिए व्यापक रूप से किया जाता है। अंगूर के बाग की सफल स्थापना के लिए स्वस्थ, सशक्त तथा मूल किस्म के गुणों को बनाए रखने वाली गुणवत्तापूर्ण पौध सामग्री का उपलब्ध होना अत्यंत आवश्यक है। परंपरागत रूप से अंगूर का प्रवर्धन मुख्यतः हार्डवुड कटिंग्स द्वारा किया जाता है। यद्यपि यह विधि कई वर्षों से सफलतापूर्वक अपनाई जा रही है, फिर भी गुणवत्तापूर्ण रोपण योग्य पौधे तैयार होने में सामान्यतः डेढ़ से दो वर्ष का समय लग जाता है। उच्च गुणवत्ता वाली पौध सामग्री की बढ़ती मांग तथा उन्नत किस्मों एवं रूटस्टॉक के तीव्र गुणन की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए वैकल्पिक प्रवर्धन तकनीकों का महत्व बढ़ रहा है। गूटी कलम (Air Layering) ऐसी ही एक प्रभावी एवं व्यावहारिक विधि है। इस तकनीक में शाखा को मातृवेल से जुड़े रहने के दौरान ही उस पर जड़ों का विकास कराया जाता है। परिणामस्वरूप नई जड़ें बनने तक उस शाखा को मातृवेल से जल एवं पोषक तत्वों की निरंतर आपूर्ति होती रहती है।

इस तकनीक के माध्यम से अंगूर के पौधों का उत्पादन कम समय में किया जा सकता है। यह विधि किसानों, नर्सरी संचालकों तथा शोधकर्ताओं के लिए विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

अंगूर में गूटी कलम क्यों करें?

पारंपरिक हार्डवुड कटिंग्स विधि में कलमों का संग्रह, नर्सरी में उनमें जड़ें विकसित करना, पुनः रोपण करना तथा उनका रखरखाव करना जैसे कई चरण शामिल होते हैं। इस प्रक्रिया में अधिक समय, श्रम तथा लागत की आवश्यकता होती है।

गूटी कलम विधि के निम्नलिखित लाभ हैं:

1. पौध उत्पादन तेजी से होता है।
2. पौधों के जीवित रहने का प्रतिशत अधिक होता है।
3. मूल किस्म के गुणों का संरक्षण होता है।
4. अंगूर के बाग में निकलने वाले अनावश्यक फुटवों (Suckers) का उपयोग किया जा सकता है।
5. अतिरिक्त आय का स्रोत विकसित होता है।
6. नर्सरी में पौध तैयार करने की अवधि कम हो जाती है।

आवश्यक सामग्री

गूटी कलम के लिए निम्नलिखित सामग्री की आवश्यकता होती है: धारदार ग्राफ्टिंग या बडिंग चाकू, सेकैटर्स, IBA (Indole-3-Butyric Acid) 3000 पीपीएम घोल, रूई, नम स्फैग्नम मॉस, 200 गेज

मोटाई की पारदर्शी पॉलीथीन शीट, धागा या प्लास्टिक टाई, ग्रोइंग बैग तथा उपयुक्त वृद्धि माध्यम (Potting Media)।

प्रायोगिक विधि

मातृ वेलों का चयन

यह प्रयोग निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

1. 3.0 मी × 1.8 मी की दूरी पर लगाए गए 6 से 7 माह पुराने रूटस्टॉक पौधों पर, अथवा
2. स्थापित अंगूर बागों में निकलने वाले स्वस्थ फुटवों (Suckers) पर।

प्रयोग के लिए रोगमुक्त, सशक्त एवं स्वस्थ वेलों का चयन करना चाहिए। प्रयोग की अवधि के दौरान सभी अनुशंसित बागवानी प्रबंधन क्रियाओं का पालन किया जाना चाहिए।

इच्छित किस्म का ग्राफ्टिंग

उपयुक्त रूट स्टॉक पर इच्छित अंगूर किस्म की पेंसिल मोटाई वाली, परिपक्व एवं स्वस्थ शाखाओं का ग्राफ्टिंग करना चाहिए। कलम के सफल होने के बाद अच्छी वृद्धि वाली स्वस्थ वेलों का चयन गूटी कलम के लिए किया जाना चाहिए।

गूटी कलम हेतु शाखाओं का चयन

गूटी कलम के लिए चयनित शाखा स्वस्थ, सशक्त एवं सक्रिय वृद्धि वाली होनी चाहिए। शाखा की मोटाई पेंसिल के समान हो तथा उस पर 7 से 8 अच्छी तरह विकसित गांठें (Nodes) उपस्थित हों। दो गांठों के बीच की औसत दूरी 6 से 7 सेमी होनी चाहिए। सशक्त शाखाओं में जड़ों के निर्माण की क्षमता सामान्यतः अधिक होती है।

छाल हटाना (Girdling)

चयनित शाखा पर भूमि सतह से लगभग 10 सेमी ऊँचाई पर दो गांठों (Nodes) के मध्य लगभग 2 सेमी चौड़ाई की छाल को पूर्णतः हटा देना चाहिए। यह कार्य एक धारदार एवं स्वच्छ चाकू की सहायता से किया जाना चाहिए।

छाल हटाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि शाखा के अंदरूनी काष्ठीय भाग को कोई क्षति न पहुँचे। छाल हटाने से भोजन पदार्थों तथा वृद्धि को प्रोत्साहित करने वाले तत्वों का नीचे की ओर संचरण रुक जाता है। परिणामस्वरूप ये तत्व घाव के ऊपरी भाग में एकत्रित होकर जड़ों के निर्माण को प्रोत्साहित करते हैं।

मूल प्रवर्धक हार्मोन का उपयोग

छाल हटाए गए भाग पर IBA (Indole-3-Butyric Acid) 3000 पीपीएम घोल को रूई की सहायता से समान रूप से लगाना चाहिए। IBA के प्रयोग से जड़ों का निर्माण शीघ्र होता है तथा जड़ों की संख्या, लंबाई एवं गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

गूटी बांधना

IBA लगाने के पश्चात छाल हटाए गए भाग के चारों ओर नम स्फैग्नम मॉस लगाया जाता है। इसके बाद इस भाग को 200 गेज मोटाई वाली पारदर्शी पॉलीथीन से अच्छी तरह लपेटकर दोनों सिरों को धागे से कसकर बाँध दिया जाता है। इससे आवश्यक आर्द्रता बनी रहती है तथा जड़ों के विकास के लिए अनुकूल वातावरण तैयार होता है। पारदर्शी पॉलीथीन के कारण जड़ों की वृद्धि का आसानी से अवलोकन किया जा सकता है।

जड़ों के निर्माण का अवलोकन

सामान्यतः 20 से 30 दिनों के बाद स्फैग्नम मॉस के भीतर नई जड़ें दिखाई देने लगती हैं। पारदर्शी पॉलीथीन के कारण जड़ों की वृद्धि का बाहरी रूप से अवलोकन किया जा सकता है। पर्याप्त जड़ें विकसित होने तक गूटी को मातृवेल से जुड़ा रहने देना चाहिए।

पॉलीथीन हटाने के बाद गूटी में विकसित जड़ें।

जड़युक्त गूटी को अलग करना

पर्याप्त मात्रा में जड़ें विकसित होने के बाद सेकैटर्स की सहायता से जड़ों के नीचे वाले भाग से एक साफ कट लगाकर गूटी को मातृ वेल से अलग कर लेना चाहिए। इस दौरान नई विकसित जड़ों को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचे, इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए।

गूटी का रखरखाव

मातृ वेल से अलग की गई गूटी को छायादार स्थान पर रखना चाहिए। पॉलीथीन को सावधानीपूर्वक हटाना चाहिए तथा जड़ों के चारों ओर मौजूद स्फैग्नम मॉस को यथासंभव यथावत रहने देना चाहिए। जड़ों को अधिक छेड़छाड़ या संभालने से उन्हें नुकसान पहुँच सकता है, जिससे पौधों के जीवित रहने का प्रतिशत कम हो सकता है।

नर्सरी की स्थापना

जड़युक्त गूटी को उपयुक्त वृद्धि माध्यम (Growing Media) से भरे ग्रोइंग बैग में लगाना चाहिए। वृद्धि माध्यम के रूप में मिट्टी, रेत तथा अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद अथवा कोकोपीट के मिश्रण का उपयोग किया जा सकता है। प्रारंभिक अवस्था में पौधों को आंशिक छाया में रखकर उनका उचित रखरखाव करना चाहिए। नियमित सिंचाई करने से पौधों की वृद्धि अच्छी होती है।

जड़युक्त गूटी का ग्रोइंग बैग में प्रत्यारोपण।

उपयोगिता एवं आर्थिक महत्व

गूटी कलम अंगूर उत्पादकों के लिए एक तीव्र एवं कम लागत वाली प्रवर्धन विधि है। अंगूर के बागों में नियमित रूप से हटाए जाने वाले फुटवों (Suckers) का उपयोग पौध उत्पादन के लिए किया जा सकता है। इससे उपलब्ध पौध सामग्री का बेहतर उपयोग संभव होता है। इस विधि की सहायता से किसान अपनी छोटी नर्सरी स्थापित कर सकते हैं, बाहरी स्रोतों से पौध खरीदने पर निर्भरता कम कर सकते हैं तथा अतिरिक्त पौधों की बिक्री करके अतिरिक्त आय अर्जित कर सकते हैं। कम लागत, सरल क्रियान्वयन तथा तीव्र पौध उत्पादन इस तकनीक की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

प्रत्यारोपण के 20 दिनों बाद पौधों की वृद्धि।

निष्कर्ष

गूटी कलम अंगूर की बेलों के तीव्र, प्रभावी एवं किफायती प्रवर्धन की एक महत्वपूर्ण विधि है। इस तकनीक में शाखा मातृवेल से जुड़ी रहने के दौरान ही जड़ों का विकास होता है, जिससे पौधों के जीवित रहने की संभावना बढ़ जाती है तथा पौध उत्पादन में लगने वाला समय कम हो जाता है। उत्कृष्ट किस्मों, रूटस्टॉक तथा अंगूर बागों में निकलने वाले फुटवों के गुणन के लिए यह तकनीक विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हो सकती है। गूटी कलम को अपनाकर किसान कम समय में गुणवत्तापूर्ण पौधे प्राप्त कर सकते हैं तथा नर्सरी व्यवसाय के माध्यम से अतिरिक्त आय अर्जित करने का अवसर भी प्राप्त कर सकते हैं।

*****

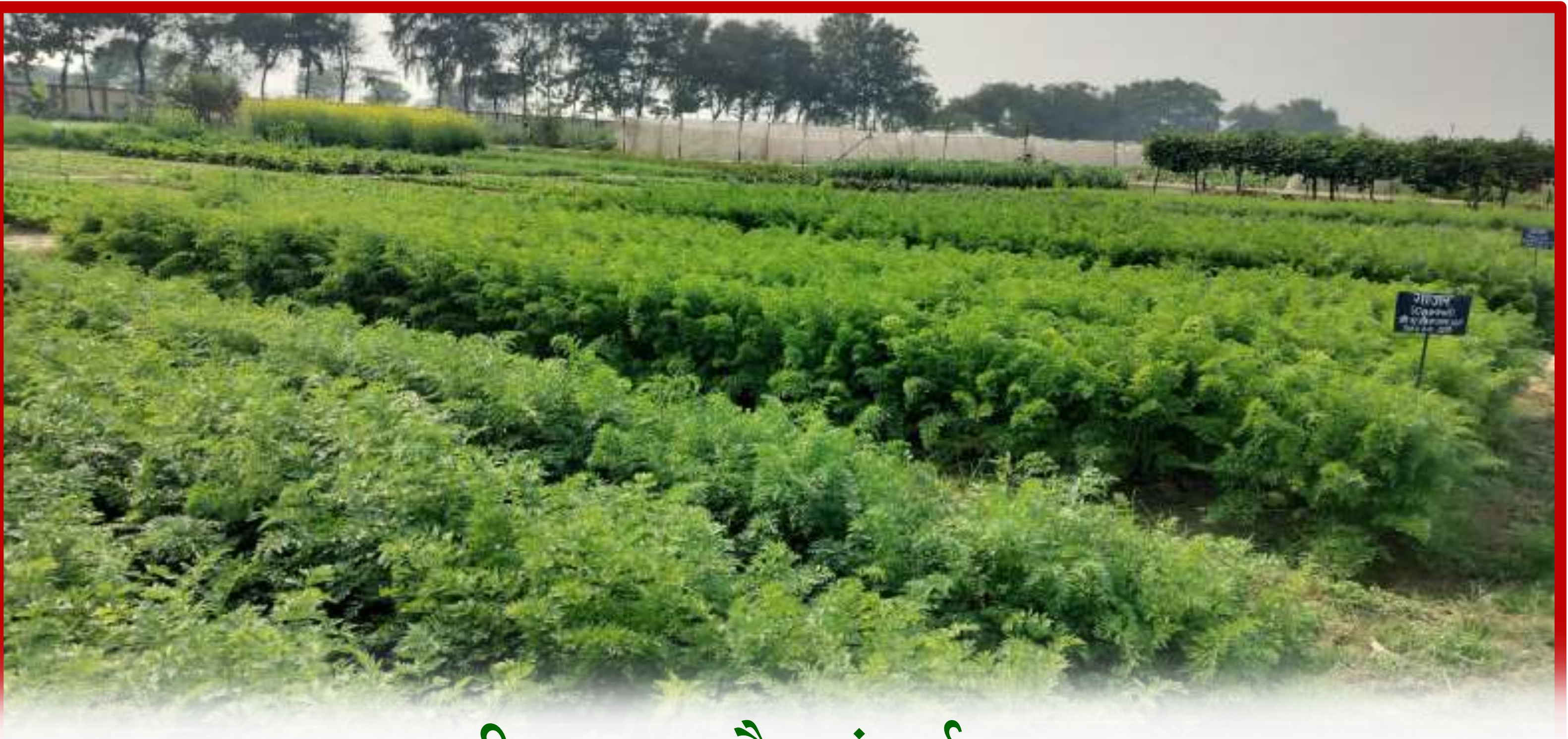

सब्जी फसल जैवसंवर्धन प्रच्छन
भुखमरी तथा पोषण सुरक्षा का उपयोगी निदान

[1]**डॉ. कल्याण सिंह***- शोध छात्र, [2]**डॉ. नीतू**- सहायक प्राध्यापक, सब्जी विज्ञान
[3]**डॉ. सत्यव्रत द्विवेदी**- प्राध्यापक, सब्जी विज्ञान, [4]**डॉ. धीरेन्द्र कुमार सिंह**- सहायक प्राध्यापक, मूल एंव सामाजिक विज्ञान विभाग
[5]**डॉ. शालिनी पुरवार**- सहायक प्राध्यापक, मूल एंव सामाजिक विज्ञान विभाग
बांदा कृषि एंव प्रद्योगिक विश्वविद्यालय, बांदा (यू.पी.)

"बढ़ती जनसंख्या हेतु खाद्य सुरक्षा मुहैया कराने की गंभीर चुनौती और खाद्य सुरक्षा मिशन के द्वारा उसकी पूर्ति एंव उसकी सफलता तथा आत्मनिर्भरता के बाद वर्तमान परिवेश में देश के किसानो नागरिको के लिए खाद्य सुरक्षा के बाद कुपोषण, प्रच्छन भुखमरी के प्रति चुनौतियों के साथ ही उसके निदान के साथ ही पोषण सुरक्षा उपलब्ध कराना वर्तमान दौर की गंभीर चुनौती है। मनुष्य के सम्पूर्ण शारीरिक विकास के लिए भोजन में संतुलित मात्रा में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन, खनिज लवण तत्वों का होना नितांत आवश्यक है। भोजन में उक्त आवश्यक तत्वों की कमी से कुपोषण तथा प्रच्छन भुखमरी आज की गंभीर चुनौती बनी हुई है जिसका मुख्य कारण पौष्टिक आहार पोषण तत्वों की कमी है। इस गंभीर चुनौती एंव समस्या के निजात हेतु आहार विविधिकरण, संवर्धन और फसल संवर्धन का उपयोग सब्जियों में किया जा रहा है।"

परिचय:

सन 2001 में अन्तराष्ट्रीय उष्ण कटिबंधीय अनुसंधान के स्टीव बीबे ने जैव – संवर्धन शब्द का प्रयोग किया था . जैव संवर्धन एक ऐसी विधि है जिसमें सस्य , पादप प्रजनन तथा पराजीनी तकनीकि माध्यमों द्वारा पौधों के खाद्य भाग में विटामिन और खनिज तत्वों के अंश की मात्रा को बढ़ाया जाता है।

विश्व में खाद्य सुरक्षा और पोषण की स्थिति (SOFI) रिपोर्ट - 2026 के अनुसार भारत में भुखमरी की स्थिति को रेखांकित किया है तथा उसकी प्रगति रिपोर्ट को को प्रस्तुत किया गया है। वैश्विक परिदृश्य के मामले में अनुमानित 7.8 प्रतिशत वैश्विक आबादी 2025 में भुखमरी का सामना कर रही थी, जो सन 2024 में 8.1 प्रतिशत और सन 2022 में 8.6 प्रतिशत थी। भारतीय परिपेक्ष्य के दृष्टिकोण मे कुल कुपोषित आबादी सन 2023–2025 में कुपोषण 142.5 मिलियन (कुल आबादी का 9.8%), जबकि सन 2004–2006 में यह 243.9 मिलियन (21.1%) था।

यूनिसेफ़ (UNICEF) की चाइल्ड न्यूट्रिशन रिपोर्ट के मुताबिक, 5 से 19 साल के बच्चों में 9.4% बच्चे अधिक वजन या मोटापे से प्रभावित हैं। इसका तात्पर्य यह है कि भारत कुपोषण का डबल बोझ झेल रहा है। जहाँ लाखों बच्चे अभी भी जरूरी पोषक तत्वों की कमी से जूझ रहे हैं, वहीं कई अन्य बच्चे ऐसे हाई-कैलोरी आहार का सेवन करते हैं जिनमें स्वस्थ विकास के लिए आवश्यक विटामिन और मिनरल्स की कमी होती है।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रकाशित 2025 की स्टेट ऑफ फूड सिक्योरिटी एंड न्यूट्रिशन इन द वर्ल्ड रिपोर्ट के अनुसार, सन - 2024 में

पांच साल से कम उम्र के 18.7% भारतीय बच्चे कुपोषण का शिकार थे, जिससे भारत में बच्चों में कुपोषण दर सबसे ज्यादा है। इस गंभीर कुपोषण के कारण 2.1 करोड़ से अधिक बच्चे प्रभावित हैं।

राज्यवार भुखमरी के आकडे:

भारत में बाल कुपोषण समान रूप से नहीं फैला हुआ है। झारखंड (54.5%), बिहार (53.0%), उत्तर प्रदेश (52.0%), मध्य प्रदेश (51.0%), और गुजरात (50.5%) जैसे राज्य अभी भी सबसे उच्च दरें दर्ज कर रहे हैं। बेहतर मातृ शिक्षा, सुधरी हुई स्वास्थ्य सेवाएं, और मजबूत सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली ने केरल जैसे राज्यों को काफी कम आंकड़े हासिल करने में मदद की है।

गुजरात में, खराब पोषण अक्सर व्यापक सामाजिक चुनौतियों से जुड़ा होता है, जैसे कि शिक्षा में व्यवधान और वित्तीय कठिनाइयाँ। जो बच्चे जल्दी स्कूल छोड़ देते हैं, उन्हें नियमित भोजन और बुनियादी स्वास्थ्य सहायता तक पहुँच भी खो सकती है। गुजरात में स्कूल से बाहर बच्चे: कारण और बढ़ती संकट के बारे में इस मुद्दे को और जानें।

हाल के अनुमान के अनुसार, पांच साल से कम उम्र के बच्चों में करीब 45% मौतें कुपोषण से जुड़ी हैं। कई मामलों में, सही पोषण की

कमी से प्रतिरक्षा प्रणाली कमजोर होती है, जिससे आम बीमारियों से बच पाना काफी मुश्किल हो जाता है।

जैव–संवर्धन की प्रमुख विधिया: जैव – संवर्धन की प्रमुख रूप से तीन विधिया है –

- सस्य जैव – संवर्धन
- परंपरागत पादप प्रजनन जैव – संवर्धन
- पारजीनी जैव – संवर्धन

1. सस्य जैव- संवर्धन:

मिट्टी प्रबंधन और उर्वरक उपयोग के माध्यम से फसलों की पोषक तत्व सामग्री को बढ़ाने की प्रक्रिया को सस्य जैव- संवर्धन की संज्ञा दिया जाता है। हालांकि यह केवल अस्थायी समाधान है जिसमें यह पोषक तत्वों से भरपूर भोजन को प्रभावी और त्वरित तरीके से तैयार करने का सबसे तेज़ और किफायती तरीका प्रदान करता है। आयोडीन (आयोडाइड या आयोडेट का मिट्टी में उपयोग), जिंक (जिंक सल्फेट का पर्ण उपचार), और सेलेनियम (सेलेनेट के रूप में) वे सूक्ष्म पोषक तत्व हैं जो सस्य जैव- संवर्धन के लिए सबसे उपयुक्त हैं। सूक्ष्म पोषक तत्व वाले जैविक/अजैविक उर्वरक या बायोफर्टिलाइजर का पर्ण या मिट्टी में उपयोग पौधे के खाद्य हिस्सों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ाता है। सस्य हस्तक्षेपों की सफलता पर मिट्टी की विशेषताएँ, खनिजों की गतिशीलता और घुलनशीलता, फसल की इन पोषक तत्वों को अवशोषित करने की क्षमता, और पौधे के खाद्य हिस्सों में बायोउपलब्ध खनिजों का सुरक्षित संचयन जैसे कारक प्रभाव डालते हैं" (शेरोन और अन्य, 2022)। मिट्टी में खनिज तत्वों की गतिशीलता और मात्रा पौधों में यह निर्धारित करता है कि सस्य जैव- संवर्धन कितना सफल होगा (उमर एट अल., 2019)। "कृषि में नैनोप्रौद्योगिकी के कुछ अनुप्रयोगों को नैनो उर्वरक कहा जाता है, और इनके पास फसलों में पोषक तत्व की मात्रा बढ़ाने और पोषण गुणवत्ता सुधारने की वर्तमान प्रथाओं को पूरी तरह बदलने की क्षमता है। नैनो उर्वरक नैनोपार्टिकल्स की विशेषताओं का उपयोग करके खाद्य फसलों में महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की सांद्रता और जैव-उपलब्धता बढ़ाने

का एक व्यवहार्य तरीका प्रदान करते हैं; इस दृष्टिकोण को 'नैनो उर्वरक-सहायित जैव- संवर्धन कहा जाता है। नैनो उर्वरक छोटे आकार और सतह क्षेत्र में महत्वपूर्ण वृद्धि के कारण पौधों को पार्टिकल्स को आसानी से अवशोषित करने में सक्षम होते हैं" (चंद्र एट अल., 2023)

लौह जैव – संवर्धन:

मानव स्वास्थ्य में लोहे (Fe) की मुख्य भूमिका हीमोग्लोबिन और मयोब्लोबिन के संश्लेषण से जुड़ी होती है । इलेक्ट्रॉन ट्रांसपोर्ट, ऑक्सीजन ट्रांसपोर्ट और डीऑक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड (DNA) के संश्लेषण जैसी कई मेटाबोलिक गतिविधियों के लिए आवश्यक होने के अलावा, ऊर्जा के निर्माण के लिए भी लोहे की जरूरत होती है। लोहे की कमी एक व्यापक समस्या है, खासकर विकासशील देशों में, और इसका स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। लोहे की कमी कई स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बन रही है जिसमें मुख्य रूप से एनीमिया, थकान, और प्रतिरक्षा प्रणाली की खराबी, खासकर उन विकासशील देशों में जहां लोहे का मुख्य स्रोत पौधों पर आधारित आहार है। फसल में लोहे की मात्रा बढ़ाकर, बायोफोर्टिफिकेशन इस समस्या को हल करने में मदद कर सकता है और पौधे के खाने योग्य हिस्से में लोहे का सेवन बढ़ा सकता है। फसलों द्वारा लोहे का अवशोषण बढ़ाने के लिए आयरन युक्त उर्वरकों का उपयोग करना और मिट्टी का सही प्रबंधन करना शामिल है, जिसमें पीएच् मान और पोषक तत्वों का संतुलन शामिल है। यह संकेत है। यह ध्यान रखने योग्य है कि इन तकनीकों की प्रभावशीलता विशेष फसल और उगाई की परिस्थितियों के अनुसार बदल सकती है। शाकाहारियों को मांसाहारियों की तुलना में अनुशंसित दैनिक सेवन (RDA) से 1.8 गुना अधिक लोहा खाना चाहिए।

आयोडीन जैव संवर्धन:

मनुष्यों को थायराइड ग्रंथि द्वारा निर्मित हार्मोन थायरोक्सिन और ट्राईआयोडोथायरोनिन के संश्लेषण के लिए आयोडीन (I) की आवश्यकता होती है, जो विकास और वृद्धि को नियंत्रित करने के साथ-साथ बुनियादी चयापचय दर को बनाए रखते हैं। आयोडीन की कमी गले का गोइटर, बांझपन, बौनेपन, हाइपोथायरायडिज़्म और बौद्धिक अक्षमता जैसी स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बन सकती है। आयोडीन से बायोफोर्टिफाइड पौधे आधारित खाद्य पदार्थों का सेवन उन्हें खाने वालों की पोषण स्थिति को बढ़ा सकता है और किसी जनसंख्या की कुल आयोडीन की मात्रा बढ़ाने में मदद कर सकता है। नमक में आयोडीन डालना आयोडीन मजबूत करने की सबसे लोकप्रिय तकनीकों में से एक है। इसे 'आयोडीन युक्त नमक' कहा जाता है। चूंकि आयोडीन युक्त नमक रक्तचाप बढ़ा सकता है, जो हृदय रोग और स्ट्रोक का मुख्य जोखिम कारक है, इसलिए यह कई आबादियों में आयोडीन की कमी के खिलाफ एक उपयोगी रोकथाम उपाय नहीं हो सकता। सस्य बायोफोर्टिफिकेशन फसलों में आयोडीन की मात्रा बढ़ाने का एक संभावित प्रभावी तरीका है। चूंकि ऐसा प्रमाण है कि आयोडीन बायोफोर्टिफिकेशन लेने की उत्तपत्ति को कम कर सकता है, टमाटर के पौधे उच्च आयोडीन सांद्रता को सहन करने में सक्षम होते हैं, जो उनके फलों और पत्तेदार ऊतकों में इस तरह से जमा रहते हैं कि मानव उपभोग के लिए पर्याप्त से अधिक होते हैं और टमाटर एक ऐसा फसल है जो आयोडीन बायोफोर्टिफिकेशन के लिए अच्छी तरह से काम करती है। उन पौधों के फलों में पाए गए आयोडीन की मात्रा, जिन्हें 5 mM आयोडाइड से उपचारित किया गया था, मानव के लिए 150 µg दैनिक सेवन की आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त से अधिक थी। वयस्कों के लिए आयोडीन की अनुशंसित दैनिक खुराक 150–290 µg है, जबकि सहनीय दैनिक अधिकतम मात्रा 1,100 µg है।

परंपरागत पौध प्रजनन जैव संवर्धन:

परंपरागत पौध प्रजनन जैव संवर्धन विधि द्वारा फसलों के पोषण मूल्य को बढ़ाया जा सकता है। पिछले चालीस वर्षों में, परंपरागत प्रजनन ने पोषण कारकों की तुलना में रोग प्रतिरोध और उपज लक्षणों पर अधिक ध्यान दिया है। इसके परिणामस्वरूप, मौजूदा किस्मों की पोषण स्थिति कम हो गई है। हाल के उन्नतियों के परिणामस्वरूप, परंपरागत पौधा प्रजनन में महत्वपूर्ण विटामिन, एंटीऑक्सीडेंट और खनिजों को मजबूत किया गया है। इच्छित गुणों वाले पौधों का चयन किया जाता है, जैसे कि उच्च सूक्ष्म पोषक तत्व सामग्री, और फिर उन्हें अन्य पौधों के साथ मिलाकर बेहतर लक्षणों वाला संकर पैदा किया जाता है। अंततः, यह प्रक्रिया बांझपन और स्क्रीनिंग का काम संतानों में इच्छित गुणों के लिए किया जाता है। पारंपरिक प्रजनन तकनीकें पोषण की दक्षता को बढ़ाती हैं, जैसे कि बीटा-कैरोटीन, कैरोटिनॉइड्स, अमीनो एसिड, एमीलेज़, कार्बोहाइड्रेट और अन्य खनिजों का उचित चयन करके। यह खाद्य के न्यूट्रास्यूटिकल मूल्य के लिए फसलों के विकास की एक पारिस्थितिकी और किफायती प्रक्रिया है। यह साबित हो चुका है कि लोकप्रिय पारंपरिक प्रजनन तकनीकों जैसे चयन, परिचय और संकरण का उपयोग करके सब्जियों और कंद फसलों में न्यूट्रास्यूटिकल गुण विकसित करना संभव है। पारंपरिक प्रजनन तकनीकों का उपयोग करके, कई न्यूट्रास्यूटिकल प्रतिरोधी स्रोत पाए गए हैं और उन्हें प्रसिद्ध किस्मों में शामिल किया गया है। जब किसी फसल में प्राकृतिक रूप से कुछ मात्रा में सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे कि आयरन, जिंक और विटामिन ए मौजूद हों, तो उसे प्रजनन के जरिए बायोफोर्टिफाइड माना जाता है। इसका मतलब है

ISSN: 3049-2211

कि जीन में ऐसी विविधता उपलब्ध है जिसे इस्तेमाल किया जा सकता है। बायोफोर्टिफाइड सब्जियों के उदाहरण हैं आयरन से भरपूर बीन्स, आयोडीन से भरपूर कसावा और शकरकंद, और विटामिन ए से भरपूर शकरकंद। चूंकि यह सुरक्षित है और इसमें जेनेटिक इंजीनियरिंग जैसी सुरक्षा समस्याएं नहीं होतीं, इसलिए यह तरीका बड़े पैमाने पर स्वीकार किया जाता है। हालांकि, किसी फसल में अधिक पोषक तत्व बनाने के लिए पारंपरिक प्रजनन एक मेहनती और धीमी प्रक्रिया हो सकती है, जिसमें कई साल लग सकते हैं।

जेनेटिक इंजीनियरिंग जैव संवर्धन:

खाने योग्य फसल ऊतकों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की सांद्रता और जैव-उपलब्धता बढ़ाने का एक व्यावहारिक विकल्प प्रदान करता है, जब वांछित चर/गुण के लिए जीनोटाइप्स में पर्याप्त भिन्नता नहीं होती या जब फसल पारंपरिक पौध संवर्धन के लिए उपयुक्त नहीं होती हैं । एक जीवाणु से दूसरे जीव में वांछनीय गुणों के स्थानांतरण के माध्यम से, जेनेटिक इंजीनियरिंग तकनीकें जीनों के अनंत पूल से नए किस्में बना सकती हैं, जिससे मूल जनसंख्या का मूल्य बढ़ता है। जेनेटिक इंजीनियरिंग तकनीकों में हाल की प्रगति ने उन गुणों को शामिल करना भी संभव बना दिया है जिन्हें पारंपरिक संवर्धन द्वारा उत्पन्न नहीं किया जा सकता है । एक मुख्य चिंता तथाकथित "जीन प्रवाह" पर्यावरणीय मुद्दा है, जो गैर-लक्ष्य प्रजातियों में विदेशी जीन फैलने के जोखिम को दर्शाता है ।

सब्जियों की फसलें जेनेटिक रूप से संशोधित की जाती हैं ताकि जिन जीनों का पहले से अस्तित्व है और जो पोषक तत्वों के उत्पादन में शामिल हैं, उनके अभिव्यक्ति को बढ़ाना या अतिरिक्त जीन जोड़ना जो पौधों को और अधिक विटामिन या खनिज प्रदान करें, फसलों की पोषण गुणवत्ता सुधारने के दो तरीके हैं। ट्रांसजेनिक तकनीकों का उपयोग करके, ऐसे जीन शामिल किए जा सकते हैं जो सूक्ष्म पोषक तत्वों की स्थिरता और जैवउपलब्धता बढ़ाते हैं, साथ ही ऐसे जीन जो फसलों में पोषक तत्वों के उपयोग को सीमित करने वाले एंटी-न्यूट्रिशनल फैक्टर (ANFs) को रोकते हैं, उन्हें एक साथ शामिल किया जा सकता है । ट्रांसजेनिक तकनीक सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा और जैवउपलब्धता बढ़ाने का एक समझदारी भरा तरीका प्रदान करती है खासकर जब कई पौधों की प्रजातियों की आनुवंशिक आधार अलग-अलग होती है। इसके अलावा, बायोटेक्नोलॉजी के द्वारा भोजन की गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है, जैसे इसकी शेल्फ लाइफ बढ़ाना, स्वाद सुधारना, एलर्जेनिकिटी कम करना, और भोजन में अच्छे तत्व जोड़ना, जिनमें फंक्शनल प्रोटीन, फाइबर और लिपिड शामिल हैं।

बायोफोर्टिफाइड सब्जियों की प्रमुख किस्में

बैंगन: पूसा सफेद बैंगन-1

भारतीय कृषि अनुसंधान नई दिल्ली (आईएआरआई) द्वारा विकसित इस किस्म को को सन 2018 में जारी किया था । यह किस्म एंटीऑक्सीडेंट तथा कुल फिनॉल सामाग्री गतिविधि से परिपूर्ण है (3.48 मिग्रा 100 ग्राम-1) तथा (31.21 मिग्रा 100 ग्राम-1)। यह किस्म उत्तर भारत के मैदानों भागो में में खरीफ मौसम में उगाई के लिए उपयुक्त है . यह किस्म सफेद रंग की अंडाकार आकर की किस्म है।

आलू: कुफरी नीलकंठ

इस किस्म का आकर अंडाकार, एकसमान, तथा बैंगनी रंग का कंद होता है जिनकी आंखें उथली होती हैंतथा गुदा पीले रंग का होता है, इसकी भंडारण क्षमता अच्छी होती है, और इसमें 18% मध्यम शुष्क पदार्थ की मात्रा के साथ उत्कृष्ट स्वाद होता है। इसमें अन्य देशी लाल-छिलके वाले किस्मों की तुलना में अधिक एंटीऑक्सीडेंट होते हैं। इस किस्म में देर से ब्लाइट लगता है, अच्छी संग्रहण और पाक गुणवत्ता होती है, यह किस्म उत्तर भारत के मैदानों भागों में उगाने के लिए उपयुक्त है । यह एक क्लोनल चयन है जो MS/891095 × CP3290 के क्रॉस से लिया गया है, जिसे केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान शिमला द्वारा विकसित किया गया है ।

फूलगोभी: पुसा बेटाकेसरी-1

यह पहली बार देश में विकसित बायोफोर्टिफाइड सब्जी की किस्म है जो मार्कर-असिस्टेड बैकक्रॉसिंग के जरिए विकसित की गई है इस किस्म का विकास भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली ने सन 2015–16 में विकसित किया था । फूलगोभी की मध्यम से देर पकने वाली श्रेणी में रखती है। जिससे यह किस्म दिसंबर -जनवरी में पककर तैयार हो जाती है। फूल छोटे, नारंगी रंग के और बहुत ही आकर्षक होते हैं। यह भारत में बीटा कैरोटीन की कमी से जुड़ी कुपोषण की समस्या हेतु निपटने के लिए उपयुक्त प्रजाति है ।

गाजर: पूसा मेघाली

यह एक उष्णकटिबंधीय गाजर किस्म है जिसका गूदा नारंगी रंग का होता है। यह अगेती बुवाई हेतु उपयुक्त मानी जाती है । यह किस्म पुसा केसर × नांटेस को क्रॉस करके विकसित की गई है जिसमें सबसे ज्यादा बीटा कैरोटीन (11,571 IU/100g) होता है, इस किस्म का विकास भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली द्वारा विकसित किया गया।

मूली: पूसा गुलाबी

यह गुलाबी गूदा वाली मूली की पहली किस्म है जिसे सन 2013 में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली द्वारा विकसित

ISSN: 3049-2211

किया गया था। इसका आकार सिलिंडर जैसा है और इसकी जड़े मध्यम आकार की होती हैं। यह खास तौर पर गर्मियों की गर्मी में अच्छी तरह उगती है और इसमें ऐसकॉर्बिक एसिड, एंथोसाइनिन और कुल कैरोटिनॉइड्स की मात्रा अधिक होती है।

मूली - पूसा जामुनी:

यह एक महत्वपूर्ण किस्म है जिसका विकास सन 2012 में, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित किया गया है, जिसमें पौष्टिकता से भरपूर और ऐसकॉर्बिक एसिड व एंथोसाइनिन्स की मात्रा अधिक होने वाली बैंगनी रंग की गूदा वाली किस्म है।

कसावा: श्री विसाखम

यह किस्म केन्द्रीय कंद फसल अनुसंधान संस्थान (सीटीसीआरआई), तिरुवनंतपुरम, केरल द्वारा एक स्थानीय जाति और मेडागास्कर विविधता के क्रॉस के से में विकसित किया गया है । इसमें कैरोटीन की उच्च मात्रा है (466 IU प्रति 100g) त्तथा ताजे कंदों में 25–27% स्टार्च की मात्रा होती है। औसत उपज 35–38 टन/हेक्टेयर तथा परिपक्वता अवधि 10 महीने है"

शकरकंद: भू- कृष्णा

यह किस्म सन 2017 केन्द्रीय कंद फसल अनुसंधान संस्थान (सीटीसीआरआई), तिरुवनंतपुरम, केरल द्वारा शुद्ध रेखा चयन के माध्यम से विकसित किया गया है । इसमें उच्च एंथोसाइनिन (90.0 mg/100g), स्टार्च (19.5%), कुल शर्करा 1.9–2.2% और सूखी सामग्री 24.0–25.5% है। यह उच्च लवणता के प्रति सहनशील है।

पोषण संबंधी चुनौतियों के मुख्य कारण कारण:

- ✓ **पोषक तत्वों वाली खाद्य वस्तुओं की उच्च कीमत:** फलों, सब्जियों, दालों, दूध और प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थों की बढ़ती कीमतें।
- ✓ **आय की सीमाएँ:** कई घर परिवार सस्ती कैलोरी वाली चीजों को विविध आहार की बजाय प्राथमिकता देते हैं।
- ✓ **आहार असंतुलन:** अनाज पर अधिक निर्भरता और प्रोटीन और माइक्रोन्यूट्रिएंट्स का अपर्याप्त सेवन।
- ✓ **गर्भवती माताओं का खराब पोषण:** एनीमिया की उच्च स्थिति पीढ़ी दर पीढ़ी कुपोषण में योगदान करती है।
- ✓ **क्षेत्रीय और सामाजिक असमानताएँ:** आदिवासी इलाके, दूरदराज़ के क्षेत्र और शहरी गरीब अभी भी अधिक पोषण संबंधी कमजोरियों का सामना करते हैं।
- ✓ **खाद्य उपभोग की बदलती आदतें:** अल्ट्रा-प्रोसेस्ड खाद्य पदार्थों का बढ़ता सेवन मोटापे में वृद्धि का कारण बन रहा है।

■■■

खेतों से पेट्रोल पंप तक एथेनॉल क्रांति (ई20) और बदलती भारतीय कृषि

[1]**पंकज कुमार मिश्रा-** शोध छात्र, सस्य विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी, उत्तरप्रदेश
[2]**डॉ. संतोष पांडेय-** सहायक प्रोफेसर, सस्य विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी, उत्तरप्रदेश
[3]**अंजलि तिवारी-** शोध छात्रा, पौध रोग विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी, उत्तरप्रदेश
[4]**कुमारी सुरभि-** सहायक प्रोफेसर, कृषि विज्ञान विभाग, आरसीपी ग्रुप ऑफ़ इंस्टीट्यूशन्स, रुड़की, उत्तराखंड
[5]**रूपाली यादव-** शोध छात्रा, खाद्य प्रौद्योगिकी विभाग, खाद्य प्रौद्योगिकी संस्थान, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी, उत्तरप्रदेश

भारत ने अपनी ऊर्जा सुरक्षा और ग्रामीण अर्थव्यवस्था की दिशा में एक ऐतिहासिक और संरचनात्मक छलांग लगाई है। मूल रूप से 2030 के लिए निर्धारित 20% एथेनॉल सम्मिश्रण (**ई20**) के लक्ष्य को भारत ने निर्धारित समय से पांच वर्ष पूर्व ही प्राप्त कर लिया है। परिणामस्वरूप, 1 अप्रैल 2026 से पूरे देश में पेट्रोल में 20% एथेनॉल का मिश्रण अनिवार्य हो गया है।

एक कृषि के दृष्टिकोण से, सरकार का 'एथेनॉल ब्लेंडेड पेट्रोल (ईबीपी)' कार्यक्रम केवल कच्चे तेल के आयात को कम करने (विदेशी मुद्रा की बचत) की नीति नहीं है। यह भारतीय कृषि को एक 'बायो-इकोनॉमी' में परिवर्तित करने का एक ढांचागत प्रयास है, जहाँ खेत केवल पेट भरने का साधन नहीं, बल्कि देश के परिवहन को गति देने वाले ऊर्जा केंद्र बन रहे हैं। यह लेख इस बात का विस्तृत तकनीकी और आर्थिक विश्लेषण करेगा कि एथेनॉल उत्पादन जमीनी स्तर पर किसानों की आय, फसल विविधीकरण और मृदा स्वास्थ्य को कैसे बदल रहा है।

एथेनॉल उत्पादन: फीडस्टॉक का तकनीकी वर्गीकरण

एथेनॉल (इथाइल अल्कोहल) एक जैव-ईंधन है। इसे मुख्य रूप से शर्करा, स्टार्च और सेल्युलोज युक्त कृषि उत्पादों के किण्वन से प्राप्त किया जाता है। कृषि विज्ञान में इसे दो पीढ़ियों में बांटा जाता है:

प्रथम पीढ़ी (1जी) एथेनॉल: यह सीधे तौर पर कृषि उपजों से बनता है।

शर्करा आधारित: गन्ने का रस, बी-हैवी और सी-हैवी शीरा।

अनाज आधारित: मक्का, भारतीय खाद्य निगम (एफसीआई) का अधिशेष चावल और क्षतिग्रस्त खाद्यान्न।

द्वितीय पीढ़ी (2जी) एथेनॉल: यह कृषि अपशिष्ट से बनता है, जैसे धान की पराली, गेहूं का भूसा, मक्के के डंठल और गन्ने की खोई। यह खाद्य सुरक्षा से समझौता किए बिना अपशिष्ट प्रबंधन का सबसे बेहतरीन विकल्प है।

तालिका 1: ई20 कार्यक्रम का कृषि-आर्थिक परिदृश्य (2025-26 के अनुमानित आंकड़े)

विवरण	आंकड़े / मूल्य
2025-26 हेतु कुल एथेनॉल आवश्यकता	लगभग 1,050 करोड़ लीटर
एथेनॉल की औसत खरीद दर	₹65 से ₹72 प्रति लीटर (फीडस्टॉक के अनुसार)
किसानों को अब तक हुआ अतिरिक्त भुगतान	₹1.66 लाख करोड़ से अधिक
जीवाश्म ईंधन (कच्चे तेल) के आयात में बचत	लगभग ₹80,000 करोड़ प्रति वर्ष

जमीनी प्रभाव: राज्यों का तुलनात्मक अध्ययन

एथेनॉल नीति ने अलग-अलग राज्यों के कृषि मॉडल को उनकी भौगोलिक और जलवायवीय परिस्थितियों के अनुसार लाभान्वित किया है:

केस स्टडी 1: उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र (गन्ना बेल्ट की नकदी समस्या का समाधान)

इन राज्यों में सबसे बड़ी समस्या चीनी का 'अधिशेष उत्पादन' रही है। अतिरिक्त चीनी के कारण अंतरराष्ट्रीय बाजार में दाम गिरते थे और मिलों के पास किसानों को उचित और लाभकारी मूल्य चुकाने के लिए नकदी नहीं होती थी।

एथेनॉल कार्यक्रम ने इस चक्र को तोड़ दिया है। तेल विपणन कंपनियों (ओएमसी) द्वारा एथेनॉल की नकद खरीद ने मिलों के पास तत्काल तरलता सुनिश्चित की है। परिणामस्वरूप, गन्ना किसानों का बकाया, जो महीने तक अटका रहता था, अब 14 दिनों की निर्धारित अवधि के भीतर चुकाया जा रहा है।

केस स्टडी 2: बिहार - मक्का आधारित 'इथेनॉल हब'

बिहार में एथेनॉल उत्पादन एक नई कृषि क्रांति ला रहा है। धान की तुलना में मक्का एक 'वाटर-स्पेयरिंग' (कम जल मांग वाली) फसल है। बिहार के पूर्णिया, अररिया और कटिहार जिलों (सीमांचल क्षेत्र) में मक्के की भारी पैदावार होती है।

सरकार द्वारा अनाज आधारित डिस्टिलरीज को बढ़ावा देने से, बिहार में कई नए प्लांट लगे हैं। इससे किसानों को उनके मक्के का स्थानीय स्तर पर एक सुनिश्चित बाजार और उच्च मूल्य मिल रहा है। यह मॉडल किसानों को धान जैसी जल-सघन फसल से हटाकर मक्के की ओर सफलतापूर्वक मोड़ रहा है।

किसानों की आय के नए स्रोत: कचरे से धन

एथेनॉल उद्योग किसानों के लिए कई समानांतर आय के स्रोत पैदा कर रहा है:

क्षतिग्रस्त खाद्यान्न का मुद्रीकरण: फसल कटाई के बाद बेमौसम बारिश या खराब भंडारण के कारण जो अनाज (धान/गेहूं) मानव उपभोग के योग्य नहीं रहता, वह किसान का सीधा नुकसान था। अब डिस्टिलरीज इस क्षतिग्रस्त अनाज को खरीदकर एथेनॉल बना रही हैं, जिससे किसानों को उनके नुकसान की भरपाई हो रही है।

सस्ता और उच्च गुणवत्ता वाला पशुचारा (डीडीजीएस) : अनाज से एथेनॉल बनने की प्रक्रिया में डीडीजीएस नामक सह-उत्पाद निकलता है। यह प्रोटीन (लगभग 28-30%) और ऊर्जा का बेहतरीन स्रोत है। मिश्रित खेती करने वाले किसानों और डेयरी संचालकों के लिए यह एक सस्ता और पौष्टिक चारा है, जो सीधे तौर पर दूध और पोल्ट्री उत्पादन की लागत को कम करता है।

सस्य विज्ञान और मृदा स्वास्थ्य पर तकनीकी प्रभाव

एक कृषि शोधार्थी के रूप में, द्वितीय पीढ़ी एथेनॉल का मृदा पारिस्थितिकी पर प्रभाव सबसे महत्वपूर्ण है। यह पराली जलाने जैसी गंभीर समस्या का वैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत करता है:

बायोचार और कार्बन सिक्वेस्ट्रेशन: 2जी एथेनॉल उत्पादन और बायोमास गैसीकरण के दौरान एक अत्यंत लाभकारी उप-उत्पाद उत्पन्न होता है 'बायोचार'। यह उच्च कार्बन युक्त पदार्थ है।

मृदा गुणों में सुधार: जब किसान इस बायोचार और डिस्टिलरी से निकली राख को अपने खेतों (जैसे उड़द-अलसी आधारित फसल प्रणालियों में) वापस मिलाते हैं, तो यह मिट्टी के कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात को संतुलित करता है। यह मृदा की जल धारण क्षमता और धनायन विनिमय क्षमता (सीईसी) को बढ़ाता है, जिससे रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है और पैदावार बढ़ती है।

चुनौतियां और कृषि-पारिस्थितिक जोखिम

हालाँकि ई20 नीति ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए वरदान है, लेकिन इसके कुछ कृषि-पारिस्थितिक जोखिम भी जुड़े हैं, जिनका समाधान खोजना आवश्यक है:

सकारात्मक प्रभाव	नकारात्मक प्रभाव / जोखिम
सुनिश्चित आय: गन्ने और मक्के का समयबद्ध और गारंटीकृत भुगतान।	**जल संकट:** गन्ने की खेती अत्यधिक जल-सघन (2000-2500 मिमी) है, जिससे महाराष्ट्र और यूपी में भूजल स्तर तेज़ी से गिर रहा है।
फसल अवशेष प्रबंधन: पराली से 2जी एथेनॉल बनने पर किसानों को अतिरिक्त आय और प्रदूषण में कमी।	**फसल चक्र टूटना:** सुनिश्चित आय के लालच में किसान दलहनी फसलों को छोड़कर सिर्फ मक्का या गन्ना बो सकते हैं, जिससे मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरता घटेगी।
विदेशी मुद्रा की बचत: कच्चे तेल का आयात कम होने से देश की अर्थव्यवस्था मजबूत।	**भोजन बनाम ईंधन:** अगर सारा ध्यान एथेनॉल फसलों पर गया, तो भविष्य में गेहूं, दालों और खाद्य तेलों का संकट पैदा हो सकता है।

निष्कर्ष और भविष्य की राह

पेट्रोल में 20% एथेनॉल ब्लेंडिंग का सफल कार्यान्वयन भारतीय कृषि के इतिहास में एक मील का पत्थर है। इसने साबित कर दिया है कि किसान केवल अन्नदाता नहीं, बल्कि देश की ऊर्जा सुरक्षा के सबसे बड़े स्तंभ हैं।

भविष्य में इस योजना को दीर्घकालिक रूप से टिकाऊ बनाने के लिए, सरकार और शोधकर्ताओं को 1जी एथेनॉल (गन्ना/मक्का) पर निर्भरता कम करके 2जी एथेनॉल (कृषि अवशेष) की तकनीक को अधिक सस्ता और सुलभ बनाने पर जोर देना होगा। इसके अलावा, बंजर भूमियों पर 'स्वीट ज्वार' जैसी गैर-खाद्य और कम पानी चाहने वाली एथेनॉल फसलों की खेती को बढ़ावा देना चाहिए।

सही कृषि नीतियों, सटीक जल प्रबंधन और तकनीकी हस्तक्षेप के साथ, एथेनॉल कार्यक्रम न केवल किसानों की आय दोगुनी करने का सपना साकार करेगा, बल्कि भारतीय कृषि को एक स्थायी और पर्यावरण-अनुकूल भविष्य की ओर भी ले जाएगा।

♣♣♣

भारत-विस्तार (Bharat-VISTAAR)

Virtually Integrated System to Access Agricultural Resources

डॉ. कमल किशोर- सहायक प्राध्यापक, मेजर एस. डी. सिंह विश्वविद्यालय, भोजपुर, फर्रुखाबाद, (उत्तर प्रदेश)
डॉ. राजीव कुमार दोहरे- प्राध्यापक, आचर्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, (उत्तर प्रदेश)

हमारा भारत देश दुनियाँ में सबसे महान देश है। हमारे देश में रहनें वाले लगभग 80% महिलाएं व पुरुष कृषि कार्य में लगे हुए हैं, तथा कृषि को बेहतर बनाने के लिए लगातार अच्छे से अच्छे और महत्वपूर्ण प्रयास कर रहें हैं साथ ही हमारे देश के कृषि वैज्ञानिक फसलों के उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए नई- नई तकनीकों का अविष्कार कर रहें हैं। हमारे देश की मिट्टी, पानी, वायु, जलवायु तथा मौसम आदि फसलों के उत्पादन के लिए बहुत ही अनुकूल हैं, जिनका लगातार प्रयोग करके हम फसलों का अच्छा उत्पादन लें रहें हैं। बीते कुछ सालों में जलवायु तथा मौसम सम्बंधित समस्याओं का सामना फसलों के उत्पादन और प्रबंधन में करना पड़ रहा है, जिसके परिणाम स्वरुप हमारे देश के किसानों को एक बड़ी हानि का सामना करना पड़ता है। अतः फसलों के उत्पादन और प्रबंधन से जुडी सभी प्रकार की समस्याओं से निजात पाने के लिए नई-नई तकनीकों का प्रयोग होना बहुत ही जरूरी है। इसी क्रम में चलते हुए आज भारत सरकार द्वारा देश के कृषि क्षेत्रों और किसानों को आधुनिक बनाने के लिए एक कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) पर आधारित डिजिटल सार्वजनिक संरचनात्मक मंच **"भारत-विस्तार" (Bharat-VISTAAR)** प्लेटफॉर्म की घोषणा केंद्रीय बजट 2026-27 में की गई है, यह किसानों के लिए डिजिटल सहयोगी के रूप में कार्य करेगा, जिसमें मुख्य रूप से व्यक्तिगत सलाह, बाजार मूल्य, मौसम पूर्वानुमान और केंद्रीकृत योजनाओं के लाभ आदि के वारे में सूचनाएं प्रदान कराएगा। **"भारत-विस्तार" (Bharat-VISTAAR)**, इस प्लेटफॉर्म का संचालन 17 फरवरी 2026 को केंद्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री शिवराज सिंह चौहान द्वारा स्टेट इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर मैनेजमेंट, दुर्गापुरा, जयपुर, राजस्थान से किया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य देश के किसानों को उनकी अपनी मातृभाषा में सही - सही, वास्तविक, समय पर और व्यक्तिगत कृषि सलाह प्रदान करना है। भारत-VISTAAR प्लेटफॉर्म सिर्फ सूचना देने वाला नहीं, बल्कि एक तरह से **"डिजिटल कृषि सलाहकार"** है।

मुख्य विशेषताएं:

1. एकीकृत डिजिटल नेटवर्क से देश के किसानों और वैज्ञानिक कृषि ज्ञान प्रणालियों को एक साथ जोड़ना है।
2. एआई-सहायक 'भारती' जो किसानों के सवालों का जवाब प्राकृतिक रूप से बोलकर या लिखकर देने का प्रयास करेगा।
3. इसकी तकनीक भारत की क्षेत्रीय भाषाओं का समर्थन करती है।
4. किसानों के लिए सुविधा के लिए टोल-फ्री हेल्पलाइन नंबर (155261) है।
5. मौसम का पूर्वानुमान की जानकारी प्रदान करना है।

6. फसलों की बीमारियों और कीटों की समय पर पहचान और वैज्ञानिक उपचार की सलाह प्रदान करना है।
7. देश भर के बाजारों और मंडियों में फसलों के उचित और वास्तविक मूल्य कि जानकारी प्रदान करना है।
8. केंद्रीय और राज्य स्तरीय सरकारी योजनाओं की जानकारी प्रदान करना है।
9. मृदा के प्रबंधन कि जानकारी प्रदान करना है।
10. भारत की कृषि व्यवस्था को कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) आधारित डिजिटल ढांचे से जोड़ने की दिशा में एक ऐतिहासिक पहल है।

उद्देश्य और महत्व:

1. फसलों की लागत को कम करना और उत्पादकता को बढ़ाना।
2. अनिश्चित मौसम और जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाले कृषि जोखिमों को कम करना।
3. देश के लगभग सभी किसानों तक अत्याधुनिक तकनीक पहुंचना।
4. किसान द्वारा निर्णय लेने की क्षमता में सुधार होगा।
5. किसानों को एक ही मंच पर कृषि संबंधी सभी आवश्यक जानकारियाँ उपलब्ध करना।
6. यह केवल सूचना प्रदान करने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक एकीकृत डिजिटल प्लेटफॉर्म के रूप में है।
7. भारत-VISTAAR कृषि क्षेत्र में नवाचार, डेटा-आधारित नीति निर्माण तथा स्मार्ट खेती (Precision Agriculture) को बढ़ावा देना है।

निष्कर्ष: -

भारत-VISTAAR कृषि क्षेत्र में केवल एक तकनीकी नवाचार नहीं, बल्कि कृषि पद्धति में परिवर्तन का संकेत है। यह कृषि सूचना को बिखरी हुई प्रणाली से निकालकर एकीकृत, बहुभाषी और AI-आधारित स्वरूप प्रदान करता है। यदि इसका प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित किया गया, तो यह किसानों की उत्पादकता, जोखिम प्रबंधन और आय स्थिरता में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। भारत विस्तार 24 घंटे उपलब्ध रहेगा, एक "डिजिटल कृषि विशेषज्ञ" के रूप में, दो माध्यमों से भारत किसान चैटबॉट - टेक्स्ट आधारित संवाद है। भारत विस्तार के द्वारा संचालित किया जाने वाला एआई सहायक "भारती" यह किसानों से बातचीत कर सकता है, सरल भाषा में प्रश्नों का उत्तर दे सकता है और विभिन्न भाषाओं में आवाज़ के माध्यम से भी कार्य कर सकता है।किसान "भारती" तक तीन स्तर तरीकों से पहुँच सकते हैं - मुफ्त में टोल फ्री एवं उपयोग मोबाइल ऐप के माध्यम से एवं इंटरनेट लिंक जो कृषि विभाग की वेबसाइट और प्रचलित मोबाइल ऐप जैसे PM KISAN और PMFBY पर उपलब्ध होगा। किसानों के लिए सुविधा के लिए टोल-फ्री हेल्पलाइन नंबर (155261) है।यह पहल कृषि क्षेत्र में डिजिटल लोकतंत्रीकरण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम सिद्ध हो सकती है।

*****

जैविक कृषि में समेकित रोग प्रबंधन: वर्तमान समय की मांग

डॉ सुनील कुमार मंडल
सहायक प्राध्यापक, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, झंझारपुर
डा० राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार

विगत कुछ दशकों से विश्व में बहुत तेजी से सामाजिक, आर्थिक, प्रौद्योगिक, राजनीतिक और पर्यावरणीय स्तर पर बहुत बदलाव आया है। बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण मानवीय भोजन, वस्त्र, आवास इत्यादि के आवश्यकता की पूर्ति के लिए भूमि, जल एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों का अधिक दोहन हुआ, जिसके परिणामस्वरूप न केवल पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा, बल्कि खेती में भी स्थीरिता आयी है। इसलिए यह आवश्यकता महसूस की जाने लगी कि खेती के लिए आवश्यक संसाधनों का इस प्रकार व्यवस्थित तरीके से उपयोग किया जाय कि प्राकृतिक संसाधनों का कमी न हो सके तथा पर्यावरण भी सुरक्षित रहे।

हरित क्रान्ति के दुष्प्रभावों के सामने आने के फलस्वरूप परम्परागत जैविक खेती की आवश्यकता पुनः महसूस की जाने लगी, ताकि भूमि को स्वस्थ रखने के साथ-साथ खेती को टिकाऊ बनाया जा सके। संश्लेशित रासायनों के द्वारा मानव स्वास्थ्य के साथ-साथ वातावरण पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों के बारे में आई जागरूकता के फलस्वरूप जैविक खेती का क्षेत्रफल धीरे-धीरे बढ़ रहा है। उपभोक्ताओं में जैविक उत्पादों की बढ़ती मांग के कारण जैविक खेती आज एक प्रमुख व्यवसाय बन गया है।

जैविक खेती में उत्पादन का स्तर बनाये रखने के लिए जहाँ यह आवश्यक है कि मिट्टी की उर्वरता बनायी रखी जाय, तो वहीं पर बीमारियों से होने वाली क्षति को भी न्यूनत्तम स्तर पर लाना अतिआवश्यक हो जाता है। जैविक खेती में प्रचलित कवकनाशकों का प्रयोग प्रतिबन्धित होने तथा रोग प्रबंधन के लिए वैकल्पिक तरीकों की पर्याप्त जानकारी के अभाव में बीमारियों का नियंत्रण एक चुनौतिपूर्ण कार्य है। अतः यह आवश्यक है कि जैविक खेती से जुड़े कृषकों को इस संबंध में पूरी जानकारी रखना चाहिए। इसी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत आलोख में जैविक खेती के अंतर्गत समेकित रोग प्रबंधन की संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत की गयी है।

रोग प्रतिरोधी प्रजातियों/किस्मों का चयन:

आजकल अधिकांश फसलों में ऐसी किस्मों का विकास किया गया है जिसमें बीमारियों का प्रकोप कम होता है। इसलिए कृषकों को ऐसी रोगरोधी प्रजातियों का चयन करना चाहिए। रोगरोधी प्रजातियों का विवरण तालिका-1 में प्रस्तुत किया गया है।

ISSN: 3049-2211

तालिका-1. विभिन्न फसलों की कुछ महत्वपूर्ण रोग प्रतिरोधक प्रजातियां:

क्र.सं.	फसल	प्रजाति/किस्म	रोग
1	धान	सुरक्षा, पन्त-6	झोका, जीवाणु झुलसा रोग
2	गेहूँ	पी0 वी0 डब्लू- 373	किट्ट, अंगमारी
		डब्लू0 एस0- 542	किट्ट, चूर्णिल आसिता पर्ण अंगमारी
		एच0 एस0- 240	
3	जौ	कैलास	किट्ट, खुला कंडुवा, ढ़का कडुवा
4	गन्ना	सी0 ओ0- 213, सी0 ओ0- 244, सी0 ओ0- 313	लाल सड़न
5	मसूर	पन्त मसूर- 5	उकठा, जड़ सड़न, किट्ट, अंगमारी
6	सोयाबीन	पी0 एस0- 1092, पी0 एस0- 1241	पीत मौजैक, सरकोस्पोरा
7	अलसी	गरिमा, सुवर्णा	गेरूई, अंगमारी, चूर्णिल आसिता
8	आलू	कुफरी कृष्णा, कुफरी गिरराज कुफरी सिन्दुरी	पिछेती झुलसा विषाणु रोग
9	टमाटर	रम्या	फ्यूजेरियम, वर्टिसिलियम मूल ग्रन्थ सूत्रकृमि
10	बैंगन	पन्त रितुराज पी0 वी0-7 पी.ओ.डब्लू.आर.-12 एच-8	जीवाणु झुलसा छोटी-पत्ती (वायरस रोग)
11	मिर्च	पंजाब लाल	श्यामवरण, पर्णकुचन, शीर्ष अंगमारी
12	अरहर	के0 पी0 एल0-33 के0 पी0 एल0-44	उकठा, बंध्य मोजैक

नोट: उपरोक्त वर्णित फसलों के रोग प्रतिरोधक प्रजातियों के अतिरिक्त देश के कृषि विश्वविद्यालयों एवं क्षेत्रीय अनुसंधान संस्थानों के द्वारा भी रोग प्रतिरोधी किस्में विकसित की गयी है।

सस्य क्रियाओं का कार्यान्वयन:

आमतौर पर कृषकों के द्वारा अपनायी जा रही कृषि के क्रियाओं में हल्का सा बदलाव लाकर फसलों में होने वाली क्षति को कम किया जा सकता है। प्रयास यह होना चाहिए कि फसल की संवेदनशील अवस्था, बीमारियों के फैलने हेतु अनुकूल वातावरण एवं रोग जनकों की उपस्थिति का मेल एक साथ न हो। इसके अतिरिक्त रोगों के द्वारा होने वाली क्षति को निम्न उल्लेखित शस्य क्रियाओं के द्वारा कम किया जा सकता है:

- ✓ **फसल विविधीकरण:** फसल-चक्र, अंतरफसल और मिश्रित की खेती करने से बीमारियों का स्थायी प्रबंधन होता है।
- ✓ **गहरी जुताई:** गर्मियों में खेत की मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करना चाहिए।
- ✓ **खरपतवार नियंत्रण:** खेत एवं उनके आस-पास खरपतवार न होने देना चाहिए।
- ✓ स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का उपयोग करना चाहिए।
- ✓ गर्म पानी/जैव नियंत्रक (ट्राइकोडर्मा) के द्वारा बीज एवं पौध जड़ उपचार करने के बाद ही बुवाई/रोपाई करना चाहिए। ट्राईकोडर्मा का 10 ग्राम/किलोग्राम बीज की दर से बीज उपचार तथा 10 ग्राम/लीटर पानी के घोल के साथ पौध के जड़ का उपचार करना चाहिए।
- ✓ सड़ी हुई गोबर की खाद/कम्पोस्ट/वर्मीकम्पोस्ट का बुवाई से पूर्व मिट्टी में अंतिम जुताई के समय प्रयोग करना चाहिए, जिससे पौधों में रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है और फसल स्वस्थ्य रहते हैं।
- ✓ जैव नियंत्रक (ट्राइकोडर्मा या स्चूडोमोनस की प्रजाति) की एक किलोग्राम प्रति क्वींटल की दर से जैविक खाद में 10-15 दिन पूर्व मिलाने से खाद की गुणवत्ता में वृद्धि हो जाती है।
- ✓ हरी खाद (ढ़ैचा या स्नेई) का प्रयोग करना चाहिए।
- ✓ **मृदा सौरीकरण:** यह प्रक्रिया प्रायः छोटे क्षेत्रों (पौधाशाला या सब्जी उत्पादन) के लिए किया जाता है।
- ✓ खड़ी फसल में विषाणुओं के द्वारा रोग ग्रस्त पौधों को निकालकर जला देना चाहिए अथवा मिट्टी के अन्दर दवा देना चाहिए।
- ✓ रोगग्रस्त फसल के अवशेषों को एकत्र कर खेत से हटा देना चाहिए।

- ✓ **सर्वेक्षण एवं निगरानी:** फसलों का नियमित अन्तराल पर निगरानी करना चाहिए, ताकि फसलों से बीमारियों को प्रकोप से बचाया जा सके।

वानास्पतिक फफूंदनाशक का प्रयोग:

कई प्रकार की वनस्पतियों में ऐसे तत्व पाये जाते हैं जिनके प्रयोग से फसलों की बीमारियों का नियंत्रण होता है। नीम का तेल, दशपर्णी अर्क या अन्य वानस्पतिक अर्क का उपयोग करके बीमारियों का नियंत्रण किया जा सकता है।

जैव नियंत्रकों का प्रयोग:

फसलों में होने वाली विभिन्न बीमारियों के नियंत्रण में ट्रइकोडर्मा प्रजाति स्यूडोमोनास फ्लोरीसेंस एवं बैसिलस सबंटिलिस नामक जीवाणुओं का प्रयोग किया जा सकता है। ये जैव नियंत्रण विभिन्न प्रकार के रोगकारक जैसे फ्यूजेरियम, राइजोक्टोनिया, पीथियम, फाइटोफ्थोरा, स्केलरोटिनिया, स्केलोरोशियम तथा मैक्रोफोमिना आदि के नियंत्रण में बहुत ही कारगार सिद्ध हुए हैं।

प्रयोग विधि:

बाजोपचार: मटर, अरहर, चना, मसूर, सोयाबीन, टमाटर, मिर्च, बैगन, गोभी, तम्बाकू के बीज एवं ग्लेडियोलस के कार्म का उपचार 10 ग्राम पाउडर प्रति किलोग्राम बीज/कार्म से करते हैं। बीज एवं कार्म के उपचार के लिए सबसे पहले जैव नियंत्रक के पाउडर को पानी में घोल लेते हैं। तत्पश्चात् बीज/कार्म को इस घोल में डाल देते है, जिससे पूरा बीज/कार्म अच्छी तरह से पाउडर के द्वारा उपचारित हो जाय।

पौध उपचार: सब्जियों जैसे बैगन, टमाटर, मिर्च, गोभी इत्यादि के लिए पौध की रोपाई से पहले उसकी जड़ को जैव नियंत्रक के घोल (10 ग्राम/लीटर पानी) में 30 मिनट तक डुबोकर उपचारित करते हैं।

मृदा उपचार: इसके लिए एक किलोग्राम जैव नियंत्रक को 100 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद/वर्मीकम्पोस्ट में मिलाकर एक एकड़ खेत में अंतिम जुताई के समय डाल देते हैं।

छिड़काव: 10 ग्राम जैव नियंत्रक को एक लीटर पानी की दर से घोल बनाकर रोग से संक्रमित फसलों में छिड़काव करते हैं।

बीज का बायोप्राइमिंग: 10 ग्राम बायोएजेन्ट को 50 मिली लीटर पानी में घोल बनाकर इसमें 1 किलोग्राम बीज डालकर अच्छी तरह मिलाकर ढ़ेर बना ले एवं गीले बोरे से ढ़क कर 25-45 घंटे के लिए किसी छायादार स्थान में रख दें। इसके बाद बीज के अंकुरित होने से पहले बुवाई करना चाहिए।

कम्पोस्ट के द्वारा भूमि उपचार: एक टन कम्पोस्ट में एक किलोग्राम स्यूडोमोनास/ट्राईकोडर्मा मिश्रित उत्पादन में थोड़ा नमी (30-40 प्रतिशत नमी) के साथ एक ढ़ेर बनाकर 3 सप्ताह के लिए किसी छायादार स्थान में छोड़ दें। नमी बनाये रखने के लिए बीज-बीच में हल्का पानी का छिड़काव करते रहना चाहिए, ताकि कम्पोस्ट के ढ़ेर में पर्याप्त नमी कायम रह सके। 10-15 दिनों के तत्पश्चात् खेत की तैयारी के समय इस कम्पोस्ट के उत्पाद को मिट्टी में मिला देना चाहिए। यह मात्रा एक एकड़ भूमि के लिए पर्याप्त होती है।

वर्मीकम्पोस्ट की गुणवत्ता में वृद्धि: वर्मीकम्पोस्ट के ढ़ेर व गड्ढ़े के कार्बनिक मिश्रण में एक किलोग्राम ट्राइकोडर्मा या स्यूडोमोनास मिलाये। इससे वर्मीकम्पोस्ट में केंचुआ की संख्या में 2-3 गुना बढ़ोत्तरी होती है तथा इससे वर्मीकम्पोस्ट की गुणवत्ता में भी बढ़ती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार जैविक खेती में एकीकृत रोग प्रबंधन का उद्देश्य संश्लेशित रासायनों के बिना, जैविक तरीकों (जैविक नियंत्रण एवं कृषि क्रियाओं) का उपयोग करके फसलों को बीमारियों से बचाना है। यह मृदा स्वास्थ्य, पारिस्थितिक संतुलन, पर्यावरण संरक्षण, मानव स्वस्थ्य और दीघ्रकालिक टिकाऊ कृषि के लिए महत्वपूर्ण है, जिससे फसल की गुणवत्ता बनी रहती है और खेती की लागत भी कम होती है। वत्र्तमान समय में जैविक खेती के व्यवसायिक उत्पादन का अधिक लाभ अर्जित करने के लिए सरकार के द्वारा जैविक प्रमाणिकरण संस्था का गठन किया गया है, ताकि किसान अपने उत्पदों को अपने देश के साथ-साथ विदेशों में भेजकर अधिक मुनाफा प्राप्त कर सके।

♣♣♣

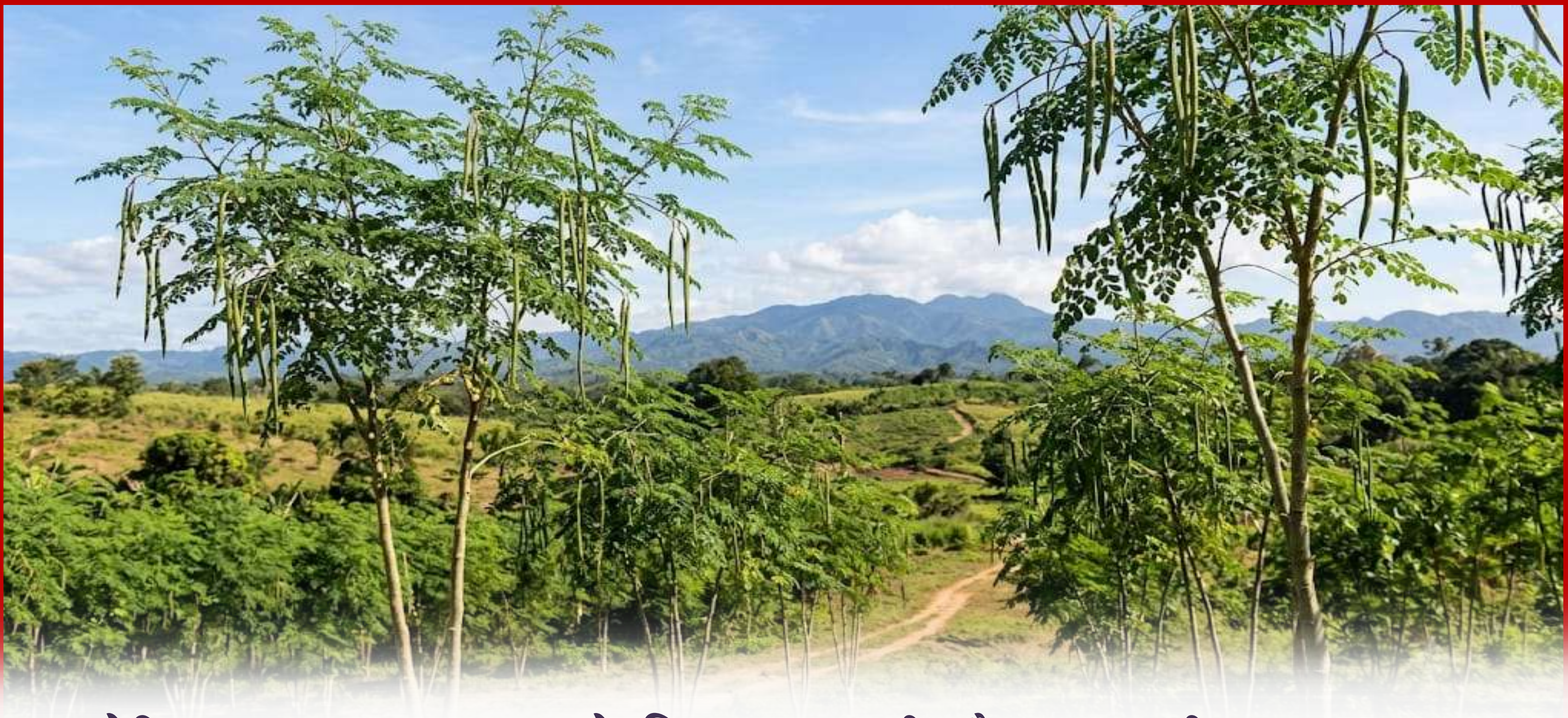

मोरिंगा (सहजन): पशुपालन के लिए एक स्थायी और 'चमत्कारी' चारा संसाधन

लेफ्ट डॉ. सिम्पल जैन
सह प्राध्यापक
आस्पी पोषण और सामुदायिक विज्ञानं महाविद्यालय, सरदारकृषिनगर दांतीवाड़ा कृषि यूनिवर्सिटी, सरदारकृषिनगर- गुजरात

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ पशुपालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। लेकिन आज के समय में पशुपालक दोहरी मार झेल रहे हैं: एक तरफ चारे की कमी और दूसरी तरफ चोकर, खल और अन्य दाने की आसमान छूती कीमतें। ऐसी स्थिति में सहजन, जिसे हम 'मिरेकल ट्री' या 'जादुई पेड़' भी कहते हैं, पशुपालकों के लिए एक वरदान साबित हो रहा है। सहजन केवल इंसानों के लिए ही नहीं, बल्कि गाय, भैंस, और बकरी के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण आहार है।

मोरिंगा (सहजन)

मोरिंगा (सहजन) एक बहुउपयोगी वृक्ष है, जिसे भारत में सामान्यतः "सहजन", "सजना" या "ड्रमस्टिक ट्री" के नाम से जाना जाता है। यह मुख्यतः उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाया जाता है। मोरिंगा का वृक्ष तेज़ी से बढ़ने वाला तथा कम पानी में भी आसानी से विकसित होने वाला पौधा है। इसकी खेती भारत, अफ्रीका तथा एशिया के अनेक देशों में की जाती है। मोरिंगा का पौधा मध्यम आकार का होता है और इसकी शाखाएँ कोमल तथा पत्तियाँ छोटी एवं हरी होती हैं। इसके लंबे फल ड्रमस्टिक जैसे दिखाई देते हैं, इसलिए इसे अंग्रेज़ी में "ड्रमस्टिक ट्री" कहा जाता है। मोरिंगा के वृक्ष में वर्षभर फूल और फल आने की क्षमता होती है। यह पौधा कृषि एवं पर्यावरण की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि यह कम उपजाऊ भूमि में भी उग सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में मोरिंगा का उपयोग घरेलू एवं पारंपरिक कार्यों में लंबे समय से किया जाता रहा है। आयुर्वेद तथा पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों में भी इसका विशेष उल्लेख मिलता है। मोरिंगा को उसकी बहुउपयोगिता, अनुकूलन क्षमता तथा विभिन्न उपयोगों के कारण एक महत्वपूर्ण पौधा माना जाता है। वर्तमान समय में इसकी खेती और उपयोग के प्रति लोगों की रुचि लगातार बढ़ रही है।

दुग्ध पशुओं के पोषण में मोरिंगा का महत्व

पशु आहार में सबसे महंगी चीज 'प्रोटीन' होती है। आमतौर पर किसान प्रोटीन के लिए सोयाबीन की खल या बिनौला खल का उपयोग करते हैं, जो काफी महंगी होती हैं। मोरिंगा (सहजन) को पशु पोषण की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी एवं उच्च पोषण क्षमता वाला वृक्ष माना जाता है। इसकी पत्तियाँ, कोमल फलियाँ, बीज तथा अन्य भाग दुग्ध पशुओं, विशेषकर गायों के लिए पोषक तत्वों के समृद्ध स्रोत हैं। वर्तमान समय में हरे चारे की कमी एवं महंगे संतुलित आहार के कारण मोरिंगा को वैकल्पिक पौष्टिक चारे के रूप में व्यापक रूप से अपनाया जा रहा है।

मोरिंगा की पत्तियों में उच्च गुणवत्ता का प्रोटीन पाया जाता है, जो सामान्यतः 27–30 प्रतिशत तक होता है। यह स्तर अनेक पारंपरिक हरे चारे एवं पत्तेदार वनस्पतियों की तुलना में अधिक है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें सभी आवश्यक अमीनो अम्ल उपस्थित होते हैं, जो दुग्ध पशुओं में शरीर वृद्धि, मांसपेशियों के विकास, ऊतक निर्माण तथा दुग्ध उत्पादन के लिए आवश्यक हैं। मोरिंगा पत्ती चूर्ण का उपयोग दुग्ध पशुओं

ISSN: 3049-2211

के संतुलित आहार में प्रोटीन पूरक के रूप में किया जा सकता है। मोरिंगा की पत्तियाँ कैल्शियम, फॉस्फोरस, पोटैशियम, मैग्नीशियम तथा आयरन जैसे खनिज तत्वों से समृद्ध होती हैं। कैल्शियम एवं फॉस्फोरस हड्डियों की मजबूती, दुग्ध निर्माण तथा प्रजनन स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं, जबकि आयरन रक्त निर्माण एवं शरीर की सामान्य क्रियाओं में सहायक होता है।

नियमित रूप से मोरिंगा आधारित आहार देने से पशुओं में खनिज असंतुलन की समस्या कम हो सकती है। मोरिंगा की पत्तियों में लगभग 6–13 प्रतिशत तक वसा पाई जाती है, जिसमें ओमेगा-3 एवं ओमेगा-6 वसीय अम्ल उपस्थित होते हैं। ये फैटी अम्ल पशुओं के स्वास्थ्य, रोग प्रतिरोधक क्षमता तथा दुग्ध की गुणवत्ता में सुधार करने में सहायक माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें पर्याप्त मात्रा में कच्चा रेशा (क्रूड फाइबर) भी पाया जाता है, जो जुगाली करने वाले पशुओं की पाचन क्रिया को संतुलित रखने एवं रूमेन स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मोरिंगा के बीज भी पशु पोषण की दृष्टि से उपयोगी हैं। इनमें 29–38 प्रतिशत तक प्रोटीन तथा 30–40 प्रतिशत तक तेल पाया जाता है। मोरिंगा बीजों से प्राप्त तेल ऊर्जा का अच्छा स्रोत माना जाता है। हालांकि बीजों का उपयोग सीमित मात्रा में करना उपयुक्त रहता है।

मोरिंगा विटामिनों का भी अच्छा स्रोत है। इसकी पत्तियों में विटामिन A, B समूह, C एवं E पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। ये विटामिन पशुओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने, त्वचा एवं आँखों के स्वास्थ्य को बनाए रखने तथा प्रजनन क्षमता में सुधार करने में सहायक होते हैं। विटामिन E एवं अन्य एंटीऑक्सीडेंट तत्व पशुओं में ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करने में मदद करते हैं। इसके साथ ही दूध में प्रोटीन एवं वसा की गुणवत्ता में भी सुधार पाया गया। अतः मोरिंगा को दुग्ध पशुओं के लिए एक सस्ता, पौष्टिक एवं बहुउपयोगी चारा स्रोत माना जा सकता है, जो पशुओं के स्वास्थ्य, उत्पादन क्षमता तथा पोषण स्तर को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

तालिका 1 : सहजन की पत्तियों एवं बीजों में पोषक तत्वों की अनुमानित मात्रा*

पोषक तत्व	पत्तियाँ	बीज
प्रोटीन (%)	26.8–30.3	29–38
कुल वसा (%)	6.4–13.4	23.0–41.2
कार्बोहाइड्रेट (%)	36.0–50.1	30.0–41.0
कच्चा रेशा (%)	4.8–27.6	20.0–22.9
कच्ची राख (%)	8–14.8	3.6–5.0
कैल्शियम (ग्राम/100 ग्राम)	1.6–2.3	0.15–0.26
फॉस्फोरस (ग्राम/100 ग्राम)	0.25–0.6	0.075
आयरन (मि.ग्रा./100 ग्राम)	25.6–49.0	44.8
तांबा / कॉपर (मि.ग्रा./100 ग्राम)	0.7–1.1	1.3
जिंक (मि.ग्रा./100 ग्राम)	0.82–5.9	7.3
विटामिन A (मि.ग्रा.)	4000–8000	–
विटामिन C (मि.ग्रा.)	15.0–100.0	14.4
विटामिन E (मि.ग्रा.)	80.0–150	751

***स्रोत:** Amad and Zentek (2022); Horn *et al.* (2022); Oluwaniyi *et al.* (2020); Sonkar *et al.* (2020); Singh *et al.* (2019); Igwilo *et al.* (2017); Sodamade *et al.* (2017); Godinez-Oviedo *et al.* (2016).

दुग्ध उत्पादन और गुणवत्ता में वृद्धि

पशुओं के आहार में सहजन को शामिल करने के परिणाम चौंकाने वाले रहे हैं। वैज्ञानिक शोधों से पता चला है कि यदि दुधारू पशुओं के दैनिक आहार में 2-3 किलोग्राम ताजा सहजन की पत्तियां शामिल की जाएं, तो:

- ✓ **दूध की मात्रा:** दूध उत्पादन में 10% से 15% तक की वृद्धि देखी गई है।
- ✓ **दूध की गुणवत्ता ('वसा' और 'वसारहित ठोस'):** सहजन खिलाने से दूध में 'वसा' और वसारहित ठोस' की मात्रा बढ़ जाती है, जिससे डेयरी पर किसानों को बेहतर दाम मिलते हैं।
- ✓ **स्वास्थ्य:** यह गायों में 'मस्टाइटिस' (थनैला रोग) के खतरे को कम करता है क्योंकि इसमें प्राकृतिक एंटी-बायोटिक गुण होते हैं।

पशु स्वास्थ्य और रोग प्रतिरोधक क्षमता

सहजन केवल भोजन नहीं, बल्कि एक औषधि भी है। मोरिंगा में अनेक जैव सक्रिय यौगिक (फाइटोकेमिकल्स) जैसे फ्लेवोनॉयड्स, फिनोलिक यौगिक, सैपोनिन एवं कैरोटेनॉयड्स भी पाए जाते हैं। ये यौगिक एंटीऑक्सीडेंट एवं जीवाणुरोधी गुणों से युक्त होते हैं, जो पशुओं के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने तथा संक्रमणों के जोखिम को कम करने में सहायक हो सकते हैं। विभिन्न अध्ययनों में पाया गया है कि दुग्ध पशुओं के आहार में मोरिंगा पत्तियों या पत्ती चूर्ण को सम्मिलित करने से चारे की स्वीकार्यता, पाचन क्षमता एवं दुग्ध उत्पादन में सकारात्मक प्रभाव देखा गया। यह पशुओं के शरीर में निम्नलिखित कार्य करते हैं:

1. एंटी-ऑक्सीडेंट: पशुओं के ताप तनाव ('हीट स्ट्रेस') को कम करता है, खासकर गर्मियों के महीनों में।

2. रोग प्रतिरोधक क्षमता: यह पशुओं की इम्यूनिटी बढ़ाता है, जिससे पशु कम बीमार पड़ते हैं और पशु चिकित्सक का खर्च कम होता है।

ISSN: 3049-2211

3. पाचन में सुधार: यह पेट के कीड़ों को मारने में सहायक है और पाचन तंत्र को दुरुस्त रखता है।

रूमेन मेटाबॉलिज्म: पेट की कार्यप्रणाली में सुधार

जुगाली करने वाले पशुओं (गाय, भैंस) के पेट के पहले हिस्से को 'रूमेन' कहते हैं। ये पशु सेल्यूलोज, हेमीसेल्यूलोज तथा कोशिका भित्ति के अन्य घटकों जैसे रेशेदार पदार्थों को पचा सकते हैं, क्योंकि उनके रूमेन में उपस्थित सूक्ष्मजीवों में ऐसे एंजाइम पाए जाते हैं जो इन जटिल अणुओं को तोड़ने में सक्षम होते हैं।सहजन यहाँ एक अद्भुत काम करता है। सहजन की उच्च पोषणीय एवं जैव-सक्रिय संरचना तथा इसमें प्रतिपोषक तत्वों की कम मात्रा इसे जुगाली करने वाले पशुओं के पोषण के लिए उपयुक्त बनाती है। सहजन रूमेन के भीतर सूक्ष्मजीवों की गतिविधि को बढ़ाता है, जिससे पशु जो भी सूखा चारा (भूसा/कड़बी) खाता है, वह बेहतर तरीके से पचता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सहजन खिलाने से पशुओं द्वारा छोड़ी जाने वाली हानिकारक 'मीथेन गैस' में 7-10% की कमी आती है। यह न केवल पर्यावरण के लिए अच्छा है, बल्कि पशु की ऊर्जा को भी बचाता है जो अन्यथा गैस के रूप में बर्बाद हो जाती।

किसानों के लिए आर्थिक लाभ

एक किसान के लिए सबसे बड़ा सवाल 'मुनाफा' होता है। सहजन यहाँ तीन तरह से बचत करता है:

1. खल के खर्च में कटौती: यदि आप सहजन खिला रहे हैं, तो आप बाजार से खरीदे जाने वाले महंगे दाने या खल की मात्रा को 25-50% तक कम कर सकते हैं।

2. कम लागत में उत्पादन: सहजन एक बार लगाने के बाद कई सालों तक चारा देता है। इसे कम पानी और कम खाद की जरूरत होती है।

3. दवाइयों का कम खर्च: स्वस्थ पशु का मतलब है कम बीमारियाँ और कम मेडिकल बिल।

खिलाने की विधि

सहजन की पत्तियों को सीधे खिलाने के बजाय, उन्हें सूखे भूसे या सामान्य चारे के साथ मिलाकर खिलाएं। अगर आपके पास अधिक सहजन है, तो इसे छाया में सुखाकर पाउडर बना लें। इस पाउडर को लंबे समय तक इस्तेमाल किया जा सकता है। अचानक से बहुत अधिक मात्रा में सहजन न खिलाएं, क्योंकि इसकी उच्च प्रोटीन सामग्री से कुछ पशुओं को दस्त लग सकते हैं। धीरे-धीरे इसकी मात्रा बढ़ाएं। कुछ पशु इसकी गंध के कारण शुरुआत में इसे खाना पसंद नहीं करते। अत: इसे धीरे-धीरे अन्य चारे के साथ मिलाकर दें। इसमें थोड़े टैनिन और फाइटेट्स होते हैं। लेकिन अगर इसे संतुलित मात्रा में खिलाया जाए, तो इनका कोई दुष्प्रभाव नहीं होता।

पर्यावरणीय और जलवायु परिवर्तन के दृष्टिकोण से महत्व

आज के दौर में जब खेती पर जलवायु परिवर्तन का खतरा मंडरा रहा है, सहजन एक 'जलवायु-अनुकूल' फसल है। यह बहुत कम पानी में भी जीवित रह सकता है और हरा चारा दे सकता है। सहजन का पेड़ अन्य पेड़ों की तुलना में कहीं अधिक कार्बन डाइऑक्साइड सोखता है। इसकी जड़ें मिट्टी में नाइट्रोजन स्थिरीकरण में मदद करती हैं, जिससे खेत की उर्वरता बढ़ती है।

निष्कर्ष: भविष्य का चारा

सहजन केवल एक पेड़ नहीं है, बल्कि यह आत्मनिर्भर भारत के सपने को साकार करने वाला एक उपकरण है। यह कम लागत में पशुओं को सर्वोत्तम पोषण प्रदान करता है, दूध की गुणवत्ता सुधारता है और पर्यावरण को सुरक्षित रखता है। पशुपालक भाइयों को सलाह दी जाती है कि वे अपने खेत के एक छोटे हिस्से में या मेड़ों पर सहजन जरूर लगाएं। यह न केवल आपके पशुओं का पेट भरेगा, बल्कि आपकी जेब भी भरेगा। वैज्ञानिक दृष्टिकोण और पारंपरिक ज्ञान का यह संगम ही आधुनिक पशुपालन की असली सफलता है।

सहजन अपनाएं, खर्च घटाएं, उत्पादन बढ़ाएं और पर्यावरण बचाएं!

♣♣♣

धान की नर्सरी तैयार करने की वैज्ञानिक विधि

मनोज कुमार प्रजापति- कृषि एवं संबद्ध विज्ञान संकाय, यूनाइटेड यूनिवर्सिटी प्रयागराज, उत्तर प्रदेश
गोविंद विश्वकर्मा- मृदा विज्ञान विभाग, डॉ. राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार

धान की नर्सरी तैयार करने में उच्च गुणवत्ता वाले बीजों का चयन, अंकुरण शुरू करने के लिए उन्हें 24 घंटे तक भिगोना और फिर उन्हें अगले 24 घंटे तक अंकुरित होने देना शामिल है। रोपाई से पहले, तैयार गीली या सूखी क्यारियों (आमतौर पर मुख्य खेत के क्षेत्रफल का 1/10वां भाग) में 15-25 दिनों तक पौधे उगाए जाते हैं। प्रमुख चरणों में क्यारी तैयार करना, बुवाई, नमी प्रबंधन, पोषक तत्वों का प्रयोग, खरपतवार प्रबंधन और कीट-रोग प्रबंधन शामिल हैं।

नर्सरी का प्रकार

गीली बीज क्यारी तैयार करना

यह धान के पौधों को उगाने की सबसे आम विधियों में से एक है। इसमें जुताई और हैरोइंग करके एक महीन, कीचड़युक्त मिट्टी तैयार की जाती है, और जल निकासी में आसानी के लिए क्यारियों को 10-15 सेंटीमीटर ऊंचा किया जाता है। गीली क्यारी वाली धान की नर्सरी, धान के पौधों को पानी से भरे वातावरण में उगाने की एक विधि है। यह विधि आमतौर पर उन क्षेत्रों में अपनाई जाती है जहां पर्याप्त पानी उपलब्ध होता है। इसमें बीज क्यारियां तैयार करना, बीजों को अंकुरित करना और पौधों के विकास के लिए नम वातावरण बनाए रखना शामिल है। पारंपरिक विधि में एक हेक्टेयर में रोपाई के लिए 20% (800 वर्ग मीटर) क्षेत्र की आवश्यकता होती है, जबकि एसआरआई प्रणाली में 100 वर्ग मीटर/हेक्टेयर (या) 2.5% प्रति हेक्टेयर (या) 1% प्रति एकड़ की आवश्यकता होती है। क्षेत्र में पानी की सुनिश्चित आपूर्ति और एक कुशल जल निकासी प्रणाली होनी चाहिए।

प्रक्रिया

नर्सरी क्षेत्र को सूखा करके दो बार जोतना चाहिए और 20% नर्सरी क्षेत्र (800 वर्ग मीटर) में 1 टन गोबर की खाद या कम्पोस्ट डालना चाहिए। बाद में, इसे सिंचित करना चाहिए और दो दिनों तक गीला रहने देना चाहिए। इसके बाद मिट्टी को दो बार अच्छी तरह से जोतना चाहिए और एक सप्ताह के अंतराल पर इसे दोहराया जा सकता है। कम उपजाऊ नर्सरी की मिट्टी में, जब पौधों को बुवाई के 20-25 दिनों बाद निकालना हो, तो 40 किलोग्राम डीएपी का बेसल प्रयोग करने की सलाह दी जाती है। यदि यह आसानी से उपलब्ध न हो, तो 16 किलोग्राम यूरिया और 120 किलोग्राम सुपर फॉस्फेट का सीधा प्रयोग करें। मिट्टी को समतल करने और अंतिम बार अच्छी तरह से जोतने के बाद, 8-10 × 2.5 मीटर की सुविधाजनक लंबाई और चौड़ाई की क्यारियां बनाएं, दो क्यारियों के बीच 30-50 सेंटीमीटर की जगह छोड़ें। उच्च गुणवत्ता वाले बीजों का प्रयोग करें, जिन्हें 24 घंटे तक भिगोकर 24 घंटे और अंकुरित होने दें और अंत में अंकुरित बीजों को क्यारी में समान रूप से बो दें। बीज बोने की मानक दर लगभग 90-100 ग्राम/वर्ग मीटर है। गीली क्यारियों में 1-2 सेंटीमीटर पानी की पतली परत बनाए रखें, और पौधों की ऊंचाई के साथ इसे धीरे-धीरे बढ़ाएं। सूखी क्यारियों में, पौधों को तनाव से बचाने के लिए

ISSN: 3049-2211

पर्याप्त नमी बनाए रखें। सूखे/गीले दोनों तरह के क्यारियों के लिए पौधे 15-21 दिनों के भीतर रोपण के लिए तैयार हो जाते हैं।

शुष्क बीज क्यारी की तैयारी

सूखी क्यारी वाली धान की नर्सरी सीमित जल स्तर वाले क्षेत्रों में धान के पौधों को तैयार करने की एक विधि है, जिसमें मिट्टी को जलभराव के बजाय नम रखा जाता है। गीली क्यारियों वाली नर्सरी की तुलना में इस विधि से पौधों को उखाड़ना आसान होता है। खेत को 5-6 बार सूखी जुताई करके महीन मिट्टी तैयार की जाती है। रेतीली और दोमट मिट्टी वाले क्षेत्र इस प्रकार की नर्सरी के लिए अधिक उपयुक्त होते हैं। 1 से 1.5 मीटर चौड़ाई और नालियों वाले क्यारियां बनाई जा सकती हैं। लंबाई ढलान और मिट्टी के अनुसार रखी जा सकती है। क्यारियां तैयार करने के बाद उन्हें गीला किया जाता है और 1 टन गोबर की खाद, 2.5 किलोग्राम फास्फोरस (P_2O_5) और 2 किलोग्राम पोटाश डाला जाता है। बुवाई सूखी विधि से की जा सकती है। बीजों को रेत और बारीक पिसी हुई गोबर की खाद से ढका जा सकता है।

डापोग विधि/चटाई विधि

धान की खेती के लिए डापोग या चटाई नर्सरी विधि में पौधों को मिट्टी के संपर्क में आए बिना, कंक्रीट के फर्श या प्लास्टिक शीट जैसी किसी ठोस सतह पर मिट्टी के मिश्रण की परत में उगाया जाता है। नर्सरी के लिए आवश्यक क्षेत्रफल 100 वर्ग मीटर/हेक्टेयर (या) 2.5% प्रति हेक्टेयर (या) 1% प्रति एकड़ है। बुवाई के 10-14 दिनों के भीतर पौधे रोपण के लिए तैयार हो जाते हैं। मिट्टी का मिश्रण 70% मिट्टी + 20% अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद + 10% चावल के छिलके को मिलाकर तैयार किया जाता है। मिट्टी के मिश्रण में 1.5 किलोग्राम पिसी हुई डीएपी या 2 किलोग्राम 17-17-17 एनपीके उर्वरक मिलाएं। प्रत्येक 100 वर्ग मीटर नर्सरी के लिए 4 वर्ग मीटर मिट्टी के मिश्रण की आवश्यकता होती है। 0.5 मीटर लंबा, 1 मीटर चौड़ा और 4 सेंटीमीटर गहरा लकड़ी का फ्रेम, जिसे 4 बराबर भागों में विभाजित किया गया हो, प्लास्टिक शीट या केले के पत्तों पर रखें और फ्रेम को लगभग ऊपर तक मिट्टी के मिश्रण से भर दें। बीजों को 24 घंटे तक पानी में भिगोएँ, पानी निकाल दें और भीगे हुए बीजों को 24 घंटे के लिए अलग रख दें। जब बीज अंकुरित हो जाएँ और जड़ (बीज की जड़) 2-3 मिमी लंबी हो जाए, तब उन्हें बोएँ और 5 मिमी मोटी सूखी मिट्टी से ढक दें। यह विधि विशेष रूप से कम समय में पकने वाली धान की किस्मों के लिए उपयुक्त है और इससे कम मेहनत, जड़ों को कम नुकसान और रोपण के समय पौधों को कम झटका लगने जैसे लाभ मिलते हैं। पौधे 10-14 दिनों में रोपण के लिए तैयार हो जाते हैं।

संशोधित मैट विधि

एक आधुनिक, विशेषीकृत विधि जिसमें बीजों को यांत्रिक रोपाई के लिए प्लास्टिक की चादरों पर पतली मिट्टी की परत में उगाया जाता है। धान के लिए संशोधित मैट नर्सरी में पारंपरिक नर्सीरियों की तुलना में कम भूमि और संसाधनों का उपयोग करते हुए, एक ठोस सतह पर मिट्टी के मिश्रण की परत पर पौधे उगाए जाते हैं। यह विधि पौधों के तेजी से विकास की अनुमति देती है, जिससे पौधे 15-20 दिनों में रोपाई के लिए तैयार हो जाते हैं। इससे नर्सरी की लागत में 50% तक की कमी आती है।

बबल ट्रे

बबल ट्रे नर्सरी 12-15 दिन पुराने पौधों को "जड़ के गोले" के साथ विकसित करने की एक अच्छी प्रणाली है। पौधों को 59 सेमी x 34 सेमी आकार की प्लास्टिक की ट्रे में उगाया जाता है जिसमें 434 छेद होते हैं। धान के प्रति हेक्टेयर में 750 ट्रे की आवश्यकता होती है। मशीनीकृत रोपाई के लिए हाथ से रोपाई की तुलना में अलग तकनीकों की आवश्यकता होती है।

नर्सरी प्रबंधन

पौधों के विकास के दौरान उनकी देखभाल की जाती है। नर्सरी प्रबंधन समय सारिणी का पालन करना आवश्यक है। आवश्यकता पड़ने पर 3-5 दिनों में खरपतवार प्रबंधन किया जाता है; कीट/रोग प्रबंधन 10-20 दिनों में किया जाता है।

जल प्रबंधन

गीली नर्सरी विधि में, बुवाई के 18 से 24 घंटे बाद पानी निकाल दें। तीसरे से पाँचवें दिन तक मिट्टी को पर्याप्त पानी दें ताकि वह पूरी तरह से भीग जाए। पाँचवें दिन से आगे, पौधों की ऊँचाई के अनुसार पानी की गहराई 1.5 सेमी तक बढ़ाएँ। इसके बाद पानी की गहराई 2.5 सेमी बनाए रखें। मैट नर्सरी विधि में, मिट्टी को नम रखने के लिए आवश्यकतानुसार (दिन में दो या तीन बार) गुलाब के कैन से नर्सरी में पानी दें। 6वें दिन, पौधों की क्यारियों के चारों ओर पानी की एक पतली परत बनाए रखें। शुष्क विधि में, मिट्टी को पूरी तरह से भीगने तक सिंचाई की जा सकती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

यदि 15वें दिन बेसल खुराक के रूप में डीएपी नहीं दिया गया है, तो 40 किलोग्राम डीएपी डालें। पौधे 25-35 दिनों में मुख्य खेत में रोपने के लिए तैयार हो जाते हैं और उन्हें उखाड़ लें। यदि मिट्टी भारी चिकनी है, तो पौधे उखाड़ने से एक दिन पहले 20 किलोग्राम जिप्सम डालें। यदि पौधों की वृद्धि धीमी हो, तो 8-10 दिनों के अंतराल पर

0.5% यूरिया + 0.5% जिंक सल्फेट का घोल छिड़कें। गीली नर्सरी विधि में, यदि पौधों को 25 दिनों के बाद उखाड़ना हो, तो उखाड़ने से 10 दिन पहले डीएपी का प्रयोग करें। चिकनी मिट्टी के लिए, बुवाई के 10वें दिन 4 किलो जिप्सम और 1 किलो डीएपी का प्रयोग किया जा सकता है। मैट नर्सरी विधि में, यदि तापमान और पानी पर्याप्त मात्रा में हों, लेकिन पौधे पीले पड़ रहे हों (नाइट्रोजन की कमी), तो पौधों पर 0.5% यूरिया (1.5 किलो यूरिया 300 लीटर पानी में/100 वर्ग मीटर) छिड़कें।

खरपतवार प्रबंधन

- ✓ मैदानी नर्सरी में बुवाई के तीसरे या चौथे दिन प्री-इमर्जेंस हर्बिसाइड, जैसे कि प्रीटिलाक्लोर + सेफनर (0.3 किलोग्राम/हेक्टेयर की दर से), का प्रयोग करके खरपतवारों का प्रबंधन किया जा सकता है। बड़े हो चुके खरपतवारों को हाथ से हटाया जा सकता है।
- ✓ ब्यूटाक्लोर 50% EC @ 2.5-4 लीटर/हेक्टेयर या प्रेटिलाक्लोर 50% EC @ 1.0-1.5 लीटर/हेक्टेयर या ऑक्साडियार्गिल 80% WP @ 0.125 किग्रा/हेक्टेयर या क्लोरीम्यूरॉन इथाइल 25% WP @ 24 ग्राम a.i./ha या मेट्सफ्लूरन मिथाइल 20% WG @ 20 ग्राम/लीटर या रोपाई के 4-6 दिनों के भीतर उभरने से पहले एनिलोफोस 2% जी @ 20-25 किग्रा/हेक्टेयर या एथोक्सीसल्फ्यूरॉन 15% डब्ल्यूडीजी @ 83.3-100 ग्राम/हेक्टेयर या सिनेमेथालिन10% ईसी @ 0.75-1.0 एल/हेक्टेयर।
- ✓ रोपाई के 3-10 दिन बाद मेटसल्फ्यूरॉन मिथाइल 10% + क्लोरिम्यूरॉन मिथाइल 10% WP @ 20 ग्राम/हेक्टेयर या एनिलोफोस 24% + 2, 4-डी-एथिल एस्टर 32% EC @ 1-1.5 लीटर/हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।

कीट-पतंग और रोग प्रबंधन

धान की नर्सरी में अनेक प्रकार के कीट लग सकते हैं, जिनमें थ्रिप्स, आर्मीवर्म, ग्रीन लीफहॉपर और केसवर्म प्रमुख कीट हैं। चावल के थ्रिप्स, आर्मीवर्म, ग्रीन लीफहॉपर और केसवर्म को लैम्डा-साइहलोथ्रिन, क्लोरपाइरीफोस, क्विनालफोस और साइपरमेथ्रिन जैसे लक्षित कीटनाशकों का उपयोग करके रासायनिक रूप से नियंत्रित किया जा सकता है। प्रभावी प्रबंधन में अक्सर बीज उपचार, कीटनाशकों का जल्दी छिड़काव (5% क्षति सीमा) या ग्रीन लीफहॉपर जैसे रस चूसने वाले कीटों के लिए प्रणालीगत कीटनाशकों का प्रयोग शामिल होता है।

लीफ हॉपर के लिए: इमिडाक्लोप्रिड 70% डब्ल्यूजी @ 30-35 ग्राम/हेक्टेयर या इमिडाक्लोप्रिड 30.5% एम/एम एससी @ 60-75 मिली/हेक्टेयर या एथोफेनोप्रॉक्स 10% ईसी @ 500-750 मिली/हेक्टेयर या एसिफेट 75% एसपी @ 666-1000 ग्राम/हेक्टेयर या बुप्रोफेज़िन 25% एससी @ 800 मिली/हेक्टेयर का छिड़काव करें।

केसवर्म के लिए: कार्बैरिल 10% डीपी का छिड़काव 25000 ग्राम/हेक्टेयर की दर से करें।

पत्ती मोड़ने वाले कीट के लिए: कार्टैप हाइड्रोक्लोराइड 4% ग्रेन्यूल्स का छिड़काव 18750-25000 ग्राम/हेक्टेयर की दर से करें या कार्टैप हाइड्रोक्लोराइड 50% एसपी का छिड़काव 1000 ग्राम/हेक्टेयर की दर से करें या मोनोक्रोटोफोस 36% एसएल का छिड़काव 625-1250 मिली/हेक्टेयर की दर से करें या क्लोरपाइरिफोस 1.5% डीपी का छिड़काव 25 किलोग्राम/हेक्टेयर की दर से करें।

ब्लास्ट रोग के लिए: कार्बेन्डाजिम 50% डब्ल्यूपी का छिड़काव 250-500 ग्राम/हेक्टेयर की दर से करें या आइसोप्रोथियोलन 40% ईसी का छिड़काव 750 मिली/हेक्टेयर की दर से करें या ट्राइसाइक्लोजोल 75% डब्ल्यूपी का छिड़काव 300-400 ग्राम/हेक्टेयर की दर से करें या ट्राइसाइक्लोजोल 70% डब्ल्यूजी का छिड़काव 300 ग्राम/हेक्टेयर की दर से करें।

जीवाणु पत्ती झुलसा रोग (बीएलबी): लक्षणों के पहली बार प्रकट होने पर स्ट्रेप्टोमाइसिन सल्फेट 9% + टेट्रासाइक्लिन हाइड्रोक्लोराइड 1% एसपी @ 100-150 पीपीएम (100-150 मिलीग्राम/लीटर) का छिड़काव करें।

टुंग्रो वायरस रोग: कीट वाहकों की निगरानी और उन्हें आकर्षित करने के लिए प्रकाश जाल लगाएं।पत्तियों के पीलेपन को कम करने के लिए 2% यूरिया को मैनकोज़ेब के साथ मिलाकर 2.5 ग्राम/लीटर की दर से छिड़काव करें। नर्सरी में जब विषाणु संक्रमण कम हो, तो कीट वाहकों की संख्या को नियंत्रित करने के लिए कार्बोफ्यूरान के दाने 1 किलोग्राम सक्रिय तत्व/हेक्टेयर की दर से डालें।

♣♣♣

कृषि में कृत्रिम बुद्धि (आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) का बढ़ता उपयोग

सोनाली सिंहवाल- एम.एस.सी.(आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन) शोध छात्रा, चै.च.वि.वि. परिसर मेरठ (उ.प्र.)
अंशिका- बी.एस.सी. (कृषि) छात्रा. चैधरी छोटू राम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)

कृत्रिम बुद्धि एक ऐसी तकनीक है, जो कंप्यूटर जैसी मशीनों के माध्यम से कार्य करती है। यह विशेष रूप से कंप्यूटर प्रोग्रामों के निर्माण की एक तकनीक है अर्थात् कृत्रिम बुद्धि एक कम्प्यूटर प्रोग्राम की सीखने और सोचने की क्षमता है। कृत्रिम बुद्धि में नचप्रवर्तन, आधुनिकरण और विकास के व्यापक अवसर है और यह भविष्य में विश्व को अनेक प्रकार से लेकर रक्षा प्रणालियों में प्रगति आदि में कृत्रिम बुद्धि की भूमिका है। वर्तमान में मानव एक तकनीक युग में जी रहा है अर्थात वैज्ञानिक तकनीक के बिना मानव का जीवन एक समय में अधूरा है। इन सभी प्रौद्योगिकी में कृत्रिम बुद्धि अपेक्षाकृत अधिक तीव्रता से परिवर्तन लाने की क्षमता रखती है। इसे चतुर्थ औद्योगिक क्रांति के रूप में भी जाना जाता है जिसने मानव के जीवन यापन में, कार्य करने की क्षमता में तेजी से परिवर्तन लाया है।

कृत्रिम बुद्धि सामाजिक न्याय, जीवन में सुख सुविधाओं में वृद्धि एवं लोगों को बेहतर रोजगार उपलब्ध कराने में सक्षम है। इसी के साथ-साथ यह मानव की अपेक्षा बिना थके अधिक देर तक कार्य करने में सक्षम है, जिसके कारण उत्पादन क्षमता में अत्यधिक वृद्धि होगी साथ ही साथ बड़े-बड़े औद्योगिक कारखानों में जहाँ पर काम करते समय मानव की जान को अत्यधिक खतरा होता है, वहाँ पर भी इस तकनीक के द्वारा सरलता से बिना कोई जोखिम उठाए कार्य किये जा सकते हैं।

कृत्रिम बुद्धि का अर्थ

व्यापक अर्थ में, कृत्रिम बुद्धि कंप्यूटर विज्ञान की वह शाखा है जिसमें स्मार्ट मशीनें इस तरह से बनाई जाती है कि वे मानव की तरह प्रतिक्रिया दें और व्यपहार करें, किसी कृत्रिम पद्धति, मशीन या रोबोट के निर्माण का उद्देश्य निर्णय करने की प्रक्रिया में सहायता पहुँचाना है जिसका संगठन के पास उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर पूरी तरह से विश्लेषण किया जाता है। किसी कृत्रिम पद्धति के निर्माण की पूरी प्रक्रिया उसी तरह है जैसे मानव सूचनाओं को मिलाते है और उपयुक्त निर्णय प्रदान करते हैं। अंतर केवल इतना है कि कृत्रिम बुद्धि के मामले में, भारी मात्रा में उत्पन्न और एकत्रित आंकड़ों का विश्लेषण करके निर्णय लिया जाता है।

कृत्रिम बुद्धि के लाभ

1. अनुसंधान और आंकड़ा विश्लेषणः कृत्रिम बुद्धि अधिक कुशल तरीके से आंकड़ों का विश्लेषण करने में सहायता करती है। यह प्रौद्योगिकी भरोसेमंद माडल और एल्गोरिदम बनाने में सहायता करती है ताकि आंकड़ों का विश्लेषण किया जा सके और विभिन्न प्रवृत्तियों और परिदृश्यों के आसान परिणामों को समझा जा सके। कृत्रिम बुद्धि की उन्नत कम्प्यूटर विशेषताएं अनुसंधान और विकास के लिए आंकड़ों का एकत्र एवं विश्लेषण को तेज करने में सहायता करती है।

2. दोहराए जाने वाले कार्यों का प्रंधनन और निरंतरता सुनिष्चित करना: कृत्रिम बुद्धि संचालित रोबिटिक स्वचालन प्रक्रिया कार्यों को करने में सहायता करती है। चूंकि जाखिम प्रबंधन आज डेटा प्रबंधन और विश्लेषण पर बहुत अधिक निर्भर करता है, इसलिए कृत्रिम बुद्धि संचालित उपकरण संगठनों को संकट का लगातार जवाब देने में सहायक है। कृत्रिम बुद्धि तकनीक न केवल कंपनियों को महत्वपूर्ण निर्णय लेने में सहायता करती है बल्कि व्यापार निरंतरता सुनिश्चित करने के लिए उन्हें किसी भी आपात स्थिति के लिए तैयार करती है।

3. उज्जवल और बहुमुखी कॅरियर के अवसर: कृत्रिम बुद्धि आटोमोबाइल उद्योग, स्मार्ट घरेलू उपकरणों, आनलाइन ग्राहक सहायता, सुरक्षा निगरानी, खुदरा, स्वास्थ्य देखभाल और कई अन्य प्रमुख क्षेत्रों के लिए स्वाभाविक साधन बन गया है। इसलिए कृत्रिम बुद्धि उज्जवल और बहुमुखी कॅरियर के अवसर प्रदान करता है। इसके अंतर्गत संभावित रोजगार भूमिकाओं में मशीन लर्निंग इंजीनियर, साफ्टवेटर इंजीनियर, हार्डवेयर इंजीनियर, रिसर्च इंजीनियर से लेकर बिजनेस बुद्धिमता विकास और यहाँ तक कि डेटा वैज्ञानिक तक शामिल हो सकते हैं।

4. चिकित्सा विज्ञान की सहायकता करना और जटिल समस्याओं का समाधान करना: कृत्रिम बुद्धि दूरस्थ रोगी निगरानी प्रौद्योगिकी, संक्रामक रोगों के फैलाव पर निगरानी, भविष्य के प्रभावों और परिणामों की भविष्यवाणी, उपचार के लिए कुछ रोगों का निदान चिकित्सा विज्ञान में प्रमुख लाभ है।

कृत्रिम बुद्धिमता यह मानव संचालित संसाधन है जो मानव जाति के लाभ के लिए बनाया गया है। वर्ष 1965 में, ब्रिटिश गणितज्ञ और क्रिप्टोलाजिस्ट आई जे गुड ने ठीक ही कहा था कि स्मार्ट कृत्रिम बुद्धि प्रणाली को डिजाइन करना अपने आप में एक तर्कसंगत और विचारशील कार्य है। सुपर बुद्धिमता जैसी नई तकनीकों की खोज और क्रांति से समाज को युद्ध, बीमारी, गरीबी को खत्म करने में सहायता मिलती है और यही कारण है कि कृत्रिम बुद्धि मानव द्वारा सबसे बड़ा और सबसे महत्वपूर्ण नवाचार बन गया है।

सटीक कृषि में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का उपयोग

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) शब्द का उपयोग कंप्यूटर और प्रौद्योगिकी के उपयोग को परिभाषित करने के लिए किया जाता है जो एक व्यक्ति की तुलना बेहतर प्रदर्शन और महत्वपूर्ण योगदान करता है। जॉन मैकार्थी ने 1956 में कंप्यूटर विज्ञान में इस शब्द का प्रयोग किया, जो कंप्यूटर में मनुष्यों की तरह व्यवहार करने से संबंधित था। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, कंप्यूटर विज्ञान से अलग है क्योंकि इसकी समझने, तर्क और कार्यवाई करने में बहुत परिपक्वता है। यह कृषि को और अधिक लाभप्रद बनाता है। यह कृत्रिम न्यूरान्स और वैज्ञानिक प्रमेयों की मदद से काम किता है। कंप्यूटर में वह क्षमता है जो मनुष्य की बुद्धि क्रिया का अनुकरण करता है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस कम्प्यूटेशनल मॉडल के माध्यम से मानसिक संकायों का अध्ययन है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, तर्क, नए कौशल सीखने और नई स्थितियों और समस्याओं को अपनाने जैसे बुद्धिमत्ता कार्यों को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस में प्रचलित विभिन्न विशिष्ट विधियां हैं, जैसे; न्यूरल नेटवर्क, फजी लॉजिक, इवोल्यूशनरी कम्प्यूटिंग और हाइब्रिड आर्टिफिशयल इंटेलिजेंस इत्यादि।

कृषि में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की लोकप्रिय तीन प्रमुख निम्न श्रेणियां हैं,

(1) पूर्व सूचना: मौसम के बदलाव, खेत की फसल का आकलन, पैदावार, बाजार की मांग और आपूर्ति जैसे फसल के कारोबार पर प्रभाव डालने वाले विभिन्न फसल पर्यावरण कारकों का अनुमान लगाने के लिए आर्टिफिशयल इंटेलिजेंस का प्रयोग करके किसान लाभावंति हो सकते है।

(2) अन्वेषण: सेंसर द्वारा फसल और मिट्टी की स्वास्थ्य स्थिति, पर्यावरण मापदंडों का निरीक्षण, आकड़ों को इकठ्ठा कर संसाधित करने के लिए विभिन्न तरीकों को लागू किया जाता है। इनका उपयोग संसाधनों के मूल्यांकन के लिए किया जाता है।

(3) खेत में संसाधनों की पूर्ति: खेती में पोषक तत्व और रासायनिक अनुप्रयोग के उचित मात्रा की आवश्यकता होती है। कृषि कार्यों में ए.आई. आधारित स्वचालन का उपयोग करके कृषि में सटीक संचालन में उच्चतम स्तर को लाने में मदद मिलती है। एआई आधारित मशीनरी और रोबोटिक्स का उपयोग आवश्यक कृषि कार्यों के लिए किया जाता है। वे मानव और सामान्य मशीनरी की तुलना में तेज तथा अधिक कुशलता का प्रदर्शन करते हैं।

ए.आई. का उपयोग छोटे भूमि धारकों के लिए बहुत उपयुक्त है। भारत में ऐसे छोटे किसानों की एक बड़ी संख्या है। इससे किसान रोपण की बारिकियों (बीज की गहराई, स्थान, दर, आवश्यकताओं के अनुसार उर्वरक), रोग की जानकारी, सिंचाई समय सारणी, फसल की परिपक्वता का स्तर आदि पर जानकरी प्रदान करता है। विभिन्न मानकों पर विवरण एकत्र करने के लिए कृषि कार्यों में उपयोग किए जाने वाले सेंसर, इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT) भी वास्तविक समय में सूचना देने और समाधान के लिए खेतों में एक महत्वपूर्ण कारक है। खेती करने वाले किसान ए.आई. द्वारा प्राप्त सूचनाओं का प्रयोग कर सकते हैं जो सेंसर के माध्यम से वास्तविक काल में उपयुक्त कदम उठाने में मदद करता है और समाधान

देता है। एंड्रॉइड आधारित स्मार्टफोन अधिकतम किसानों के पास उपलब्ध एक सामान्य उपकरण है। इसका उपयोग दूरस्थ स्थानों से फसलों और उपकरणों के प्रबंधन और निगरानी के लिए किया जा सकता है।

कृषि में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की संरचना

परिशुद्ध कृषि (च्।) के अंतर्गत फार्म प्रबंधन में सूचना प्रौद्योगिकी, रिमोट सेंसिंग और डेटा एकत्र करना बहुत महत्वपूर्ण है। इससे कितना, कहाँ, क्या, कब, कैसे, सवालों के जवाब मिल जाते हैं। ये प्रौद्योगिकियां लाभ का अनुकूलन करती हैं और संभावतः पर्यावरणीय प्रभावों को कम करती हैं। सेंसिंग, वास्तविक समय पर डेटा प्राप्त करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जैसे मिट्टी और परिवेश का तापमान, नमी, सिंचाई पानी और मिट्टी की चालकता और pH मिट्टी पोषक तत्व, सिंचाई पानी के गुण इत्यादि इन आंकड़ों को संचार माध्यमों (वाईफाई, ब्लूटूर्थ, इंटनेट) द्वारा प्रेषित किया जा सकता है। विभिन्न सॉफ्टवेर का उपयोग करके आंकड़ों को विश्लेषित किया जाता है। कृषि कार्यों के प्रबंधन के लिए उनके विश्लेषण परिणाम का उपयोग किया जाता है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) कृषि संचालन के प्रबंधन में एक नई दिशा दे रही है।

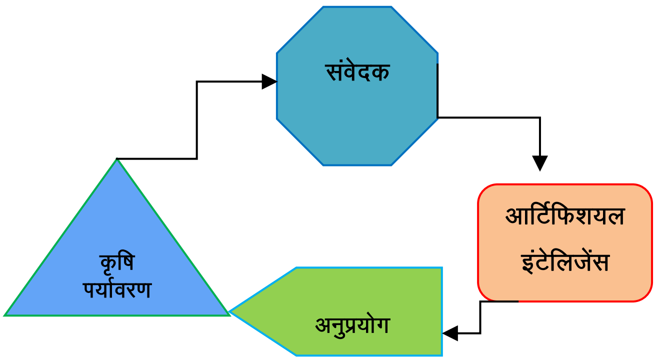

चित्र 1: कृषि में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (ए.आई.) की मूल संरचना

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) एक कंप्यूटिंग सिस्टम है, जिसे मानव प्राणियों की भागीदारी या बिना भागीदारी के किया जा सकता है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस को आसानी से उन चीजों को करने के लिए अपनाया जा सकता है जो मानव द्वारा कंप्यूटर माध्यम से किये जाते हैं। एआई मनुष्यों की तुलना में उन्नत प्रदर्शन करता है। एआई, कृषि में स्वचालन और रोबोटिक्स को अपना कर विश्लेषणात्मक, ज्ञान दृष्टिकोण द्वारा शारीरिक काम को कम कर सकता है। कृषि में बहुत ऊर्जा के साथ लंबी अवधि तक अनेक कृषि कार्यों को करना पड़ता है। उदाहरण के लिये, ट्रैक्टर चलाना, कटाई, रासायनिक अनुप्रयोग, सिंचाई आदि का संयोजन करना। इन कार्यां को निष्पादित करने के लिए फसल, मिट्टी, वातावरण और अन्य कारकों की स्थिति का विश्लेषण करना आवश्यक है। कार्य के अनुसार, विभिन्न स्तर की जानकारी आवश्यक हैं, जिसकी चर्चा नीचे की गई है:

खेत की तैयारीः प्रत्येक फसल के अंत में अगली फसल बोने और रोपण के लिए खेत की तैयारी आवश्यक है। भारत जैसे अधिकांश विकाशील देशों में ट्रैक्टर या पावर टिलर का उपयोग करके खेत को तैयार किया जाता है और कुछ स्थानों पर बैल चालित हल का उपयोग किया जाता है। खेत की तैयारी में सबसे ज्यादा लागत आती है। इसलिए ए.आई. तकनीक का उपयोग करके लागत में कटौती करने की एक बड़ी संभावनाएं है। ए.आई. में मिट्टी के प्रकार, मिट्टी के घनत्व और संचालन की आवश्यक गहाई का विश्लेषण करने की क्षमता है। स्वचालित गहाई और ड्राफ्ट नियंत्रण तंत्रों को अपनाकर ए.आई. तकनीक द्वारा जुताई और संचालन की गहाई को नियंत्रित किया जा सकता है। इसके अलावा, वर्तमान समय में कई वाहनों में ऑटोमेशन और रोबोटिक्स एप्लिकेशन को देखा गया है। जिसे ट्रैक्टर या कृषि वाहनों में आसानी से अपनाया जा सकता है और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस तकनीक द्वारा नियंत्रित किया जाता है। इसके द्वारा जैसे; धान, सब्जियां एवं अन्य फसल बीज के लिए स्वचालित प्रत्यारोपण उपकरणों का उपयोग किया जा सकता है।

मृदा पोषक तत्व विष्लेषण और प्रबंधनः मिट्टी में पोषक तत्वों का अनुप्रयोग लागत और श्रम-साध्य है। इष्टतम मात्रा को देने के लिए विश्लेणात्मक अध्ययन एवं जानकारी की आवश्यकता है। विभिन्न मृदाओं में पोषक तत्वों की खेत में आवश्यकता भिन्न हो सकती हैं जिसके लिए पोषक तत्वों का समान दर पर वितरण उचित नहीं है। जिसके परिणामस्वरूप निवेश की उच्च लागत, पर्यावणीय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। रसायनों के विवेकपूर्ण अनुप्रयोग के लिए, खरपतवार और कीटों या रोगों से संक्रमित लक्ष्य स्थान की पहचान के लिए, एक मानचित्रण प्रणाली की आवश्यकता होती है। रसायनों के समान वितरण के कारण, निक्षेप, अधिक मात्रा में या कम मात्रा में होता है। जब एक बड़े क्षेत्र को छोटी इकाई में विभाजित करके, उपलब्ध पोषक तत्वों के स्तर पर पोषक तत्व की उपलब्धता का नक्शा बना कर प्रसंस्करण या कंप्यूटिंग इकाई में दिया जाता है। तब ए.आई. तकनीक के साथ पोषक तत्व नक्शा आधारित रासायनिक और उर्वरक वितरण अधिक प्रभावी होते है। इसी तरह, इमेज प्रोसेसिंग तकनीक का उपयोग करके कीट या बीमारी के सक्रमण के स्तर, स्थान का पता लगाया जाता है इसके अतिरिक्त स्थान को अक्षांश और देशांतर स्थिति के अनुसार चिह्निन्त और पहचाना जाता है। इन आकड़ों का उपयोग आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस सिस्टम द्वारा रोबोट या स्वचालित एप्लिकेटर द्वारा सटीक प्रबंधन को निष्पादित करने के लिए किया जाता है। इसके बाद, क्षेत्र में

ISSN: 3049-2211

रसायनिक और उर्वरक अनुप्रयोगों को स्वचालन प्रणाली और रोबोटिक्स एप्लिकेशन द्वारा खेत या ग्रीनहाउस में इष्टतम दर में किया जाता है।

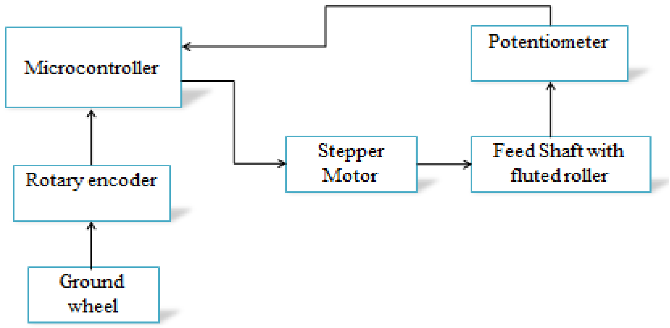

चित्र 2: एआई का उपयोग करके पोषक तत्व प्रबंधन के तरीके

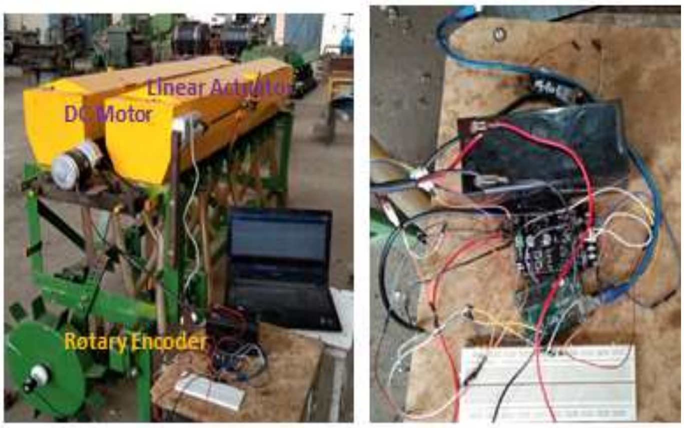

चित्र 3: पोषक तत्व प्रबंधन के लिए बीज एवं खाद वितरण मशीन में एंबेडेड सिस्टम

मृदा नमी मापन: मिट्टी की नमी की मात्रा समय और वाष्पीकरण के साथ बदल जाती है। इसलिए पानी के प्रति संवेदनशील फसलों के लिए मृदा नमी की निरंतर निगरानी महत्वपूर्ण है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस तकनीक से क्षेत्र में सिंचाई प्रणाली में स्वचालन संभव है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस इलेक्ट्रिक पंप के साथ एकीकृत, नमी सेंसर से क्षेत्र के पानी की मात्रा का विश्लेषण होता है और वास्तविक समय के आंकड़ों के आधार पर, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस पंप को नियंत्रित करने के लिए, स्वचालन प्रणाली में पंप को ए.आई. प्रणाली के साथ जोड़ा जाता है, जिसके परिणामस्वरूप बहुत अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं।

रोग विश्लेषण: रोग और कीट प्रकोप के कारण फसल क्षतिग्रस्त हो जाती है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस से फसल रोग और कीट उपस्थिति का पता लगाने में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है जो प्रबंधन के लिए प्रमुख कारक हैं। इसलिए सेंसर-आधारित वास्तविक समय आंकड़ा संग्रह और इसके कुशलतापूर्वक विश्लेषण, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस द्वारा निरंतर निगरानी संभव है। छवि प्रसंस्करण एक उन्नत तकनीक है जिसका उपयोग फसल में रोग और कीट का पता लगाने के लिए किया जाता है ताकि कीटनाशक के अनुकूलतम प्रयोग के साथ संक्रमण को नियंत्रित किया जा सके। कीट व रोग की समस्या से निपटने के लिए उपयुक्त मॉडल के साथ आंकड़ा सेट के विश्लेषण और प्रशिक्षण के लिए गणितीय दृष्टिकोण और तार्किक तरीकों का उपयोग किया जाता है।

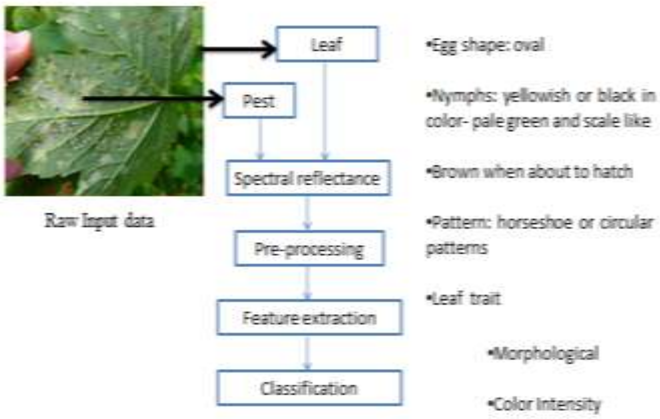

चित्र 4: ए.आई. तकनीक का उपयोग करके कीट का पता लगाना

निराई-गुड़ाई कार्यों में: ए.आई. आधारित खरपतवार का पता लगाने और यांत्रिक या रसायन स्वचालन प्रणाली द्वारा निराई के लिये बहुत उपयोगी है। क्षेत्र के हरे रंग का विश्लेषण किया जाता है और तदनुसार, खरपतवारनाशी छिड़काव किया जाता है। इसके अलावा, फसल की रूप-रेखा रूपात्मक विशेषता का पता लगाने वाली तकनीक के द्वारा खरपतवार की पहचान करने और मुख्य फसल को खरपतनाशी से अलग करने के लिए उपयोग किया जाता है। फसलों और खरपतवारनाशी के मापदंडों का विश्लेषण किया जाता है और विभिन्न विशिष्ट विशेषताओं और परिकल्पना के अनुसार क्लस्टर में विभाजित किया जाता है, इससे खरपतवारनाशी और फसल की विशेषता को विकसित किया जाता है। इसका उपयोग खरपतवार संक्रमण को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है।

चित्र 5. प्रोसेसिंग तकनीक का उपयोग करके खरपतवार का पता लगाना

परिपक्वता स्तर का विश्लेषण और कटाई: कटाई के लिये फसल की परिपक्वता का स्तर इष्टतम चरण महत्वपूर्ण है। नमी की अधिक मात्रा के कारण फसल की अपरिपक्व फसल की क्षति होती है। इसलिए इष्टतम

ISSN: 3049-2211

नमी पर फसल कटाई समय आवश्यक है और यह विभिन्न इनपुट मापदंडों जैसे भौतिक गुण जैसे; (रंग), गंध, घनत्व, नमी सामग्री आदि का विश्लेषण करके किया जाता है। ए.आई. आदानों के द्वारा फसल परिपक्वता संबंधित आकड़ों की तुलना करना आसान है। परिपक्वता विश्लेषण के इस क्षेत्र में छवि प्रसंस्करण और विभिन्न ई-संवेदक प्रभावी पाए जाते हैं।

मौसम की भविष्यवाणी

मौसम एक बहुत ही गतिशील प्रक्रिया है, जिसका खेती में प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। फसल की उच्चतम पैदावार भी मौसम पर निर्भर करती है, इसलिए उचित वर्षा में गिरावट, गर्मी की प्रतिकूलता, प्रति दिन धूप का समय, आर्द्रता और अन्य प्राकृतिक आपदा भविष्यवाणी बुनियादी जानकारी हैं जिन्हें जानना आवश्यक है। मौसम की निगरानी, भविष्यवाणी और रिपोर्टिंग में ए.आई. का व्यापक अनुप्रयोग किया जाता है। मौसम के आंकड़ों को संग्रह करने के लिए उपयोग किए जाने वाले अलग-अलग संवेदक यथा वर्षा में गिरावट, तापमान, हवा की गति, आर्द्रता, गर्मी आदि और एक निश्चित लंबी अवधि में आंकड़ें संग्रहीत करना संभव हो सकता है। दैनिक आंकड़ों का भंडारण स्वचालित रूप से इसके विश्लेषण और प्रतिवेदन ए.आई. तकनीक द्वारा किया जा सकता है, जहाँ ए.आई. के प्रयोग की अवधि में अग्रिम स्तर का उपयोग विभिन्न वर्षों से आदान भंडारण आंकड़ा प्रवृत्ति के आधार पर मौसम की भविष्यफल भविष्यवाणी के लिए किया जा सकता है।

सारांश

वर्तमान समय सूचना एवं मशीनों का युग है। जिसमें ए.आई. एवं मशीन लर्निंग आज की आश्यकता बन बन गयी है। कृषि क्षेत्र में स्मार्टफोन में ए.आई. का उपयोग करके समय एवं लागत में मौसम, कीट एवं बीमारी की जानकारी प्राप्त करके फसल उत्पादन व उत्पादकता बढ़ाकर किसान आर्थिक लाभ कमा सकते हैं।

♣♣♣

पशुधन उत्पादों का विपणन

डा. प्रियल तिवारी (टिचिंग एसोसिएट), **डा. सुभाष कुमार वर्मा** (असिसटेंट प्रोफेसर)
डा. नडिपिल्लि श्रीलक्ष्मी (असिसटेंट प्रोफेसर संविदा)

ताजा मांस

मांस विपणन की प्रारंभिक शुरुआत मानव जाति की पहली बस्तियों और विभिन्न व्यवसायों और व्यवसायों के विकास के साथ संयोग हो सकता है।तब से, मांस के कई देशों में एक मूल्यवान वस्तु के रूप में विकसित किया गया है।ताजा मांस एक बेहद खराब अच्छा और नुक़सान इसलिए संभावना है और उपभोक्ता संरक्षण के लिए अत्यंत सावधानी के साथ process किया जाना चाहिए।मांस, उत्पादित जाया जाता है, स्वास्थ्य कर परिस्थितियों में संग्रहीत और विपणन किया जाना चाहिए।

अक्सर ताजा या फ्रोजन मांस उच्च मांग के साथ बाजार के लिए विश्व भर में एक क्षेत्र से भेज दिया है ।औद्योगिक मांस प्रोसेसर, कच्चे मांस सामग्री की कमी के साथ सामनाकिया, आगे की प्रक्रिया के लिए दुनिया भर से जमे हुए मांस की सजावट की बड़ी मात्रा में आयात करने में सक्षम हैं ।यह सर्व विदित है कि अफ्रीका में एक सुपर मार्केट शेल्फ पर पाया एक डिब्बा बंद मांस उत्पाद एशिया, दक्षिण अमेरिका से यूरोप से सूअर का मांस और मांस से भैंस के मांस में शामिल है कि हो सकता है।

औद्योगिक देशों में ताजा मांस ज्यादातर आधुनिक वध सुविधाओं में उत्पन्न होताहै और एक निरंतर कोल्ड चेन काटने, परिवहन और विपणनके दौरान लागू किया जाता है।मांस निरीक्षण और गुणवत्ता नियंत्रण प्रक्रिया ओंजगह में डाल रहे हैं और कार्यान्वयन सरकार के अधिकारियों द्वारा नजर रखी है।स्थान के आधार पर, मूल रूप से दो अलग विपणन प्रणाली मनाया जा सकता है:

औद्योगिक देशों के ग्रामीण सेटिंग्स में, पूरे मांस विपणन श्रृंखला अक्सर इस प्रकार लंबी आपूर्ति श्रृंखला से पर हे जहै, तत्काल आसपास में उत्पादित ताजा मांस बेच पारंपरिक butcheries द्वारा कवर किया जाता है।कसाई smallholder पशुधन उत्पादकों के लिए सीधे संपर्क किया है और अपने ग्राहकों के लिए ताजा मांस और विशेष मांस कटौती प्रदान करते हैं।अपने स्वयं के वध, काटने, प्रसंस्करण और बिक्री की सुविधा होने की पेश कश की मांस की ताजगी और traceability सुनिश्चित करता है।जिम्मेदार स्थानीय अधिकारियों शुरू की मांस स्वच्छता और सुरक्षा नियमों की निगरानी।

शहरी केंद्रों और औद्योगिक क्षेत्रों में उपभोक्ताओं को सीधे अपने खुद के उत्पाद बेचने छोटे butcheries की संख्या में पिछले दशकों में काफी हदत ककमकिया है।आबादी बढ़ रही है और मांस के लिए बढ़ती मांग के साथ, बेहतर अनुकूल विपणन प्रणाली की जरूरत थी ।आधुनिक सुपर मार्केट दुकानों इस भूमिका पर ले लिया। इस तरह की उच्च मात्रा मांस उत्पादन और व्यापार के उपभोक्ताओं के लिए स्वास्थ्य के खतरों से बचने के लिए कड़े गुणवत्ता नियंत्रण प्रणाली की आवश्यकता है।कारण पशुधन उत्पादन क्षेत्रों और मांस, ताजगी और

ISSN: 3049-2211

traceability के लिए लंबे समय तक आपूर्ति श्रृंखला जिसके परिणाम स्वरूप से दूरी के विपणन श्रृंखला में शामिल सभी दलों के लिए एक चुनौती प्रस्तुत करते हैं।विकास और कड़े गुणवत्ता नियंत्रण प्रणाली और कुशल traceability के तंत्र के बाद परिचय एकतार्किक परिणाम था।

एक तेजी से औद्योगीकरण की प्रक्रिया शहरी आबादी का एक एकाग्रता और मेगा शहरों के विकास से जुड़े हुए जगह ले ली है, जहां कुछ देशों में, भोजन की आपूर्ति में गंभीर समस्याओं में उभरा ।उपभोक्ता वरीयताओं प्रचलित होने के कारण, ताजामांस अक्सर अभी भी परंपरागत गीला बाजार में बेच दिया जाता है, लेकिन पर्याप्त बुनियादी सुविधाओं के बिना दूर शहरों के बाहर से ले जाया जाना चाहिए।नतीजतन, उपभोक्ताओं के लिए गंभीर स्वास्थ्य को खतरा उभर सकते हैं।हाल के वर्षों में, सुपर मार्केट में ऐसे क्षेत्रों में उभर रहे हैं, लेकिन कीमतें अधिक हो सकती है और मांस अक्सर कम आय वर्ग के लिए नहीं सस्ती है।

मुख्य रूप से कृषि आधारित अर्थ व्यवस्थाओं के साथ विकासशील देशों में, ताजा मांस अभी भी मुख्य रूप से पारंपरिक गीला बाजार या साधारण मांस स्टालों के माध्यम से वितरित किया जाता है।ये गीला बाजार और मांस स्टालों अक्सर वधस्थानों के लिए या ग्रामीण वध सुविधाओं की निकटता में जुड़े होते हैं।कार्यात्मक कोल्डचेन के अभाव में, ताजा मांस सुबह में खरीदा है और पकाया जाता है और एक ही दिन में सेवन किया जाता है।मांस निरीक्षण नियमों उपभोक्ताओं के लिए सुरक्षित और पौष्टिक मांस की आपूर्ति की सुविधा के लिए स्थानीय अधिकारियों द्वारा जगह में डाल रहे हैं, लेकिन कार्यान्वयन और निगरानी अभी भी व्यापक रूप से भिन्न होता है।

उपर्युक्त सभी मामलों में, मांस स्वच्छता और सुरक्षा पर सख्त नियम लागू किया जाना चाहिए।सरकारों और क्षेत्रीय और अंतरराष्ट्रीय अधिकारियों, एफ एओ और डब्ल्यूएचओ के प्रयासों में मदद करने के लिए आदेश में कोडेक्स Alimentarius की स्थापना की है ।विभिन्न कोड अक्सर अद्यतन और उपयुक्त खाद्य सुरक्षा के नियमों की स्थापना के लिए दिशा निर्देश के रूप में अधिकारियों को लाभ उठाया जाता है।

मिल्क

परिवार और खेत आवश्यकताओं के दूध, अधिशेष के विपणन, कृषि आय को बेहतर बनाता है प्रसंस्करण, विपणन और वितरण में रोजगार पैदा करता है, मूल्य कहते हैं और ग्रामीण समुदायों में खाद्य सुरक्षा के लिए योगदान देता है।दूध केविपणन के विकास से दुनियाभर में ग्रामीण क्षेत्रों में बिखरे हुए छोटे पैमाने पर उत्पादकों के लिए विशेष रूप से कठिन है।एक विनाश शील वस्तु की छोटी मात्रा बढ़ने की रसद संग्रह में शामिल किया जाता है, लेकिन विपणन पहलुओं संगठनात्मक औरतकनी की कौशल और गुणवत्ता और सुरक्षा के मुद्दों की समझ की आवश्यकता है।

कीमत, संवर्धन और पैके जिंग स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करना होगा, जब कि उत्पाद और प्रौद्योगिकियों का चुनाव, ऑपरेशन के पैमाने और स्थान के अनुकूल होना चाहिए।विकासशील देशों में शहरी बाजारों में, अनौपचारिक व्यापारियों द्वारा कच्चे दूध की बिक्री दूध के लिए सबसे महत्व पूर्ण आउट लेट है, लेकिन स्वास्थ्य से जुड़े जोखिम को संबोधित किया जाना चाहिए और कदम है कि जोखिम को कम करने के लिए लिया।

AGS के राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के सहयोग से अनौपचारिक दूध के विपणन के व्यापक अध्ययन से बाहर किया गया है।प्रशिक्षण अनौपचारिक बाजार ऑपरेटरों के लिए सहयोगी कार्यक्रम बाहर किया गया है और गुणवत्ता और पैकेजिंग निर्माता विपणन समूहों के आयोजन और सुधार लाने के लिए दिशा निर्देश विकसित और प्रचारित किया जा रहा है।उद्देश्य छोटे व्यापारियों द्वारा विपणन दूध और डेयरी उत्पादों पौष्टिक और साथ ही सस्ती कर रहे हैं कियह सुनिश्चित करने के लिए है।आयात कई विकासशील देशों में महत्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि बाजार और विशिष्टताओं के बारे में जानकारी शामिल हैं।

प्रसंस्कृत मांस उत्पादों

सामान्यतः ज्ञात प्रसंस्कृत मांस उत्पादों के अधिकांश मध्यम या ठंडे मौसम में देशों से उत्पन्न।कोल्ड चेन के अभाव में, इस तरह की स्थितियों मांस और प्रसंस्कृत मांस उत्पादों के अस्थायी भंडारण की आगे की प्रक्रिया का समर्थन किया।अधिकांश मांस उत्पादों, ठंडा फ्रोजन या डिब्बा बंद उपभोक्ताओं के लिए विपणन कर रहे हैं।

ठंडा और जमे हुए मांस उत्पादों के भंडारण, परिवहन और प्रदर्शन के दौरान एक निरंतर कोल्ड चेन की आवश्यकता होती है और एक कम शैल्फ जीवन है।डिब्बा बंद उत्पादों को आसानी से पहुँचाया और एक उदारवादी जल वायु में परिवेश की शर्तों के तहत समय की एक लंबी अवधि के लिए भंडारित किया जा सकता है।

परंपरागत रूप से, प्रसंस्कृत मांस उत्पादों का उत्पादन किया गया है और सीधे हौ सले से उपभोक्ता की जरूरत को portioned कसाई की दुकानों में बेच दिया।इस विपणन प्रणाली ग्रामीण भागों और औद्योगिक देशों के छोटे नगरपालिकाओं में या शहरों में उच्च अंत सुपरमार्केट के भोजन वर्गों में भी हाल ही में एक विकास के रूप में अभी भी आम है।

ISSN: 3049-2211

आम तौर पर यह आबादी बढ़ रही है और पूरे क्षेत्रों और coinciding शहरी करण के औद्योगीकरण के साथ, इस तरह के क्षेत्रों में प्रसंस्कृत मांस के लिए विपणन तरीकों ताजा मांस के लिए लोगों का पालन किया है, कहा जा सकता है।विभिन्न उत्पादकों से ताजा और पकाया मांस उत्पादों को अब प्रदर्शित और portioned बचाया कटा हुआ है, और उच्च सुविधा उत्पादों के लिए उपभोक्ताओं की मांग के जवाब में पूर्व पैक कर रहे हैं, जहां अधिक से अधिक सुपर मार्केट दुकानों में उभरा।

एफ ए ओ पद वध और उत्पादन घाटे को कम करने और सक्रिय रूप से बढ़ा वादे ने और आधुनिक मांस से निपटने और संरक्षण प्रौद्योगिकी में ज्ञान और कौशल का प्रसार करके उपभोक्ताओं के लिए स्वास्थ्य जोखिम से बचने के लिए प्रयासों की सुविधा। कार्यशालाएं, प्रशिक्षण कार्यक्रम और जागरूकता से मिनार दुनियाभर में आयोजित की जाती हैं।सरकार के साथ-साथ क्षेत्रीय और राष्ट्रीय अधिकारियों परिचय और सुरक्षित और स्वच्छ मांस उत्पादन, प्रसंस्करण और विपणन से संबंधित नियंत्रणतंत्र की निगरानी परनिर्देशित कर रहे हैं।

पशुधन उत्पाद और समुद्री भोजन

स्कॉटिश सरकार ग्रामीण जीवन, ग्रामीण समुदायों और ग्रामीण अर्थव्यवस्था का समर्थन करने के लिए प्रतिबद्ध है।इस एजेंडे का एक महत्वपूर्ण हिस्सा स्कॉट लैंड के पशुओं और पशुधन उत्पादों उद्योगों के अपने समर्थन है।

भूमि चराई स्कॉट लैंड में कुल कृषि भूमि का लगभग 80% शामिल हैं और स्कॉट लैंड में होल्डिंग्स का लगभग 37% पशुधन खेती में शामिल रहे हैं।नतीजतन पशुओं और पशुधन उत्पाद उद्योग स्कॉट लैंड में ग्रामीण विकास पर एक बड़ा प्रभाव पड़ता है।

♣♣♣

डिजिटल भारत और कृषि विपणन:

e-NAM की बदलती तस्वीर तथा विकसित भारत @2047 की दिशा में इसकी भूमिका

शुभम तिवारी- उद्यान विज्ञान विभाग (सब्जी विज्ञान), शुआट्स, नैनी, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

डॉ. पवनेश मिश्रा- असिस्टेंट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, क्राइस्ट चर्च कॉलेज, कानपुर

डॉ. देवेश तिवारी- असिस्टेंट प्रोफेसर, उद्यान विज्ञान विभाग, नॉर्थ-ईस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी, तुरा परिसर, तुरा, मेघालय

अखंड प्रताप सिंह- सस्य विज्ञान विभाग, बाबा बरियारशाह महाविद्यालय भरखरे, सुल्तानपुर

डॉ. अविनाश मिश्रा- असिस्टेंट प्रोफेसर, कृषि अर्थशास्त्र, स्कूल ऑफ एग्रीकल्चर, संस्कृति यूनिवर्सिटी

कृषि विपणन सुधार की आवश्यकता

खेत से थाली तक की यात्रा में किसान सबसे अधिक परिश्रम करता है, फिर भी मूल्य-श्रृंखला में उसका हिस्सा अक्सर सबसे छोटा रहता है — यही विरोधाभास भारतीय कृषि विपणन सुधारों की मूल प्रेरणा रहा है। भारत की कृषि अर्थव्यवस्था सदियों से स्थानीय कृषि उपज मंडी समितियों (APMC) और सीमित व्यापारिक विकल्पों पर निर्भर रही है। परंपरागत मंडी व्यवस्था में किसान अपनी उपज लेकर निकटतम मंडी पहुँचता था, जहाँ मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया प्रायः सीमित प्रतिस्पर्धा, बिचौलियों की अधिकता और बाजार-सूचना के अभाव से प्रभावित होती थी। फलस्वरूप उत्पादक किसान को अपने श्रम और निवेश के अनुरूप उचित प्रतिफल प्राप्त नहीं हो पाता था, जबकि अंतिम उपभोक्ता तक पहुँचते-पहुँचते मूल्य कई गुना बढ़ जाता था। यह संरचनात्मक विसंगति भारतीय कृषि क्षेत्र की उत्पादकता और किसान-आय में संतुलन स्थापित करने में एक बड़ी बाधा रही है।

स्वतंत्रता के पश्चात कृषि विपणन सुधारों की दिशा में अनेक प्रयास हुए, किंतु सूचना-प्रौद्योगिकी आधारित वास्तविक संरचनात्मक परिवर्तन इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में डिजिटल भारत अभियान के साथ संभव हो सका। केंद्र सरकार द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था के डिजिटलीकरण की व्यापक नीति के अंतर्गत कृषि क्षेत्र को भी प्राथमिकता दी गई, जिसका सबसे ठोस और दूरगामी परिणाम राष्ट्रीय कृषि बाजार (e-NAM) के रूप में सामने आया — एक ऐसा मंच जिसने धीरे-धीरे किसान और बाजार के बीच की दूरी को न्यूनतम कर दिया।

ई-नाम: संकल्पना एवं संस्थागत ढाँचा

राष्ट्रीय कृषि बाजार (National Agriculture Market, e-NAM) भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा संचालित एक पैन-इंडिया इलेक्ट्रॉनिक व्यापार पोर्टल है, जो देश भर की कृषि उपज मंडियों को एक साझा डिजिटल नेटवर्क के माध्यम से आपस में जोड़ता है। इसका उद्देश्य एकीकृत राष्ट्रीय बाजार की स्थापना करना है, जिसमें किसान को अपनी उपज देश के किसी भी पंजीकृत मंडी अथवा खरीदार को, स्थान की सीमा के बिना, बेचने की स्वतंत्रता प्राप्त हो। यह योजना "एक राष्ट्र, एक बाजार" (One Nation, One Market) की संकल्पना का व्यावहारिक स्वरूप है, जो भारतीय कृषि व्यापार को विखंडित स्थानीय मंडियों से निकालकर एक सुसंगत, पारदर्शी और प्रतिस्पर्धी राष्ट्रीय ढाँचे में रूपांतरित करने का प्रयास करती है।

संस्थागत दृष्टि से e-NAM, राज्य कृषि उपज विपणन समिति (APMC) अधिनियमों में आवश्यक संशोधनों के साथ राज्यों की सहभागिता पर आधारित है, जिसमें केंद्र सरकार तकनीकी अवसंरचना, सॉफ्टवेयर प्लेटफॉर्म और वित्तीय सहायता उपलब्ध कराती है, जबकि मंडियों का प्रशासनिक संचालन राज्य स्तर पर होता है। यह संघीय सहयोग का एक उल्लेखनीय उदाहरण है, जहाँ केंद्र और राज्य दोनों स्तरों की भागीदारी से एक राष्ट्रव्यापी डिजिटल अवसंरचना विकसित की गई है।

वर्तमान स्थिति एवं मात्रात्मक उपलब्धियाँ

वर्ष 2026 तक e-NAM भारत के कृषि विपणन ढाँचे का एक सुस्थापित एवं अपरिहार्य आधार बन चुका है। वर्तमान में देश की 1,656 मंडियाँ इस प्लेटफॉर्म से जुड़ी हुई हैं, जो विभिन्न राज्यों एवं केंद्रशासित प्रदेशों में फैली हुई हैं। इस नेटवर्क के अंतर्गत 1.80 करोड़ से अधिक किसान और लगभग 2.73 लाख व्यापारी पंजीकृत हैं, जबकि हजारों किसान उत्पादक संगठन (Farmer Producer Organisations, FPOs) भी इस डिजिटल व्यापारिक पारिस्थितिकी तंत्र का सक्रिय हिस्सा बन चुके हैं। मार्च 2026 तक इस प्लेटफॉर्म पर संचयी रूप से ₹4.84 लाख करोड़ से अधिक मूल्य का कृषि व्यापार दर्ज किया जा चुका है।

ये आँकड़े स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि e-NAM अब केवल एक प्रायोगिक सरकारी योजना नहीं, बल्कि एक परिपक्व, बड़े पैमाने पर संचालित राष्ट्रीय कृषि व्यापारिक पारिस्थितिकी तंत्र के रूप में विकसित हो चुका है, जिसकी पहुँच देश के सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों तक है। यह वृद्धि भारत सरकार की डिजिटल अवसंरचना-आधारित शासन-नीति (Digital Public Infrastructure for Governance) की सफलता का प्रत्यक्ष प्रमाण है, जिसके अंतर्गत आधार, यूपीआई जैसे डिजिटल सार्वजनिक मंचों के सफल मॉडल को कृषि क्षेत्र में भी प्रतिकृत किया गया है।

नीतिगत ढाँचा: सरकारी योजनाओं के साथ तालमेल

e-NAM की सफलता को समग्रता में समझने के लिए इसे भारत सरकार की व्यापक कृषि-नीतिगत संरचना के संदर्भ में देखना आवश्यक है। कृषि अवसंरचना कोष (Agriculture Infrastructure Fund) के माध्यम से मंडियों में गोदाम, छंटाई-ग्रेडिंग इकाइयाँ तथा कोल्ड-स्टोरेज जैसी सुविधाओं का विस्तार किया जा रहा है, जो e-NAM के अंतर्गत गुणवत्ता-आधारित व्यापार को सुदृढ़ करता है। इसी प्रकार, 10,000 किसान उत्पादक संगठनों के गठन एवं संवर्धन की केंद्रीय योजना के अंतर्गत छोटे एवं सीमांत किसानों को सामूहिक रूप से संगठित कर डिजिटल मंडी तंत्र से जोड़ा जा रहा है, जिससे उनकी सौदेबाजी क्षमता (bargaining power) में उल्लेखनीय वृद्धि हो रही है।

प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि एवं प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) तंत्र के साथ e-NAM के भुगतान ढाँचे का अभिसरण किसानों की वित्तीय समावेशन प्रक्रिया को सुदृढ़ करता है। इसके अतिरिक्त, डिजिटल कृषि मिशन (Digital Agriculture Mission) के अंतर्गत किसान-केंद्रित डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना (Agri Stack), भू-अभिलेखों का डिजिटलीकरण तथा फसल-सर्वेक्षण की डिजिटल प्रणाली विकसित की जा रही है, जो भविष्य में e-NAM के साथ एकीकृत होकर किसानों की पहचान-सत्यापन, उपज-आकलन एवं ऋण-पात्रता निर्धारण की प्रक्रिया को और सरल बना सकती है। यह नीतिगत अभिसरण दर्शाता है कि e-NAM कोई पृथक योजना नहीं, बल्कि भारत सरकार की समग्र डिजिटल कृषि रणनीति का एक केंद्रीय स्तंभ है।

मूल्य खोज प्रक्रिया में पारदर्शिता

किसी भी कृषि बाजार की संरचनात्मक दक्षता उसकी मूल्य खोज (Price Discovery) प्रणाली पर निर्भर करती है। पारंपरिक मंडी व्यवस्था में सीमित संख्या में उपस्थित व्यापारियों के बीच होने वाली बोली प्रक्रिया प्रायः वास्तविक बाजार मूल्य को प्रतिबिंबित नहीं कर पाती थी। इसके विपरीत, जब अधिक से अधिक खरीदार किसी कृषि उत्पाद हेतु एक साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं, तब उत्पाद का वास्तविक एवं संतुलित बाजार मूल्य उभर कर सामने आता है।

e-NAM के माध्यम से विभिन्न राज्यों में स्थित व्यापारी इलेक्ट्रॉनिक बोली प्रक्रिया में दूरस्थ रूप से भाग ले सकते हैं, जिससे एक ही उपज के लिए प्रतिस्पर्धी खरीदारों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। इस विस्तारित प्रतिस्पर्धा से किसानों को अपनी उपज के लिए अधिक पारदर्शी, यथार्थवादी एवं अपेक्षाकृत उच्च मूल्य प्राप्त होने की संभावना बढ़ती है। साथ ही, मंडी-स्तर पर वास्तविक समय में उपलब्ध मूल्य-सूचना किसानों को यह निर्णय लेने में सक्षम बनाती है कि वे अपनी उपज कब और कहाँ बेचें, जिससे बाजार में व्याप्त सूचना-असमानता (Information Asymmetry) उल्लेखनीय रूप से कम होती है। यह पारदर्शिता दीर्घकाल में कृषि-व्यापार में संस्थागत विश्वास के निर्माण हेतु आधारभूत शर्त सिद्ध होती है।

गुणवत्ता-आधारित व्यापार एवं मानकीकरण

आधुनिक वैश्विक एवं घरेलू कृषि-व्यापार क्रमशः मात्रा-केंद्रित दृष्टिकोण से गुणवत्ता-केंद्रित दृष्टिकोण की ओर अग्रसर हो रहा है। e-NAM के अंतर्गत स्थापित गुणवत्ता परीक्षण प्रयोगशालाओं तथा मानकीकृत ग्रेडिंग प्रणाली के माध्यम से उपज की गुणवत्ता का वस्तुनिष्ठ

मूल्यांकन संभव हुआ है। इससे एक ओर किसानों को उन्नत कृषि-पद्धतियाँ अपनाकर गुणवत्तापूर्ण उत्पादन हेतु प्रोत्साहन मिलता है, तो दूसरी ओर खरीदारों में उत्पाद की गुणवत्ता के प्रति विश्वास सुदृढ़ होता है।

गुणवत्ता-आधारित मूल्य-निर्धारण व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव यह है कि यह उत्पादन-श्रृंखला में गुणात्मक सुधार हेतु एक बाजार-चालित प्रोत्साहन तंत्र (market-driven incentive mechanism) स्थापित करती है, जिसमें बेहतर गुणवत्ता वाली उपज स्वाभाविक रूप से अधिक मूल्य अर्जित करती है। यह प्रवृत्ति दीर्घकाल में भारतीय कृषि उत्पादों की घरेलू एवं अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ाने तथा कृषि-निर्यात क्षमता सुदृढ़ करने में सहायक सिद्ध हो रही है, जो "आत्मनिर्भर भारत" एवं निर्यात-संवर्धन नीतियों के व्यापक लक्ष्यों के अनुरूप है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में वित्तीय दक्षता एवं समावेशन

डिजिटल भुगतान प्रणाली ने कृषि-व्यापार को पूर्व की तुलना में अधिक सुरक्षित, त्वरित एवं पारदर्शी बनाया है। उपज विक्रय के पश्चात भुगतान सीधे किसान के बैंक खाते में स्थानांतरित होने से नकद-लेन-देन से जुड़े जोखिम एवं विलंब समाप्त हुए हैं। इस प्रत्यक्ष एवं अविलंब भुगतान-व्यवस्था से किसानों की कार्यशील पूँजी (working capital) का प्रवाह बेहतर हुआ है, जिससे उन्हें अगली फसल हेतु निवेश की योजना बनाने में सहायता मिलती है तथा अनौपचारिक एवं उच्च-ब्याज ऋण स्रोतों पर निर्भरता घटती है।

यह वित्तीय औपचारिकीकरण (financial formalisation) किसानों को बैंकिंग एवं ऋण-प्रणाली के औपचारिक दायरे में लाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। डिजिटल लेन-देन के अभिलेख भविष्य में किसान-क्रेडिट स्कोरिंग, फसल-बीमा दावा-निपटान तथा संस्थागत ऋण-सुविधा तक पहुँच को सुगम बनाने में सहायक हो सकते हैं, जिससे ग्रामीण वित्तीय समावेशन की प्रक्रिया और सुदृढ़ होगी।

विकसित भारत @2047 के लक्ष्यों के साथ संबद्धता

भारत सरकार द्वारा प्रस्तुत "विकसित भारत @2047" का दूरगामी विकास-दृष्टिकोण देश को स्वतंत्रता की शताब्दी, अर्थात वर्ष 2047 तक, एक विकसित, आत्मनिर्भर एवं समावेशी अर्थव्यवस्था के रूप में स्थापित करने की परिकल्पना करता है। इस व्यापक दृष्टिकोण में कृषि क्षेत्र का आधुनिकीकरण, किसानों की आय में सतत वृद्धि तथा ग्रामीण-शहरी आर्थिक असंतुलन को न्यून करना केंद्रीय स्तंभों के रूप में शामिल है।

e-NAM इस दृष्टिकोण की प्राप्ति में बहुआयामी योगदान करता है। प्रथमतः, यह कृषि-विपणन में दक्षता एवं पारदर्शिता लाकर किसानों की वास्तविक आय में वृद्धि का मार्ग प्रशस्त करता है, जो "किसान-कल्याण" के राष्ट्रीय लक्ष्य के अनुरूप है। द्वितीयतः, यह डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना के माध्यम से ग्रामीण भारत को राष्ट्रीय एवं संभावित रूप से वैश्विक आपूर्ति-श्रृंखलाओं से जोड़ता है, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था का संरचनात्मक रूपांतरण संभव होता है। तृतीयतः, यह आँकड़ा-आधारित शासन (data-driven governance) की संस्कृति को कृषि क्षेत्र में स्थापित करता है, जो नीति-निर्माण को साक्ष्य-आधारित एवं अधिक प्रभावी बनाता है।

इस प्रकार, e-NAM केवल एक विपणन मंच न होकर, "विकसित भारत" के दूरगामी लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कृषि क्षेत्र में डिजिटल रूपांतरण का एक रणनीतिक उपकरण है, जो समावेशी, संतुलित एवं सतत आर्थिक विकास के राष्ट्रीय एजेंडे को सुदृढ़ करता है।

विद्यमान चुनौतियाँ एवं संरचनात्मक सीमाएँ

e-NAM की उल्लेखनीय उपलब्धियों के साथ-साथ कुछ संरचनात्मक चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं, जिनका समाधान इसकी दीर्घकालिक प्रभावशीलता हेतु आवश्यक है। प्रथमतः, ग्रामीण क्षेत्रों, विशेषकर सुदूर एवं पर्वतीय क्षेत्रों में डिजिटल साक्षरता तथा स्मार्टफोन एवं इंटरनेट तक पहुँच की असमानता एक महत्वपूर्ण बाधा बनी हुई है। द्वितीयतः, सभी मंडियों में गुणवत्ता-परीक्षण प्रयोगशालाओं की पर्याप्त उपलब्धता एवं उनकी मानकीकृत कार्यप्रणाली अभी भी विकासशील अवस्था में है।

तृतीयतः, भंडारण सुविधाओं तथा कोल्ड-चेन अवसंरचना का देशव्यापी विस्तार एक सतत आवश्यकता बनी हुई है, क्योंकि उचित भंडारण के अभाव में किसानों को विवशतावश अपनी उपज तुरंत एवं प्रायः कम मूल्य पर बेचनी पड़ती है, जिससे मूल्य-खोज प्रक्रिया का संभावित लाभ सीमित हो जाता है। चतुर्थतः, अंतर-राज्यीय व्यापार में परिवहन लागत, विभिन्न राज्यों के बाजार-शुल्क ढाँचों में असमानता तथा रसद (logistics) संबंधी जटिलताएँ भी एक समान राष्ट्रीय बाजार की पूर्ण प्राप्ति में बाधक हैं। इन क्षेत्रों में सतत सुधार से डिजिटल कृषि विपणन की प्रभावशीलता और अधिक सुदृढ़ हो सकती है।

भविष्य की दिशा एवं नीतिगत सुझाव

e-NAM की दीर्घकालिक सफलता हेतु बहुआयामी रणनीति आवश्यक है। प्रथमतः, ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल साक्षरता कार्यक्रमों का विस्तार तथा किसानों को मंडी-पोर्टल के उपयोग में प्रशिक्षित करने हेतु स्थानीय भाषाओं में सरल प्रशिक्षण मॉड्यूल विकसित किए जाने चाहिए। द्वितीयतः, कृषि अवसंरचना कोष के अंतर्गत गुणवत्ता-परीक्षण

ISSN: 3049-2211

प्रयोगशालाओं, छंटाई-ग्रेडिंग इकाइयों एवं कोल्ड-स्टोरेज सुविधाओं के विस्तार को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

तृतीयतः, e-NAM को डिजिटल कृषि मिशन के अंतर्गत विकसित हो रहे Agri Stack तथा किसान-डेटाबेस के साथ एकीकृत किया जाना चाहिए, जिससे किसान-पहचान सत्यापन, ऋण-पात्रता निर्धारण एवं फसल-बीमा दावा-प्रक्रिया को सरल बनाया जा सके। चतुर्थतः, राज्यों के बीच बाजार-शुल्क एवं नियामक ढाँचों के सामंजस्य हेतु सहकारी संघवाद की भावना के अंतर्गत निरंतर संवाद आवश्यक है, ताकि वास्तविक अर्थों में "एक राष्ट्र, एक बाजार" की संकल्पना साकार हो सके। अंततः, किसान उत्पादक संगठनों की भूमिका को और सुदृढ़ करते हुए उन्हें सामूहिक भंडारण, मूल्य-संवर्धन (value addition) एवं प्रत्यक्ष निर्यात गतिविधियों से जोड़ा जाना चाहिए, जिससे छोटे एवं सीमांत किसान भी डिजिटल बाजार के लाभों में समान रूप से सहभागी बन सकें।

निष्कर्ष

ई-नाम ने भारतीय कृषि विपणन व्यवस्था को एक नई एवं निर्णायक दिशा प्रदान की है। इसने किसान को स्थानीय मंडी की भौगोलिक एवं संरचनात्मक सीमाओं से मुक्त कर राष्ट्रीय स्तर के व्यापक व्यापारिक अवसरों से जोड़ा है, जिससे मूल्य खोज में पारदर्शिता, गुणवत्ता-आधारित प्रोत्साहन तथा वित्तीय समावेशन जैसे बहुआयामी लाभ प्राप्त हुए हैं। यह उपलब्धि भारत सरकार की व्यापक डिजिटल-शासन रणनीति तथा कृषि अवसंरचना, किसान उत्पादक संगठन एवं डिजिटल कृषि मिशन जैसी पूरक योजनाओं के समन्वित क्रियान्वयन का परिणाम है।

यदि डिजिटल अवसंरचना के विस्तार, गुणवत्ता-प्रबंधन तंत्र की सुदृढ़ता तथा किसान-प्रशिक्षण को समान गति से आगे बढ़ाया जाए, तो e-NAM आगामी वर्षों में किसानों की आय वृद्धि, बाजार-पारदर्शिता तथा कृषि क्षेत्र की राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाने में निर्णायक भूमिका निभा सकता है। संक्षेप में, e-NAM न केवल एक तकनीकी हस्तक्षेप है, बल्कि "विकसित भारत @2047" के समावेशी, समतामूलक एवं आत्मनिर्भर कृषि-अर्थव्यवस्था के दूरगामी राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति हेतु एक सशक्त आधारस्तंभ के साथ एक ऐसी डिजिटल कड़ी, जो खेत की मिट्टी को बाजार के मंच से जोड़कर किसान की मेहनत को उसका वास्तविक मूल्य लौटाने की दिशा में निरंतर अग्रसर है।

♣♣♣

जैविक खेती की प्रमुख चुनौतियां, समाधान, अवसर और भविष्य: एक परिदृश्य

डा॰ सुनील कुमार मंडल
सहायक प्राध्यापक, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, झंझारपुर
डा॰ राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार

जैविक खेती को पारंपरिक कृषि के टिकाऊ और पर्यावरण के अनुकूल विकल्प के रूप में व्यापक रूप से मान्यता प्राप्त है। जैविक खेती प्राकृतिक प्रक्रियाओं को प्राथमिकता देती है और कृत्रिम अथवा सिथेंटिक कारकों से परहेज करती है। इसलिए जैविक खेती को प्राकृतिक खेती का एक प्रमुख घटक माना जाता है। हाल के वर्षों में जैविक खेती ने उल्लेखनीय लोकप्रियता हासिल की है। उपभोक्ता जैविक उत्पादों के कथित स्वास्थ्य लाभों और पर्यावरणीय फायदों की ओर तेजी से आर्कषित हो रहे हैं। तथापि, इसके पर्यावरणीय और स्वास्थ्य लाभों के बावजूद जैविक खेती को कई व्यवहारिक और आर्थिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। दीर्घकालिक सफलता और विस्तार के लिए इन जैविक खेती की समस्याओं और समाधानों को विस्तार से समझना आवश्यक है।

वैज्ञानिकों एवं विशेषज्ञों का मानना है कि सही रणनीतियां, शिक्षा और नवाचार के माध्यम् से चुनौतियों को अवसरों में बदला जा सकता है। प्रस्तुत आलेख में जैविक खेती की प्रमुख चुनौतियों का विस्तृत विवरण के अतिरिक्त व्यवहारिक और दीर्घकालिक जैविक खेती के समाधान के साथ अवसर एवं भविष्य के बारे में चर्चा की गई है।

जैविक खेती की प्रमुख चुनौतियां:

1. कम पैदावार: पारंपरिक खेती की तुनना में, जैविक खेती में अक्सर फसलों की पैदावार कम होती है। इसका मुख्य कारण कीटों और बीमारियों का दबाव, भूमि में पोषक तत्वों के उपलब्धता की कमी और खरपतवार नियंत्रण के लिए कम प्रभावी तरीकों पर निर्भरता जैसे कारक हो सकते हैं।

2. कम फसल उत्पादकता: शुरूआती 2-3 वर्षों में रासायनिक खेती से जैविक खेती में बदलने पर फसलों की पैदावार में कमी आती है जो भूमि में पोषक तत्वों की कमी हो सकती है।

3. उच्च उत्पादन लागत: जैविक खेती प्राकृतिक संसाधनों जैसे गोबर की खाद/कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट, जैव उर्वरक और जैविक बीजों पर निर्भर करती है, जो अक्सर कृत्रिम आदानों/विकल्पों की तुलना में अधिक महंगे और आसानी से उपलब्ध नहीं होते हैं।

4. अधिक श्रम लागत: जैविक खेती आमतौर पर पारंपरिक कृषि प्रणाली की तुलना में अधिक श्रम-प्रधान होती हैं। इसका कारण यह है कि खरपतवार नियंत्रण के लिए निराई-गुड़ाई, फसल-चक्र, फसल अवशेषों

का प्रबंधन और मिट्टी की सेहत बनाए रखने जैसे कई कार्यों में काफी मानवीय योगदान की आवश्यकता होती है।

5. कीट-व्याधि और खरपतवार प्रबंधन संबंधी मुद्दे: जैविक खेती में कीटों व बीमारियों और खरपतवारों का फलाव एक बड़ी समस्या हैं, क्योंकि रासायनिक कीटनाशकों, फफूंदनाशकों और खरपतवारनाशकों पर प्रतिबंध रहता है। जैविक विकल्प अक्सर धीरे-धीरे काम करते है जिससे इन कारकों के द्वारा नियंत्रण अधिक जटिल और श्रमसाध्य हो जाते हैं।

6. मृदा उर्वरता और पोषक तत्व प्रबंधन में कमी: रासायनिक उर्वरकों के बिना मिट्टी की उर्वरता बनाए रखना जैविक खेती की सबसे बड़ी तकनीकी चुनौतियों में से एक है। जैविक पदार्थों से पोषक तत्वों का उत्सर्जन धीमा होता है और अनुचित प्रबंधन से पोषक तत्वों की कमी हो सकती है।

7. संक्रमण काल के दौरान पैदावार में क्षति: जैविक खेती अपनाने के शुरूआती वर्षों में किसानों को अक्सर कम पैदावार का सामना करना पड़ता है। यह संक्रमणकालीन चरण कई किसानों को जैविक खेती अपनाने से हतोत्साहित करता है।

8. सीमित बाजार पहुँच और उपभोक्ता जागरूकता: कई किसानों को सही बाजार और जैविक उत्पादों के महत्व को समझने वाले उपभोक्ताओं तक पहुँचने में कठिनाई होती है। जागरूकता की कमी के कारण उच्च मूल्यों का निर्धारण को उचित ठहराना मुश्किल हो जाता है। इस मूल्यवर्धित आय की स्थिरता सीमित हो जाती है और किसान जैविक खेती को बड़े पैमाने पर अपनाने से हतोत्साहित होते हैं।

9. जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय जोखिम: सुखे और भारी बारिश जैसी अप्रत्यासित मौसम संबंधी घटनाएं जैविक फसलों की पैदावार को सीधे तौर पर प्रभावित करती है। जैविक खेती प्राकृतिक प्रणालियों पर निर्भर करती है, जिससे वे जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाती है। पर्यावरणीय अनिश्चिता जैविक किसानों के लिए फसल उत्पादन के जोखिम को बढ़ाती है।

10. जागरूकता और तकनीकी ज्ञान का अभाव: कई किसानों को जैविक खेती के तकनीकों और प्रमाणन प्रक्रियाओं की उचित जानकारी नहीं है। इस ज्ञान की कमी के कारण परिवर्तन काल में असफलता का भय उत्पन्न होता है। सीमित प्रशिक्षण जैविक खेती को अपनाने की प्रक्रिया को धीमा कर देता है।

11. मृदा स्वास्थ्य के लिए जैविक पदार्थों (बायोमास) की कमी: जैविक खेती के लिए मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने के लिए पर्याप्त जैविक पदार्थ आवश्यक है। कई क्षेत्रों में खाद बनाने और हरी खाद के लिए बायोमास सीमित मात्रा में उपलब्ध होता है। इसके परिणामस्वरूप पोषक तत्वों की पुनः पूर्ति धीमी हो जाती है और मिट्टी की उत्पादकता व उर्वरता कम हो जाती है।

12. जैविक खेती के लिए अपर्याप्त बुनियादी ढ़ाचा: जैविक खेती के लिए विशेष अवसंरचना की आवश्यकता होती है, जो अक्सर ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध नहीं होती। भंडारण, प्रसंस्करण और प्रमाणीकरण सुविधाओं की कमी से परिचालन संबंधी चुनौतियां बढ़ जाती है। इन सहायक प्रणालियों का अभाव विकास और बाजार तक पहुँच को सीमित करता है।

13. विपणन और मूल्य निर्धारण संबंधी चुनौतियां: जैविक खेती करने वाले किसानों को अक्सर अपनी उपज का उचित मूल्य नहीं मिलता है। कमजोर विपणन का माध्यम् और नकली जैविक उत्पाद उपभोक्ताओं का भरोसा कम करते है। इस मूल्य असंतुलन से लाभप्रदता और दीर्घकालिक स्थिरता प्रभावित होती है।

- ✓ **प्रमाणीकरण की समस्या:** प्रमाणीकरण की प्रक्रिया जटिल और खर्चीली होती है, जिससे लघु और सीमांत किसानों के लिए मुश्किल होती है।
- ✓ **विपणन का अभाव:** छोटे किसानों के लिए खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में जैविक उत्पादों के लिए सही बाजार और उचित मूल्य मिलना कठिन होता है।

जैविक खेती की चुनौतियों का समाधान:

1. उत्पादन की उच्च लागत से निपटने के लिए किसानों को दीर्घकालिक वित्तीय दृष्टिकोण अपनाना होगा जो निम्न उल्लेखित है:

- ❖ **सरकारी सब्सिडी और प्रोत्साहन:** सरकारें जैविक उत्पादन के लिए आवश्यक सामग्री, प्रमाणन और प्रशिक्षण के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती है। किसानों को प्रारंभिक लागत को कम करने के लिए इन योजनाओं के लिए संक्रिय रूप से आवेदन करके सहायता प्राप्त करना चाहिए।
- ❖ **प्रमाणिकरण के माध्यम् से प्रीमियम मूल्य का निर्धारण:** प्रमाणित जैविक उत्पादन बाजार में काफी अधिक कीमत प्राप्त कर सकते हैं, जिससे किसानों को उत्पादन लागत को वसूलने और लाभप्रदत में सुधार करने में मदद मिलती है।
- ❖ **कृषि सहकारी समितियां और साझा संसाधन:** सहकारी समितियां बनाकर किसान जैविक खाद बनाने की इकाइयां, मशीनरी, भंडारण सुविधाएं और विपणन मंच साझा कर सकते हैं, जिससे किसानों का व्यक्तिगत खर्च कम हो जाता है।

- **रणनीतिक रूप से परिचालन का विस्तार करना:** जैसे-जैसे जैविक खेतों का आकार बढ़ता है, बड़े पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं के कारण प्रति इकाई लागत कम हो जाती है, जिससे उत्पादन अधिक लागत-कुशल हो जाता है।
- उत्पादन अधिक लागत-कुशल हो जाता है।

2. कीट-व्याधि एवं खरपतवार प्रबंधन संबंधी मुद्दों का निवारण: सुनोयोजित एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन (आईपीएम) दृष्टिकोण जैविक खेती का सबसे प्रभावी समाधान है जो निम्न उल्लेखित है:

- **जैविक नियंत्रण पद्दतियां:** लेडवर्ड विटील, सिकारी भृंग और परजीवी ततैया जैसे मित्र किटों को शामिल करने से हानिकारक कीटों को प्राकृतिक रूप से नियंत्रित करने में मदद मिलती है।
- **सांस्कृतिक पद्दतियां:** फसल-चक्र, अंतर फसल, मिश्रित फसल और कीट प्रतिरोधी फसलों की बुवाई/रोपाई कीटों के जीवन-चक्र को तोड़ती है और प्रकोप को कम करती है।
- **यात्रिक विधियां:** हाथ से निराई-गुड़ाई, मल्चिंग (पलवार) ट्रैप क्रापिंग (फंदा फसलें) और रसायनों के बिना खरपतवारों को नियंत्रित करने में मदद करती है।
- **वानस्पतिक उत्पाद और निवारक पद्दतियां:** नीम का तेल, लहसून, तम्बाकू, अरण्डी के अर्क का छिड़काव न्यनत्तम पर्यावरणीय प्रभाव के साथ लक्षित कीट नियंत्रण प्रदान करते हैं।
- **जैव नियंत्रकों के द्वारा रोग प्रबंधन:** पौधों में होने वाली विभिन्न बीमारियों के नियंत्रण में ट्राइकोडर्मा प्रजाति की फफूंद तथा स्यूडोमोनास फ्लोरीसेंस और बैसिलस सबटिलिस नामक जीवाणुओं का प्रयोग किया जाता है। इस जैव नियंत्रकों से बीज उपचार, मृदा उपचार और पौध उपचार की विधि से विभिन्न प्रकार के रोगजनकों के नियंत्रण में कारगर सफलता मिली है।

इस प्रकार समय के साथ ये विधियां एक संतुलित पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करती है, जो स्वभाविक रूप से कीटों एवं बीमारियों को नियंत्रित करते है।

3. मृदा उर्वरता और पोषक तत्व प्रबंधन का समाधान: जैविक खेती की सफलता की नींव सतत् मृदा प्रबंधन पर टिकी है जो इस प्रकार है:

- नियमित मृदा परिक्षण से पोषक तत्वों की कमी का पता लगाने में मदद मिलती है और जैविक खादों के प्रयोग को निर्देशित करने में सहायता मिलती है।
- आवरण फसलें और फलीदार पौधों जैसी हरी खाद नाइट्रोजन को स्थिर करती है और मिट्टी की संरचना में सुधार करती है।
- जैविक खाद और केंचुआ खाद (वर्मीकम्पोस्ट) बनाने से मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों, लाभकारी सूक्ष्मजीवों और आवश्यक पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होते हैं।
- मल्चिंग (फसल अवषेश, पुआल, घास की कतरन, भूसा आदि) से नमी संरक्षित रहती है, मिट्टी का तापमान नियंत्रित रहता है और पोषक तत्वों का संरक्षण बेहतर होता है।

इस प्रकार स्वस्थ्य मिट्टी धीरे-धीरे आत्मनिर्भर हो जाती है, जिससे बाहरी संसाधनों पर निर्भरता कम हो जाती है।

4. संक्रमण काल के दौरान पैदावार में कमी का समाधान: फसल की पैदावार में कमी अस्थायी होती है और रणनीतिक योजना के माध्यम् से इसे नियंत्रित किया जा सकता है जो निम्न उल्लेखित है:

- क्रमिक परिवत्रन से किसानों को एक ही बार में सही जमीन को बदलने के बजाय चरणों में जमीन को बदलने में सुविधा मिलती है।
- मिट्टी की सेहत में सुधार लाने वाली पद्दतियां परिस्थितिकी तंत्र के पुनरूद्धार को गति मिलती है।
- ड्रिप सिंचाई और वर्षा जल के संचयन के माध्यम् से कुशल जल प्रबंधन अधिकत्तम फसल की वृद्धि सुनिश्चित करता है।
- जैविक वृद्धि बढ़ाने वाले पदार्थों (हार्मोन्स) का प्रयोग पौधों की सहनशीलता और उत्पादकता को बढ़ाता है।

इस प्रकार मिट्टी की जैविक संरचना स्थिर हो जाने के बाद, जैविक उत्पादन अक्सर पारंपरिक उपज के बराबर या सबसे अधिक हो जाती है।

5. सीमित बाजार पहुँच और उपभोक्ता जागरूकता का निवारण: बाजार तक पहुँच में सुधार के लिए प्रत्यक्ष जुड़ाव और ब्रांडिंग दोनों की आवश्यकता होती है जो इस प्रकार है:

- किसान बाजारों और सी.ए.एस. माडल के माध्यम् से जुड़े हुए उपभोक्ताओं को ब्रिक्री करने से विचैलियों की आवश्यकता समाप्त हो जाती है।
- डिजिटल प्लेटफार्म और ई-कामर्स किसानों को शहरी और स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ताओं तक पहुँचने में सक्षम बनाते हैं।
- पारदर्शी तरीके से तथ्यों को बताने से उपभोक्ताओं को जैविक कृषि पद्दतियों और लाभों के बारे में शिक्षित करके विश्वास पैदा होता है।
- जैविक उत्पादों पर केन्द्रित दुकानों/प्रतिष्ठानों के साथ खुदरा साझेदारी से बाजार की पहुँच का विस्तार होता है।

इस प्रकार मजबूत ब्रांडिंग जागरूकता की मांग में बदल देती है।

6. जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय जोखिम की सुरक्षा: जलवायु परिवर्तन के अनुकूल जैविक कृषि पद्दतियां अनुकूलन क्षमता को बढ़ाती है जिसका विवरण निम्न उल्लेखित है:

- ❖ कृषि वानिकी प्रणालियां जैव विविधता और सूक्ष्म जलवायु में सुधार करती है।
- ❖ फसलों में विविधता (फसल-चक्र, अंतर फसल, मिश्रित फसल की खेती) लाने से जोखिम कम होता है और स्थिर आय सुनिश्चित होती है।
- ❖ संरक्षण जुताई से जल धारण क्षमता में सुधार होता है और मिट्टी का कटाव रूकता है।
- ❖ सुखा प्रतिरोधी फसल की किस्में तनावपूर्ण परस्थितियों में भी उत्पादकता सुनिश्चित करती है।

इस प्रकार विविधता को अपनाने वाली जैविक प्रणालियां स्वभाविक रूप से अधिक लचीली होती है।

7. जागरूकता और तकनीकी ज्ञान का अभाव की निवारण उपाय: शिक्षा ही गोद लेने की कुंजी है:

- ❖ प्रशिक्षण कार्यक्रम और कार्यशालाएं तकनीकी कौशल विकसित करने में सहायक होती है।
- ❖ कृषि विस्तार सेवाएं व्यवहारिक सहायता प्रदान करती है।
- ❖ किसान नेटवर्क और सहकारी समितियां सहपाठी प्रशिक्षणार्थी किसानों को सक्षम बनाती है।
- ❖ प्रदर्शन फार्म सफल जैविक माडलों का प्रदर्शन करते हैं।

इस प्रकार ज्ञान आत्मविश्वास और दीर्घकालिक प्रतिवद्धता को बढ़ाता है।

8. मृदा स्वास्थ्य के लिए बायोमास की कमी का समाधान: जैविक कृषि पद्दतियों में जैव द्रव्यमान के उत्पादन को एकीकृत किया जाना चाहिए:

- ❖ हरी खाद वाली फसलें (ढ़ैचा, सनेई) पोषक तत्वों की उपलब्धता में सुधार करती है।
- ❖ आवरण फसलें मिट्टी की रक्षा करती है और उसे उपजाऊ बनाती है।
- ❖ सामुदायिक जैविक खाद (कम्पपोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट) बनाने की इकाईयां जैविक उर्वरकों तक साझा पहुँच सुनिश्चित करती है।
- ❖ फसल अवशेषों का पुनर्चक्रण अवशिष्ट को कम करता है और मिट्टी में कार्बन की मात्रा को बढ़ाता है।

9. जैविक खेती के लिए अपर्याप्त बुनियादी ढ़ाचा का समाधान: बुनियादी ढ़ांचे के विकास के लिए सामूहिक प्रयास की आवश्यकता होती है इसके लिए निम्न तथ्य उल्लेखित है:

- ❖ जैविक प्रमाणन निकाय बाजार में विश्वसनीयता को बढ़ाते हैं।
- ❖ प्रसंस्करण और भंडारण सुविधाएँ फसल कटाई (विशेषकर सब्जियों के लिए) के उपरांत होने वाली क्षति को कम करती है।
- ❖ इनपुट सप्लाई हब जैविक उत्पादों की निरंतर उपलब्धता को सुनिश्चित करते हैं।
- ❖ सरकारी और निजी निवेश से आपूर्ति श्रृंखलाएं मजबूत होती है।

10. विपणन और मूल्य निर्धारण संबंधी चुनौतियां का समाधान: इसके लिए बाजार का सशक्तिकरण आवश्यक होता है।

- ❖ प्रमाणित लेवलिंग से उपभोक्ताओं का विश्वास बढ़ता है।
- ❖ एफपीओ के माध्यम् से सामूहिक विपणन के द्वारा सौदेबाजी की शक्ति में सुधार होता है।
- ❖ डिजिटल ब्रांडिंग और जागरूकता अभियान मांग को बढ़ाते है।
- ❖ जैविक उत्पदों का लाभों के बारे में जानकारी प्रीमियम मूल्य के निर्धारण को उचित ठहराती है।

जैविक खेती की विकास का अवसर

तकनीकी नवाचार: जैविक नियंत्रकों व जैव उर्वरकों की सटीक कृषि पद्धतियों और मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन जैसे क्षेत्रों में प्रगति से जैविक खेती अधिक कुशल और उत्पादक बन रही है। ये नवाचार जैविक और पारंपरिक कृषि पद्धतियों के बीज फसल उत्पादन के अन्तर को कम करने में सहायक हो सकते हैं।

नीतिगत समर्थन: भारत के साथ-साथ विश्वभर की सरकारें जैविक कृषि के महत्व को तेजी से पहचान रही है और इसे अपनाने के लिए प्रोत्साहित करने वाली नीतियों को लागू कर रही है। जिसके अंतर्गत किसानों के लिए वित्तीय प्रोत्साहन, प्रशिक्षण कार्यक्रम, अनुसंधान के लिए निधि और जैविक अवसंरचना की विकास के लिए समर्थन शामिल है।

उपभोक्ता प्रशिक्षण: जैसे-जैसे उपभोक्ता जैविक भोजन की लाभों के बारे में अधिक जागरूक होते जा रहे हैं, तो इसकी मांग में भी वृद्धि होने की संभावना प्रवल हो रही है और जलवायु परिवत्रन का सामना करने के तरीके भी विकसित हो रहे हैं। इससे किसानों को अपने बाजार का विस्तार करने और किसान बाजारों, उपभोक्ता सहायता समूहों (सी.एस.ए.) और अन्य प्रत्यक्ष उपभोक्ता सम्पर्क चैनलों के माध्यम् से उपभोक्ताओं तक सीधे जुड़ने के अवसर प्राप्त होंगे।

पर्यावरण संबंधी लाभ: जैविक खेती से पर्यावरण को कई लाभ मिलते हैं, जिससे मिट्टी की सेहत में सुधार पर्यावरण प्रदूषण में कमी और जैव विविधओं में वृद्धि शामिल है। जलवायु परिवत्रन और अन्य पर्यावरणीय

ISSN: 3049-2211

चुनौतियों से निपटने की प्रयासों के चलते ये लाभ और भी महत्वपूर्ण होता जा रहा है।

जैविक खेती का भविष्य

वर्तमान समय में जैविक खेती का भविष्य उज्जवल हैं, परन्तु इसके लिए कई चुनौतियों का सामना करना और अवसरों का लाभ लेना आवश्यक होगा। अनुसंधान और विकास में निवेश करके, नीति और बुनियादी ढ़ांचे के माध्यम् से किसानों का प्रशिक्षण के साथ समर्थन करके और उपभोक्ताओं को जैविक भोजन के लाभों के बारे में शिक्षित करके हम सभी के लिए अधिक टिकाऊ और न्यायसंगत खाद्द प्रणाली का निर्माण कर सकते हैं।

निष्कर्ष:

जैविक खेती के सामने कई चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है, परन्तु बेहतर फसलों का प्रबंधन, प्राकृतिक संसाधनों का सही उपयोग और सरकारी योजनाओं के माध्यम् से किसान लचीली अत्यधिक लाभदायक और पर्यावरण के प्रति जिम्मेदार कृषि पद्दतियों का निर्माण के साथ टिकाऊ व्यवसायिक खेती बना सकते हैं।

****

कवक: जैव नियंत्रण एजेंट

शिवानी चौहान
सहायक प्रोफेसर
कॉलेज ऑफ हॉर्टीकल्चर एंड फॉरेस्ट्री, नेरी, हमीरपुर (हि.प्र.)

बायोकंट्रोल कवक वे फफूँद हैं जो पौधों को रोगों और कीटों से बचाते हैं, मिट्टी की उर्वरता बढ़ाते हैं और पौधों की वृद्धि व उपज में सुधार करते हैं। बायोकंट्रोल कवक केवल रोग जनकों को नष्ट करने वाले जीव नहीं हैं, बल्कि वे कृषि पारिस्थितिकी तंत्र के सक्रिय नियामक हैं। आधुनिक कृषि में उनकी भूमिका अत्यंत गहरी,बहुआयामी और वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित है। ये कवक पौधों की शारीरिक क्रियाओं, मृदा की जैविक संरचना, सूक्ष्म जीवी समुदायों की प्रतिस्पर्धा तथा पौधरक्षा तंत्र-इन सभी के साथ समन्वय स्थापित कर कार्य करते हैं। यही कारण है कि कवक आधारित जैव-नियंत्रण को आज रासायनिक नियंत्रण का विकल्प नहीं,बल्कि उससे अधिक स्थायी और बुद्धिमान रणनीति माना जा रहा है। बायोकंट्रोल कवक की भूमिका को समझने के लिए आवश्यक है कि उन्हें केवल "रोगनियंत्रण साधन" न मान कर एक जीवित जैविक प्रणाली के रूप में देखा जाए।

बायोकंट्रोल कवक के प्रकार	प्रमुख उदाहरण	कृषि में प्रमुख भूमिका एवं कार्य
माइको पैरासाइटिक कवक	*ट्राइकोडर्मा , ग्लियोक्लेडियम, एम्पेलोमाइसेस क्विस्क्वालिस*	ये कवक रोग जनक कवकों पर प्रत्यक्ष परजीवी बनते हैं। ये उनकी हाइफ़ा को पहचानकर उसके चारों ओर कुंडली बनाते हैं और काइटिनेज़ व ग्लूकानेज़ जैसे एंजाइमों का स्राव कर कोशिका –भित्ति को तोड़ देते हैं। परिणाम स्वरूप जड़ सड़न, उखटा, तना सड़न जैसे मृदा-जनित रोग प्रभावी रूप से नियंत्रित होते हैं।
प्रतिद्वंद्वी (एंटागोनिस्टिक) कवक	*ट्राइकोडर्मा , पेनिसिलियम, एस्परजिलस*	ये कवक रोग जनकों के साथ पोषक तत्वों और स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं तथा एंटीबायोटिक यौगिक उत्पन्न कर बीजाणु अंकुरण और हाइफ़ल वृद्धि को रोकते हैं। इस प्रकार रोग को प्रारंभिक अवस्था में ही दबा दिया जाता है।
कीट-रोगकारी कवक	*ब्यूवेरिया बासियाना, मेटारहिज़ियम एनिसोप्लिया, लेकैनिसिलियम लेकानी*	ये कवक कीटों की बाहरी त्वचा से चिपक कर एंजाइमों की सहायता से शरीर में प्रवेश करते हैं और भीतर फैलकर कीट को नष्टक रदेते हैं। ये सफेद मक्खी, माहू, थ्रिप्स और दीमक जैसे रस-चूसक कीटों के नियंत्रण में अत्यंत प्रभावी हैं।

ISSN: 3049-2211

नेमाटोड-नाशी कवक	*पेसिलोमाइसेस लिलासिनस, पोचोनिया क्लैमाइडोस्पोरिया, आर्थ्रोबोट्रीस*	ये कवक पौध-परजीवी नेमाटोडों को फँसाकर, उनके अंडों पर परजीवी बनकर या विषैले यौगिक उत्पन्न कर उनकी संख्या को कम करते हैं। विशेष रूप से जड़-गाँठ एवं सिस्टनेमाटोड के नियंत्रण में उपयोगी हैं।
एंडोफाइटिक कवक	*ट्राइकोडर्मा , पिरिफोर्मोस्पोरा इंडिका, क्लैडोस्पोरियम*	ये कवक पौधों के आंतरिक ऊतकों में बिना रोग उत्पन्न किए निवास करते हैं। ये पौधों की प्रतिरक्षाप्रणाली को सक्रिय करते हैं, पोषक तत्व अवशोषण बढ़ाते हैं और दीर्घ कालिक रोग प्रतिरोध प्रदान करते हैं।
बहु-कार्यात्मक कवक उपकारक	*ट्राइकोडर्मा हर्ज़ियानम, ट्राइकोडर्मा विरिडे*	ये कवक एक साथ माइको पैरासाइटिज़्म, एंटीबायोसिस, प्रतिस्पर्धा तथा प्रेरित प्रतिरोध जैसे कई तंत्रों से कार्य करते हैं। इसी बहु-कार्यात्मकता के कारण ये सबसे अधिक उपयोग किए जानेवाले और विश्वसनीय जैव-नियंत्रक माने जाते हैं।

बायोकंट्रोल कवक की प्रमुख भूमिकाएँ:

बायोकंट्रोल कवकों की भूमिका को पाँच मुख्य कार्यात्मक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। ये सभी भूमिकाएँ आपस में जुड़ी हुई हैं और एक साथ कार्य करती हैं।

1. माइको पैरासाइटिज़्म द्वारा रोग जनकों का प्रत्यक्ष नियंत्रण

बायोकंट्रोल कवक की सबसे प्रभावशाली भूमिका है; रोगजनक कवकों पर प्रत्यक्ष परजीविता, जिसे माइकोपैरासाइटिज़्म कहा जाता है। यह एक सक्रिय जैविक प्रक्रिया है जिसमें उपकारक कवक रोगजनक कवक को पहचान कर उस पर आक्रमण करता है। इस प्रक्रिया में *ट्राइकोडर्मा* जैसे उपकारक कवक रोगजनक कवकों की कोशिका-भित्ति से निकलने वाले रासायनिक संकेतों को पहचानते हैं। इसके बाद वे रोगजनक की हाइफ़ा की ओर बढ़ते हैं, उसके चारों ओर कुंडली बनाते हैं और निकट संपर्क स्थापित करते हैं। संपर्क केपश्चात ये कवक काइटिनेज़, β 1,3-ग्लूकानेज़ और प्रोटीएज़ जैसे एंजाइमों का स्राव करते हैं।

इन एंजाइमों के प्रभाव से रोग जनक की कोशिका भित्ति टूट जाती है, कोशिकीय द्रव बाहर निकलने लगता है और अंततः रोगजनक नष्ट हो जाता है या उसकी रोग उत्पन्न करने की क्षमता समाप्त हो जाती है। यह तंत्र *फ्यूज़ेरियम,राइज़ोक्टोनिया,स्क्लेरोशियम,पाइथियम* तथा *फाइटोफ्थोरा* जैसे प्रमुख मृदा-जनित रोग जनकों के विरुद्ध अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुआ है। कृषि के दृष्टिकोण से यह भूमिका इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि मृदा-जनित रोगों का रासायनिक नियंत्रण कठिन होता है,जबकि कवक उपकारक जड़ क्षेत्र में दीर्घ कालिक सुरक्षा प्रदान करतेहैं।

2. द्वितीयकउपापचयीपदार्थोंद्वारारोगदमन (एंटीबायोसिस)

बायोकंट्रोल कवक केवल भौतिक आक्रमण तक सीमित नहीं रहते बल्कि वे सूक्ष्म स्तर पर रासायनिक अवरोध भी उत्पन्न करते हैं। अनेक उपकारक कवक ऐसे द्वितीयक उपापचयी पदार्थ उत्पन्न करते हैं जिनमें रोग जनक-विरोधी गुण होते हैं।

इन पदार्थों में शामिल हैं:

- प्राकृतिक एंटीबायोटिक यौगिक
- वाष्पशील कार्बनिक यौगिक
- जैव-सक्रिय पेप्टाइड्स
- एंजाइम अवरोधक

ट्राइकोडर्मा प्रजाति याँ ग्लायोटॉक्सिन, विरिडिन,पेप्टाइबोल्स और हार्ज़ियानिक अम्ल जैसे यौगिक उत्पन्न करती हैं, जो रोगजनकों की कोशिका-झिल्ली को क्षतिग्रस्त करते हैं, उनके एंजाइम तंत्र को बाधित करते हैं और बीजाणु अंकुरण को रोकते हैं। महत्वपूर्ण बात है कि ये यौगिक रोगजनक की उपस्थिति में, उसी स्थान पर उत्पन्न होते हैं। इससे यह तंत्र स्थिर नहीं बल्कि अनुकूली बन जाता है। शोध दर्शाते हैं कि यह भूमिका संक्रमण के प्रारंभिक चरण में रोग को प्रभावी ढंग से रोकती है।

3. राइज़ोस्फीयर में प्रतिस्पर्धात्मक बहिष्करण

राइज़ोस्फीयर पौध जड़ों के चारों ओर का वह क्षेत्र है जहाँ पोषक तत्वों की अधिकता के कारण सूक्ष्म जीवों के बीच तीव्र प्रतिस्पर्धा होती है। कवक उपकारक इस क्षेत्र में तेज़ी से उपनिवेश बनाकर स्थान और पोषक तत्वों पर अधिकार कर लेते हैं। जब उपकारक कवक पहले से स्थापित हो जाते हैं, तो रोगजनकों के लिए:

- उपयुक्त स्थान नहीं बचता
- आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध नहीं रहते
- संक्रमण स्थापित करना कठिन हो जाता है

इसे प्रतिस्पर्धात्मक बहिष्करण कहा जाता है। कई शोधों में यह सिद्ध हुआ है कि यदि कवक उपकारक जड़ों पर पहले स्थापित हों, तो

ISSN: 3049-2211

रोग की संभावना अपने आप कम हो जाती है, भले ही प्रत्यक्ष पर जीविता न हो।

4. पौध रक्षा तंत्र की सक्रियता (प्रेरित प्रणाली गत प्रतिरोध)

बायोकंट्रोल कवकों की सबसे उन्नत और वैज्ञानिक रूप से महत्वपूर्ण भूमिका है-पौधों की आंतरिक रक्षा प्रणाली को सक्रिय करना। इसे प्रेरित प्रणाली गत प्रतिरोध (ISR) कहा जाता है।

जब उपकारक कवक पौध जड़ों या ऊतकों में उपनिवेश बनाते हैं,तो वे पौधे को बिना हानि पहुँचाए उसकी रक्षा प्रणाली को "सतर्क अवस्था" में ले आते हैं। परिणाम स्वरूप जब वास्तविक रोगजनक आक्रमण करता है, तो पौधा:

- तेज़ी से प्रतिक्रिया करता है
- अधिक रक्षा एंजाइम उत्पन्न करता है
- कोशिका-भित्तियों को सुदृढ़ बनाता है

यह प्रतिरोध दीर्घ कालिक होता है और पौध वृद्धि को प्रभावित नहीं करता। इसलिए यह भूमिका स्थायी रोग प्रबंधन के लिए अत्यंत उपयोगी मानी जाती है।

5. कीट एवं नेमाटोड नियंत्रण में भूमिका

कुछ कवक उपकारक कीटों और पौध-परजीवी नेमाटोडों को भी नियंत्रित करते हैं। ये कवक कीट की बाहरी त्वचा से चिपक कर एंजाइमों की सहायता से उसमें प्रवेश करते हैं और उसके शरीर में फैलकर उसे नष्ट कर देते हैं।

यह तंत्र विशेषरूप से:

- रस-चूसक कीटों
- मिट्टी में रहने वाले कीटों
- जड़-गाँठ नेमाटोडों

के नियंत्रण में प्रभावी पाया गया है। इससे रासायनिक कीट नाशकों पर निर्भरता कम होती है।

6. पौध वृद्धि एवं तनाव सहनशीलता में योगदान

कवक उपकारक पौधों के समग्र स्वास्थ्य में भी योगदान देते हैं। वे:

- जड़प्रणाली को मजबूत बनाते हैं
- पोषक तत्व अवशोषण बढ़ाते हैं
- फॉस्फोरस उपलब्धता में सुधार करते हैं
- सूखा, लवणता और तापीय तनाव के प्रति सहनशीलता बढ़ाते हैं

स्वस्थ पौधे स्वाभाविक रूप से रोगों के प्रति अधिक प्रतिरोधी होते हैं, जिससे रोग प्रबंधन और अधिक प्रभावी हो जाता है।

निष्कर्ष

कवक उपकारक केवल रोग नियंत्रण साधन नहीं हैं, बल्कि वे कृषि पारिस्थिति की तंत्र के संरक्षक और नियामक हैं। वे रोग जनकों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरीकों से नियंत्रित करते हैं, पौधों की रक्षाप्रणाली को सुदृढ़ बनाते हैं और मिट्टी के जैविक संतुलन को बनाए रखते हैं।

♣♣♣

मृदा एवं जल प्रदूषण में सूक्ष्म प्लास्टिक की भूमिका

सुदीप्त धाडा, बिशाल मंडल, अभिषेक कुमार शुक्ला

भारत, विश्व का तीसरा सबसे बड़ा प्लास्टिक उत्पादक देश है, जो प्रतिवर्ष 35 लाख टन प्लास्टिक कचरा उत्पन्न करता है, जिसमें से 60% का संग्रहण नहीं हो पाता (सीपीसीबी, 2022)। यह कचरा धीरे-धीरे सूक्ष्म प्लास्टिक में परिवर्तित हो जाता है — 5 मिमी से छोटे कण — जो कृषि योग्य मृदा, नदियों, भूजल एवं तटीय क्षेत्रों में खतरनाक मात्रा में फैल रहे हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि भारत-गंगा की मृदा में 25,000 कण/किलोग्राम तक, गंगा एवं यमुना नदियों में 5,000-28,000 कण/लीटर तक (नैपर एट अल., 2021), एवं कई राज्यों में भूजल के 78% नमूनों में सूक्ष्म प्लास्टिक पाए गए हैं (तिवारी एट अल., 2022)। भारत की मानसूनी जल प्रणाली, गहन कृषि, खुले में कचरा जलाना एवं कमजोर अपशिष्ट अवसंरचना मिलकर एक गंभीर पर्यावरणीय संकट पैदा करते हैं जो खाद्य सुरक्षा, जल गुणवत्ता, जैव विविधता एवं जन स्वास्थ्य के लिए खतरा है — जिसके लिए तत्काल नीतिगत सुधार एवं निरंतर वैज्ञानिक अनुसंधान की आवश्यकता है।

परिचय

मृदा का क्षरण—जिसमें कार्बनिक पदार्थों की हानि, संरचनात्मक पतन, पोषक तत्वों की कमी एवं प्रदूषण शामिल हैं—भारत में प्रतिवर्ष अनुमानित 16.35 मिलियन हेक्टेयर भूमि को प्रभावित करता है (ICAR-NAAS, 2015)। जल गुणवत्ता सूचकांकों (WQI, 2019) में भारत 122 देशों में 120वें स्थान पर है, जहां औद्योगिक अपशिष्ट, कच्चा मलजल, कृषि अपवाह एवं उभरते प्रदूषक इसकी 14 प्रमुख नदी प्रणालियों एवं 141 मिलियन हेक्टेयर शुद्ध कृषि योग्य क्षेत्र में प्रदूषण भार को एवं बढ़ा रहे हैं। माइक्रोप्लास्टिक, जिन्हें 1 माइक्रोमीटर एवं 5 मिमी के बीच के प्लास्टिक कणों के रूप में परिभाषित किया गया है, अब प्रदूषक की एक संरचनात्मक रूप से व्यापक श्रेणी बन गई है जो मृदा एवं जलीय क्षरण प्रक्रियाओं दोनों को जोड़ती है, एवं मौजूदा तनाव कारकों के साथ परस्पर क्रिया करके उन्हें बढ़ाती है।

भारत का सूक्ष्मप्लास्टिक संकट प्लास्टिक अपशिष्ट प्रबंधन की विफलता से अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है। केवल 30% की औपचारिक पुनर्चक्रण दर एवं व्यापक रूप से खुले में प्लास्टिक के ढेर लगाने एवं जलाने के कारण, भारी मात्रा में प्लास्टिक खुले वातावरण में आसानी से प्रवेश कर जाता है। गंगा नदी विश्व की शीर्ष दस प्लास्टिक

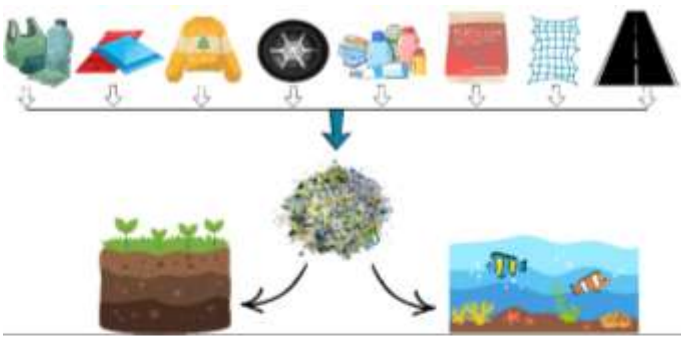

माइक्रोप्लास्टिक का उत्साह एवं वितरण

प्रदूषित नदियों में शुमार है, जो प्रतिवर्ष 0.12–0.24 मिलियन टन प्लास्टिक बंगाल की खाड़ी में ले जाती है (मेइजर एट अल., 2021)। वाराणसी में गंगा में सूक्ष्मप्लास्टिक की सांद्रता 5,000–28,000 कण/लीटर तक पहुँच जाती है—जो अधिकांश यूरोपीय नदियों की तुलना में कई गुना अधिक है। भारतीय शहरों में वायुमंडलीय सूक्ष्मप्लास्टिक का जमाव 1,200–8,600 कण/वर्ग मीटर/दिन तक पहुँच जाता है (सिंह एट अल., 2023), जो सुदूर यूरोपीय पर्वतीय क्षेत्रों में दर्ज दरों से 20 गुना अधिक है (एलन एट अल., 2019)। तीव्र मानसूनी वर्षा इन जमावों को शक्तिशाली मौसमी प्रवाह के साथ नदियों, आर्द्रभूमि एवं भूजल पुनर्भरण क्षेत्रों में प्रवाहित कर देती है।

भारतीय मृदा एवं जल में सूक्ष्म प्लास्टिक के स्रोत एवं मार्ग

1. कृषि स्रोत

भारत में 18 लाख हेक्टेयर कृषि भूमि पर प्लास्टिक मल्च फिल्म (मुख्यतः एलडीपीई) का उपयोग किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप लगातार खेती के चक्रों के बाद इंडो-गंगा के मैदानी इलाकों के खेतों में 20-180 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से अवशेष जमा हो जाते हैं (आईसीएआर, 2020)। दिल्ली, हैदराबाद एवं चेन्नई के शहरी क्षेत्रों के आसपास के इलाकों में अपशिष्ट जल से सिंचाई के कारण ऊपरी मृदा में 1,800-11,000 सूक्ष्मप्लास्टिक कण प्रति किलोग्राम शुष्क भार के हिसाब से जमा हो जाते हैं (कुमार एट अल., 2020)। भारत के 1,152 सीवेज ट्रीटमेंट प्लांटों से निकलने वाले कीचड़ को बिना किसी सूक्ष्मप्लास्टिक स्क्रीनिंग प्रोटोकॉल के नियमित रूप से भूमि पर डाला जाता है, जो प्रदूषण का एक बड़ा एवं पूरी तरह से अनियंत्रित मार्ग बन जाता है।

2. औद्योगिक, शहरी एवं वायुमंडलीय स्रोत

तिरुप्पुर, सूरत एवं लुधियाना में स्थित कपड़ा निर्माण केंद्रों से निकलने वाले औद्योगिक अपशिष्ट जल में उपचार से पहले 1,200–15,000 सिंथेटिक माइक्रोफाइबर/लीटर की मात्रा होती है (सुंदरकृष्णन एट अल., 2022)। दिल्ली एनसीआर एवं मुंबई में अनौपचारिक प्लास्टिक पुनर्चक्रण केंद्रों के कारण आसपास की मृदा में 6,500–22,000 कण/किलोग्राम की सांद्रता पाई जाती है (वर्मा एट अल., 2023)। भारत के 3,159 ऐसे डंपसाइट हैं जो मानकों का पूरी तरह पालन नहीं करते हैं, एवं इनसे निकलने वाला रिसाव आसपास की मृदा एवं भूजल को लगातार प्रदूषित करता है (सीपीसीबी, 2022)। भारतीय मानसून की बारिश की तीव्रता का अनुकरण करने वाले लाइसीमीटर अध्ययनों में पाया गया कि सतह पर डाले गए माइक्रोप्लास्टिक का 12–18% हिस्सा एक ही मानसून के मौसम में जल निकासी तक पहुँच जाता है — जो शीतोष्ण क्षेत्रों के अनुमानों से काफी अधिक है — ऐसा भारत में तीव्र वर्षा एवं उच्च सतही अपवाह के कारण होता है (गुप्ता एट अल., 2022)।

भारतीय पर्यावरण मैट्रिक्स में भौतिक रासायनिक गुणधर्म

भारत में पाए जाने वाले पर्यावरणीय सूक्ष्म प्लास्टिक में पॉलीइथिलीन (28–45%), पॉलीप्रोपाइलीन (18–32%), पॉलिएस्टर/पीईटी (15–24%) एवं पॉलीस्टाइरीन (8–14%) की प्रधानता है, जो देश में प्लास्टिक की खपत के स्वरूप को दर्शाती है (आचार्य एट अल., 2021)। नदी के नमूनों में रेशों की प्रधानता (62–78%) है, जबकि कृषि मृदा में सूक्ष्म प्लास्टिक के टुकड़ों की प्रधानता (54–68%) है, जो विभिन्न स्रोतों एवं परिवहन मार्गों को इंगित करता है। भारत में तीव्र सौर विकिरण (6–7 किलोवाट-घंटे/वर्ग मीटर/दिन) पर्यावरणीय सूक्ष्म प्लास्टिक के पराबैंगनी विकिरण से प्रेरित सतही ऑक्सीकरण को तेजी से बढ़ाता है, जिससे कार्बोनिल एवं हाइड्रॉक्सिल कार्यात्मक समूह उत्पन्न होते हैं जो भारत की औद्योगिक रूप से प्रभावित मृदा में मौजूद भारी धातुओं के अधिशोषण को उल्लेखनीय रूप से बढ़ाते हैं। दिल्ली में यमुना नदी से प्राप्त सूक्ष्म प्लास्टिक में सीसा के अधिशोषण की क्षमता 18–56 मिलीग्राम/ग्राम पाई गई, जो शुद्ध पॉलिमर के मूल्यों से कहीं अधिक है (शर्मा एवं चटर्जी, 2022)। नदी के सूक्ष्म प्लास्टिक पर पनपने वाली प्लास्टिस्फीयर बायोफिल्म, पृष्ठभूमि तलछट सांद्रता से 500-2,000 गुना अधिक ESBL-प्रतिरोधी ई. कोलाई को आश्रय देती है, जो सूक्ष्म प्लास्टिक संदूषण को भारत के बढ़ते एंटीबायोटिक प्रतिरोध संकट से सीधे जोड़ती है (खत्री एट अल., 2023)।

मृदा क्षरण एवं जल प्रदूषण की क्रियाविधियाँ

1. मृदा संरचना, जल विज्ञान एवं पोषक तत्व चक्रण में परिवर्तन

पंजाब के सघन रूप से खेती किए जाने वाले खेतों में पाए जाने वाले एलडीपीई माइक्रोप्लास्टिक की सांद्रता (500-2,000 मिलीग्राम/किलोग्राम) मृदा की स्थिरता को 18-35% तक कम कर देती है एवं जलोढ़ इंडो-गंगा मृदा में घनत्व को 4-8% तक बढ़ा देती है, जिससे गेहूं एवं धान की खेती के लिए आवश्यक वायु संचार एवं जड़ों का प्रवेश बाधित होता है (कुमार एवं सिंह, 2021)। महाराष्ट्र की काली मृदा (वर्टिसोल) में माइक्रोप्लास्टिक द्वारा प्रेरित सूजन-संकुचन गतिकी में व्यवधान के कारण मानसून से पहले दरारें एवं कटाव में तेजी देखी जाती है (पाटिल एट अल., 2022)। पोषक तत्वों के स्तर पर, पीएस माइक्रोप्लास्टिक से दूषित तमिलनाडु की लेटराइट मृदा में यूरिएस गतिविधि 27% एवं फॉस्फेटेज गतिविधि 31% तक कम हो जाती है -

जिससे राष्ट्रीय स्तर पर 0.5% से कम कार्बनिक कार्बन वाली भारतीय मृदा का पोषक तत्व संकट एवं भी बढ़ जाता है (सेल्वराज एट अल., 2022)। भारतीय धान के खेतों में किए गए अध्ययनों में सूक्ष्मप्लास्टिक से दूषित बाढ़ वाली मृदा से N_2O उत्सर्जन में 34-52% की वृद्धि दर्ज की गई है - जो CO_2 की तुलना में 265 गुना अधिक शक्तिशाली ग्रीनहाउस गैस है - जो भारत के जलवायु प्रतिक्रिया चक्र में सूक्ष्मप्लास्टिक प्रदूषण को सीधे तौर पर शामिल करती है (वर्मा एवं कुमारस्वामी, 2022)।

2. जल प्रदूषण एवं संदूषक वाहक की भूमिका

कम जल प्रवाह वाली सर्दियों की स्थितियों के दौरान यमुना नदी में 15,000–27,500 सूक्ष्मप्लास्टिक कण/लीटर तक पहुँच जाते हैं, जिससे जल की मैलापन बढ़ जाती है एवं इसमें प्रचुर मात्रा में पाए जाने वाले भारी धातुओं, रंगों एवं औषधीय यौगिकों के लिए सोखने की सतह उपलब्ध हो जाती है (वर्मा एट अल., 2022)। तेलंगाना में सिंचाई टैंकों में 45,000 कण/लीटर तक जमा हो जाते हैं, जिससे भारत की 25% लघु कृषि, जो टैंक सिंचाई पर निर्भर है, खतरे में पड़ जाती है (रेड्डी एट अल., 2023)। संदूषण वाहक के रूप में, सूक्ष्मप्लास्टिक कण एंडोसल्फान (पंजाब के कपास उत्पादक क्षेत्र में एक पुराना ऑर्गेनोक्लोरीन कीटनाशक) को आसपास के मृदा के जल की तुलना में 800–12,000 गुना अधिक सांद्रता में सोख लेते हैं, जिससे यह जल निकासी चैनलों एवं भूजल में प्रवाहित हो जाता है (रानी एट अल., 2021)। राजस्थान, गुजरात एवं तमिलनाडु में उथले भूजल कुओं के 78% नमूनों में 0.4-12 कण/लीटर पर माइक्रोप्लास्टिक संदूषण पाया गया है - जो ग्रामीण पेयजल के लिए एक प्रत्यक्ष एवं बढ़ता खतरा है (तिवारी एट अल., 2022)।

मृदा एवं जल जीवमंडल पर प्रभाव

1. सूक्ष्मजीव समुदाय एवं मृदा जीव-जंतु

भारतीय मृदा सूक्ष्मजीव-जैविक जीव-समूह—जो हिमालय की तलहटी से लेकर उष्णकटिबंधीय डेल्टाओं तक कृषि-पारिस्थितिकी तंत्रों में जैविक उर्वरता बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण हैं—सूक्ष्मप्लास्टिक संदूषण के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं। पीईटी सूक्ष्मप्लास्टिक कुल जीवाणुओं की संख्या को 22-41% तक कम कर देते हैं, राइजोबियम की संख्या को 38% तक दबा देते हैं एवं अपघटन में बाधा उत्पन्न करके मृदा कार्बनिक कार्बन (एसओसी) को 12-28% तक घटा देते हैं (कुमार एवं सिंह, 2021)। कुल सूक्ष्मजीवों की संख्या—जीवाणु, कवक एवं एक्टिनोमाइसीट्स—में 15-35% की गिरावट आती है, जिसमें माइकोराइज़ल कवक असमान रूप से दब जाते हैं, जिससे फास्फोरस का अवशोषण कमजोर हो जाता है। सूक्ष्मप्लास्टिक सूक्ष्मजीवों द्वारा स्रावित बाह्यकोशिकीय बहुलक पदार्थों (ईपीएस) को बाधित करके वृहद समुच्चय स्थिरता को भी 18-31% तक कम कर देते हैं, जिससे मानसूनी अपरदन के प्रति संवेदनशीलता बढ़ जाती है (पाटिल एट अल., 2022)। पोषक तत्वों का चक्रण पूरी तरह से बाधित हो जाता है — यूरिएस में 27%, फॉस्फेटेस में 31% एवं डीहाइड्रोजिनेस में 40% तक की गिरावट आती है — जिससे नाइट्रोजन का खनिजीकरण, फॉस्फोरस का निकलना एवं कार्बनिक पदार्थों का विघटन सामूहिक रूप से प्रभावित होता है (सेल्वराज एट अल., 2022)। महाराष्ट्र में गन्ने की मृदा में पाए जाने वाले केंचुओं में कोकून उत्पादन में 24-46% की कमी एवं प्रतिरक्षा में कमी देखी गई है, जिससे मृदा के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले जीव-जंतुओं का प्रभाव एवं भी कम हो जाता है (पवार एट अल., 2022)।

2. जलीय जीवन एवं पादप-मृदा अंतःक्रियाएँ

भारत के मीठे जल के पारिस्थितिकी तंत्र, जो पहले से ही औद्योगिक अपशिष्ट, सीवेज निर्वहन एवं अत्यधिक दोहन से गंभीर तनाव में हैं, अब सूक्ष्म प्लास्टिक के कारण जल गुणवत्ता के मूलभूत मापदंडों में आए बदलावों से एक एवं गंभीर खतरे का सामना कर रहे हैं। अत्यधिक प्रदूषित जल निकायों में घुलित ऑक्सीजन (DO) 1.2–2.8 मिलीग्राम/लीटर तक गिर जाती है, जो पहले से ही गर्म भारतीय सतही जल में मछलियों के जीवित रहने की महत्वपूर्ण सीमा 4 मिलीग्राम/लीटर को पार कर जाती है (रेड्डी एट अल., 2023)। अम्लीय प्लास्टिसाइज़र के रिसाव से धीमी गति से बहने वाले टैंकों एवं सिंचाई नहरों में जल का pH 0.3–0.8 इकाई तक कम हो जाता है, जिससे सह-प्रदूषकों की रासायनिक संरचना में परिवर्तन आ जाता है (वर्मा एट अल., 2022)। रासायनिक रिसाव भी उतना ही चिंताजनक है — भारतीय नदियों में सूक्ष्म प्लास्टिक से बीपीए (0.5–18 माइक्रोग्राम/लीटर), थैलेट (2–45 माइक्रोग्राम/लीटर) एवं नॉनिलफेनॉल (0.8–12 माइक्रोग्राम/लीटर) निकलते हैं, ये सभी अंतःस्रावी तंत्र को बाधित करने वाले तत्व हैं जो सूक्ष्म ग्राम से कम सांद्रता पर भी मछलियों एवं उभयचरों के प्रजनन को प्रभावित करते हैं (शर्मा एवं चटर्जी, 2022)। व्यावसायिक रूप से महत्वपूर्ण मछलियाँ — लैबेओ रोहिता एवं कैटला कैटला — 4–19 कण/व्यक्ति ले जाती हैं, जिनमें आंतों की ऊतक विकृति एवं यकृत विषाक्तता दर्ज की गई है (सरकार एट अल., 2023), जबकि गोदावरी मसल्स 180–640 कण/व्यक्ति जमा करती हैं, जिससे ग्रामीण समुदायों की खाद्य श्रृंखलाओं में रासायनिक प्रदूषकों की सांद्रता बढ़ जाती है (सुंदर एट अल., 2022)। खेत में मौजूद वास्तविक सूक्ष्मप्लास्टिक सांद्रता के तहत चावल की फसलों की उपज में 18-23% की कमी एवं

गेहूं के अंकुरण में 11-21% की गिरावट देखी गई (राव एट अल., 2022)।

पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएं, मृदा-जल अंत:क्रियाएं एवं सहक्रियात्मक तनाव कारक

1. पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं की हानि एवं मृदा-जल गतिशीलता

भारत में, जहाँ कृषि 47% कार्यबल को रोजगार प्रदान करती है एवं सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में 18% का योगदान देती है, सूक्ष्म प्लास्टिक प्रदूषण से पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं का नुकसान गंभीर एवं बढ़ता जा रहा है। अनुमान है कि 2035 तक उपज में होने वाली हानि की लागत प्रतिवर्ष ₹18,000–42,000 करोड़ (USD 2.1–5.0 बिलियन) होगी (शर्मा एट अल., 2023)। प्रदूषित मृदा अपनी संभावित कार्बन पृथक्करण क्षमता का 8–15% खो देती है, जिससे भारत की नेट ज़ीरो 2070 प्रतिबद्धताएँ कमज़ोर पड़ जाती हैं, जबकि धान की मृदा से निकलने वाला N_2O उत्सर्जन जलवायु परिवर्तन पर सीधा प्रभाव डालता है। 14.5 मिलियन मछुआरों का समर्थन करने वाले तटीय मत्स्य पालन को मछली के स्वास्थ्य में गिरावट एवं स्पष्ट रूप से प्रदूषित जल निकायों से प्राप्त उत्पादों के उपभोक्ताओं द्वारा अस्वीकृति जैसे गंभीर खतरों का सामना करना पड़ता है। इंडो-गंगा के अत्यधिक दोहन से प्रभावित जलभंडार — जो 0.3–1.0 मीटर प्रति वर्ष की दर से घट रहे हैं — शुष्क दरारों के माध्यम से सूक्ष्म प्लास्टिक के तेजी से रिसने का सामना कर रहे हैं, जिससे दीर्घकालिक प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो रही है जिसका समाधान वर्तमान प्रबंधन ढांचे नहीं कर सकते। पंजाब के औद्योगिक क्षेत्र में पीई सूक्ष्म प्लास्टिक एवं क्रोमियम के संयुक्त संपर्क से मृदा सूक्ष्मजीव जैव द्रव्यमान कार्बन में 58% की कमी आती है — जो अकेले क्रोमियम के प्रभाव से लगभग दोगुनी है (कौर एट अल., 2022)। 2050 के जलवायु अनुमानों के अनुसार, सूक्ष्म प्लास्टिक-सूखा परस्पर क्रियाओं से प्रायद्वीपीय भारत में वर्षा आधारित फसलों की उपज में होने वाली हानि को 20–35% तक बढ़ाने का अनुमान है, जबकि इनमें से किसी भी कारक के स्वतंत्र रूप से कार्य करने की तुलना में यह हानि कम होगी (मिश्रा एट अल., 2023)।

कार्यप्रणाली संबंधी दृष्टिकोण एवं अनुसंधान संबंधी कमियाँ

भारत में सूक्ष्मप्लास्टिक के अध्ययन में मुख्य रूप से बहुलक पहचान के लिए FTIR स्पेक्ट्रोस्कोपी (65%), रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी (28%) एवं नाइल रेड फ्लोरेसेंस स्टेनिंग (42%) का उपयोग किया जाता है (आचार्य एट अल., 2021)। हालांकि, मानकीकृत राष्ट्रीय निष्कर्षण प्रोटोकॉल का अभाव एक गंभीर कमजोरी है — गंगा के तलछट के समान नमूनों के अंतर-प्रयोगशाला विश्लेषण में कण गणना में 180-420% तक भिन्नता पाई गई (सिंह एट अल., 2022), जिससे नियामक उद्देश्यों के लिए डेटा संश्लेषण अविश्वसनीय हो जाता है। सूक्ष्मप्लास्टिक CPCB एवं SPCB के पर्यावरण निगरानी ढांचे से पूरी तरह से बाहर हैं, एवं भारी धातुओं एवं पारंपरिक कार्बनिक प्रदूषकों के विपरीत, भारतीय कानून के तहत इनके लिए कोई नियामक सीमा निर्धारित नहीं की गई है। नैनोप्लास्टिक अंश (1 μm से नीचे) अपनी बेहतर जैविक प्रवेश क्षमता एवं विषाक्तता के बढ़ते प्रमाणों के बावजूद भारत में लगभग अनछुआ ही रहा है। भारत की स्थानिक विविधता - जिसमें 14 प्रमुख नदी प्रणालियाँ,

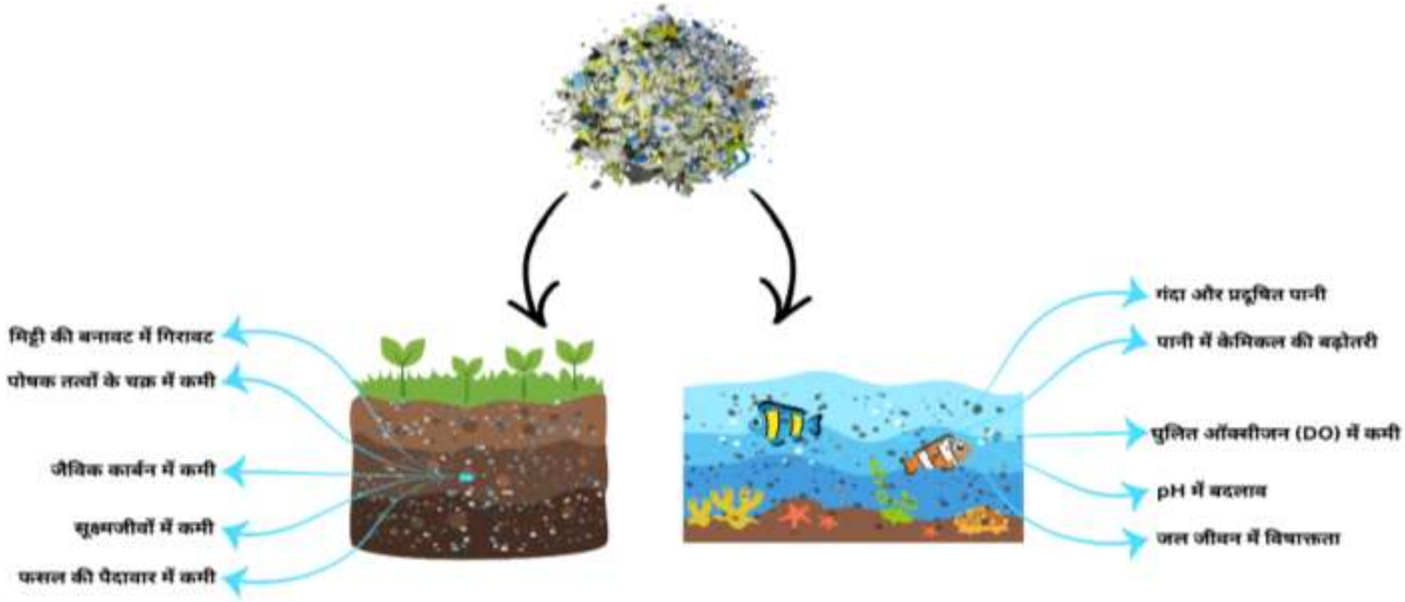

मृदा एवं जल मी मिसेरोप्लास्टिक का प्रवाब

45 जल निकासी बेसिन एवं अत्यंत भिन्न कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्र शामिल हैं - के लिए नमूना कवरेज की आवश्यकता है जो वर्तमान में उपलब्ध राष्ट्रीय अनुसंधान निधि से अधिक है, जिससे साक्ष्य आधार में बड़े भौगोलिक एवं लौकिक अंतराल रह जाते हैं।

जोखिम कम करने की रणनीतियाँ एवं प्रबंधन दृष्टिकोण

1. नीतिगत ढाँचे एवं स्रोत में कमी

भारत के प्लास्टिक अपशिष्ट प्रबंधन नियमों (संशोधित 2022) ने 75 माइक्रोन से कम मोटाई वाले एकल-उपयोग प्लास्टिक पर प्रतिबंध लगा दिया है एवं विस्तारित उत्पादक उत्तरदायित्व (ईपीआर) ढांचा स्थापित किया है, जिसके तहत प्लास्टिक पैकेजिंग के पूरे जीवनचक्र में जवाबदेही अनिवार्य है। हालांकि, ग्रामीण बाजारों में अनुपालन केवल 40-65% (सीएसई, 2023) तक ही सीमित है, जो सीमित प्रवर्तन ढांचे को दर्शाता है। भारत के राष्ट्रीय जल गुणवत्ता निगरानी कार्यक्रम (36 राज्यों में फैले 3,122 स्टेशनों को कवर करते हुए) में मानकीकृत माइक्रोप्लास्टिक मापदंडों को शामिल करने से साक्ष्य-आधारित सीमा निर्धारण एवं नियामक कार्रवाई के लिए आवश्यक राष्ट्रीय आधारभूत डेटा प्राप्त होगा। भारत की पारंपरिक कृषि पद्धतियां - जिनमें फसल अवशेषों की मल्चिंग, जूट की चटाई एवं नारियल के रेशे से बने उत्पाद शामिल हैं - प्लास्टिक मल्च फिल्मों के आसानी से उपलब्ध जैव-अपघटनीय विकल्प हैं, जिनके लिए सरकारी प्रोत्साहन ढांचे की आवश्यकता है।

2. भारत के लिए उपयुक्त उपचारात्मक प्रौद्योगिकियाँ

बायोरेमेडिएशन एक सांस्कृतिक एवं आर्थिक रूप से उपयुक्त मार्ग प्रदान करता है: मुंबई के लैंडफिल की मृदा से IIT दिल्ली द्वारा पृथक किए गए स्यूडोमोनास एरुगिनोसा स्ट्रेन अनुकूलित परिस्थितियों में 30 दिनों में 6.4% वजन घटाने की दर से LDPE को विघटित करते हैं (स्कारियाचन एट अल., 2021)। भारत में पाई जाने वाली वेटिवर घास (क्राइसोपोगोन ज़िज़ानियोइड्स) राइजोस्फीयर मृदा में माइक्रोप्लास्टिक को स्थिर एवं केंद्रित करती है, जिससे जल परिवहन को रोका जा सकता है एवं साथ ही औद्योगिक फाइबर बायोमास भी प्राप्त होता है (ठाकुर एट अल., 2022)। पंजाब एवं केरल में प्रायोगिक तौर पर शुरू की गई निर्मित आर्द्रभूमि कम लागत पर कृषि जल निकासी से 42-78% माइक्रोप्लास्टिक को हटाने में सफल रही एवं ग्रामीण भारतीय संदर्भों के लिए आसानी से विस्तार योग्य है (कुमार एट अल., 2023)। सूरत के कपड़ा उद्योग जिले में मूल्यांकित चुंबकीय पृथक्करण तकनीक प्रायोगिक स्तर पर औद्योगिक अपशिष्टों से 85% से अधिक माइक्रोप्लास्टिक को हटाने में सफल रही (राव एवं शर्मा, 2023)। बायोडिग्रेडेबल पीबीएटी मल्च फिल्म भारतीय क्षेत्र की परिस्थितियों में 12 महीनों के भीतर 94% मृदा का क्षरण प्राप्त कर लेती है, हालांकि एलडीपीई की तुलना में उनकी 2.5-3 गुना अधिक लागत के कारण छोटे किसानों द्वारा इसे अपनाने में सक्षम बनाने के लिए सरकारी सब्सिडी ढांचे की आवश्यकता होती है (पाटिल एवं जोशी, 2022)।

भविष्य की दिशाएँ एवं अनुसंधान संबंधी कमियाँ

भारत के सूक्ष्मप्लास्टिक अनुसंधान एवं प्रबंधन एजेंडा के लिए पांच परस्पर संबंधित प्राथमिकताओं पर कार्रवाई की आवश्यकता है। पहला, राष्ट्रीय आधारभूत मानकों को स्थापित करने एवं मानसून की गतिशीलता एवं भूमि उपयोग परिवर्तन से जुड़े सामयिक रुझानों का पता लगाने के लिए मौजूदा सीपीसीबी जल गुणवत्ता अवसंरचना में दीर्घकालिक सूक्ष्मप्लास्टिक निगरानी को एकीकृत किया जाना चाहिए। दूसरा, मृदा एवं जल में सूक्ष्मप्लास्टिक सांद्रता के लिए भारत-विशिष्ट नियामक सीमाएं राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिनिधि अध्ययनों के माध्यम से विकसित की जानी चाहिए, क्योंकि यूरोपीय एवं उत्तरी अमेरिकी मानक भारत की विशिष्ट बहुलक संरचनाओं, परिवेश तापमान एवं सह-संदूषकों के भार को प्रतिबिंबित नहीं करते हैं। तीसरा, 1 माइक्रोमीटर से कम आकार के डेटा की वर्तमान लगभग पूर्ण अनुपलब्धता को दूर करने के लिए राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थानों में नैनोप्लास्टिक विश्लेषणात्मक अवसंरचना - गतिशील प्रकाश प्रकीर्णन, इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी एवं पायरोलिसिस-जीसी/एमएस - में लक्षित निवेश आवश्यक है। चौथा, नीतिगत ढांचों में समानता का आयाम जोड़ने के लिए लघु किसानों, मछुआरों एवं ग्रामीण जल उपयोगकर्ताओं - जो सबसे अधिक प्रभावित एवं सबसे कमजोर आबादी हैं - पर आजीविका प्रभावों का मात्रात्मक विश्लेषण करने के लिए अंतःविषयक सामाजिक-आर्थिक अनुसंधान की तत्काल आवश्यकता है। पांचवीं बात, भारत को विकासशील देशों के लिए विज्ञान-आधारित, लागू करने योग्य माइक्रोप्लास्टिक मानकों का समर्थन करने के लिए संयुक्त राष्ट्र वैश्विक प्लास्टिक संधि में अपनी वार्तात्मक स्थिति का लाभ उठाना चाहिए, यह सुनिश्चित करते हुए कि वैश्विक शासन ढांचे न्यायसंगत हों एवं दक्षिणी वैज्ञानिक साक्ष्यों पर आधारित हों।

निष्कर्ष

भारत में मृदा एवं जल का सूक्ष्मप्लास्टिक प्रदूषण व्यापक, गंभीर एवं तेजी से बढ़ रहा है। इसका मुख्य कारण प्लास्टिक कचरे का कुप्रबंधन है, जो अपशिष्ट प्रबंधन अवसंरचना, नियामक प्रवर्तन एवं उत्पादक जवाबदेही में प्रणालीगत विफलताओं को दर्शाता है। यहां समीक्षा किए गए साक्ष्य स्पष्ट हैं: सूक्ष्मप्लास्टिक मृदा के मूलभूत भौतिक

ISSN: 3049-2211

एवं रासायनिक गुणों को बदल देते हैं, विभिन्न पोषण स्तरों पर जैविक समुदायों को दबा देते हैं, भारत की प्रमुख खाद्य फसलों की पैदावार को कम कर देते हैं, करोड़ों लोगों द्वारा उपभोग किए जाने वाले भूजल को दूषित कर देते हैं, जलीय प्रणालियों में जहरीले रसायन छोड़ते हैं एवं पुराने सह-प्रदूषकों के परिवहन एवं जैव उपलब्धता को बढ़ा देते हैं - ये सभी मिलकर 1.4 अरब लोगों की खाद्य एवं जल सुरक्षा को खतरे में डाल रहे हैं। फिर भी, भारत के पास इस संकट से निपटने के लिए शक्तिशाली संसाधन मौजूद हैं: कृषि में जैव-अपघटनीय सामग्रियों के उपयोग की स्वदेशी परंपरा, जैव उपचार एवं सामग्री नवाचार क्षमता से युक्त एक विशाल एवं बढ़ता वैज्ञानिक समुदाय, एवं वैश्विक प्लास्टिक प्रबंधन मानदंडों को आकार देने की जनसांख्यिकीय एवं आर्थिक क्षमता। इन संसाधनों को सार्थक कार्रवाई में बदलने के लिए सभी राष्ट्रीय पर्यावरण कार्यक्रमों में अनिवार्य सूक्ष्मप्लास्टिक निगरानी, वास्तविक कॉर्पोरेट जवाबदेही के साथ लागू करने योग्य ईपीआर ढांचे, जैव अपघटनीय कृषि इनपुट के लिए लक्षित सरकारी प्रोत्साहन एवं भारत की कृषि-पारिस्थितिक एवं सामाजिक-आर्थिक वास्तविकता के अनुरूप उपचारात्मक प्रौद्योगिकियों में निरंतर निवेश की आवश्यकता है। सूक्ष्मप्लास्टिक संकट का समाधान रैखिक प्लास्टिक अर्थव्यवस्था को चक्रीय अर्थव्यवस्था में परिवर्तित किए बिना एवं मृदा एवं जल संसाधनों की रक्षा किए बिना नहीं किया जा सकता है, जिन पर भारतीय आजीविका, पारिस्थितिकी तंत्र एवं भावी पीढ़ियां मौलिक रूप से निर्भर हैं।

♣♣♣

दूध के विभिन्न उत्पाद बनाने की वैज्ञानिक विधियां

डा. प्रियल तिवारी - टिचिंग असिस्टेन्ट, **डा. सुभाष कुमार वर्मा** - सहायक प्राध्यापक
डा. नडिपिल्लि श्रीलक्ष्मी- असिसटेंट प्रोफेसर संविदा)

दूध उत्पादन व्यवसाय या डेयरी फार्मिग भारत में एक लाभदायक और आकर्षक व्यवसाय है, जो अधिकतर भारतीय किसानों के साथ ही वाणिज्यिक व्यापारियों के रूप में चल रहा है। यदि आप इस व्यवसाय में वृद्धि प्राप्त करना चाहते है तो इसके लिये आपको कारोबार के मानदंड स्थापित करके उसी के अनुसार कार्य करना चाहिये। दूध से कई प्रकार के दुग्ध उत्पादों का निर्माण किया जाता है। प्रायः देखने में आता है कि अलग अलग जगह उत्पादों की गुणवत्ता एक जैसी नही रहती है। इसका मुख्य कारण उपयोग मे आने वाले कच्चे माल की गुणवत्ता में अंतर तथा उत्पाद के निर्माण की विधि का एकसमान ना होना है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि ऐसे वैज्ञानिक तरीकों का विकास किया जाए जिनसे विभिन्न दुग्ध उत्पादों की गुणवत्ता बरकरार रहे तथा क्षेत्रीय एवं व्यक्तिगत कारणों से आने वाले फर्क को मिटाया जा सके। भारत वर्ष में प्रचलित कुछ प्रमुख प्रसस्कृति दूध उत्पाद बनाने की विधियां निम्नलिखित है-

मक्खन

मक्खन वसा युक्त वह दुग्ध पदार्थ है जो स्तनधारियों मुख्य कर गाय, भैंस, बकरी के दुग्ध से प्राप्त क्रीम को मथने से प्राप्त होता है तथा उसमें दुग्ध वसा की मात्रा 80 प्रतिशत से कम और दूसरे पदार्थो की मात्रा 20 प्रतिशत से अधिक नही होनी चाहिये। शेष पदार्थों में केवल पानी की मात्रा 16 प्रतिशत तक हो सकती है।

मक्खन बनाने की विधियाँः-

(क) ग्रामीण या देशी विधि

(ख) क्रीम से या वैज्ञानिक विधि

(क) देशी विधि: यह बहुत ही सरल विधि है। इसमें दूध को मिटटी के बर्तनों में भरकर उपलों की आग पर बहुत देर तक पकाते है। दूध को ठंडा करके उसमें थोडा जामन मिलाकर 10-12 घण्टे तक दही बनने के लिये रख देते है। इस दही में गर्मी के मौसम में थोडा ठंडा पानी तथा सर्दी के मौसम में थोडा गुनगुना पानी मिलाकर मथनी की सहायता से मथते है। थोडी देर में मक्खन, छाछ या मठटे के ऊपर तैरने लगता है। मथनी पर लगे तथा छाछ के ऊपर तैरने वाले मक्खन को हाथ से निकालकर अलग कर लिया जाता है। इस मक्खन को ग्रामीण भाषा में लोनी कहते है।

(ख) वैज्ञानिक विधि या क्रीम से मक्खन बनानाः मक्खन बनाने के लिये मंथन करने से पहले क्रीम में वसा 35 प्रतिशत तक कर ली जाती है। क्रीम को संग्रह टंकी में भेजने से पूर्व उसे 90 डिग्री थ् गर्म कर लेना चाहिये। किसी भी दशा में मंथन की जाने वाली क्रीम की अम्लीयता 0.3 प्रतिशत से अधिक न हो। यदि अम्लीयता अधिक है तो सोडियम बाई कार्बोनेट मिलाकर उदासीन कर लिया जाता है। क्रीम को जीवाणु रहित करने तथा उसमें उपस्थित होने वाले दुर्गन्ध से बचाव के लिये निरोगन की क्रिया आवश्यक है। फैक्ट्री में बैकोएटर या अन्य विधियों द्वारा क्रीम का निरोगन किया जा सकता है। मीठी क्रीम को जामन डालकर पकाने से

ISSN: 3049-2211

उसमें अम्लता आती है जिससे अच्छा मक्खन तैयार होता है। यदि मक्खन नमकीन बनाया जाता है तो इसमें मक्खन का रंग चर्न में छानने से पहले मिलाया जाता है।रंग को बूंद बूंद करके डालते है। चर्न में क्रीम डालने के बाद इसे धीरे धीरे घुमाया जाता है। चर्न को थोडी देर तक चलाने के प्श्चात इसमें उत्पन्न गैस को टोंटी खोलकर निकाल देते है। मंथन के कारण वसा गोलिकाओं की परत टूट जाती है तथा वसा गोलिकाएं आपस में जुडने लगती है। इस समय ढक्कन में लगे कांच के टुकडे पर एकत्रित क्रीम भी अलग हो जाती है। इसी समय ठडा पानी (4-5 डिग्री फा.) क्रीम में ढक्कन खोलकर मिलातें है। इसे Break water कहते है। इससे वसा गोलिकाएं आपस में जुडने लगती है। चर्न में मठटा निकालनें के बाद उसी में 3-4 बार लगभग 5 डिग्री थ्‌ ताप का पानी डालकर धोना चाहिये। इसके बाद चर्न में इतना पानी भर दिया जाता है कि मक्खन ऊपर तैरने लगता है। वर्कर में से भरे पानी को निकाल दिया जाता है तथा बटर स्कूप की सहायता से मक्खन को चर्न में से वर्कर पर डाला जाता है। वर्कर का तापक्रम ठण्डे पानी से मक्खन से 3-4 डिग्री F कर लिया जाता है। मक्खन की टिकियों को बटर पेपर के अन्दर बन्द करके गत्ते के डिब्बों में पैक कर दिया जाता है।

पनीर

पनीर को चीज की भारतीय वैरायटी के रुप में जाना जाता है। इसे गर्म दूध के अम्ल द्वारा स्कंदन से प्राप्त किया जाता है जिसमें वसा की मात्रा शुष्क भार के 50 प्रतिशत से कम व नमी की मात्रा 70 प्रतिशत से अधिक नही होनी चाहिए। उच्च गुणवत्तायुक्त पनीके निर्माण के लिए दूध में वसा तथा वसा रहित ठोस का अनुपात 1:1.65 होना चाहिए। पनीर की उत्पत्ति मुख्य रूप से पश्चिम भारत में हुई किन्तु वर्तमान में यह पूरे देश में लोकप्रिय है। गर्म दूध के स्कंदन के लिए उपयुक्त स्कंदन कारक (नीबू, सिट्रिक अम्ल, फिटकरी आदि) का इस्तेमाल किया जाता है। स्कंदन के दौरान दूध को धीरे-धीरे चलाया जाता है। भैंस के दूध में केसीन प्रोटीन, कैल्सियम, फास्फोरस तथा अन्य लवणों की अधिकता के कारण इससे गाय दूध की अपेक्षा उच्च गुणवत्ता का पनीर प्राप्त होता है। इसमें वसा, प्रोटीन तथा खनिज लवणों की मात्रा अधिक होती है। पनीर की प्राप्ति दूध के मात्रा की भैंस में 20.22 प्रतिशत व गाय के दूध में 16-18 प्रतिशत तक होती है।

निर्माण विधि

दिए गए दूध का नमूना लेकर उसमें वसा, वसा रहित ठोस, अम्लता तथा स्वाद रंग आदि का पता लगाते हैं। दूध में वसा तथा वसा रहित ठोस की मात्रा को क्रमशः 4.5 एवं 8.5 प्रतिशत पर लाते हैं। दूध को मलमल के कपडे की सहायता से छान लेते है। दूध को 900 सेल्सियस ताप तक लगातार हिलाते हुए गर्म करते हैं इसके बाद गाय के दूध को 700 सेल्सियस भैंस के दूध को 800 सेल्सियस तक ठंडा करके इसमें दूध की मात्रा का 1.5 प्रतिशत लैक्टिक अम्ल मिलाकर इसे धीरे धीरे चलाते रहते है। साफ हरे पीले रंग के व्हे का अलग होना स्कंदन की पूर्णता को दर्शाता है। व्हे के अलग होने के पश्चात इसे 5 मिनट के लिए शांत छोड देते है। अब मलमल के कपडे की सहायता से इसे छान लेते हैं, तथा व्हे को अलग करने के लिए इसे हूप या सांचे में भर देते हैं। इस पर पनीर ब्लाक के आकार के हिसाब से 15-20 मिनट के लिए वजन (आवश्यक दाब की मात्रा 2-3 किलोग्राम प्रति वर्ग सेण्टीमीटर)आरोपित करते हैं। व्हे निकलने की इस पूरी प्रक्रिया के दौरान तापमान 630 सेल्सियस से नीचे नही आना चाहिए। प्राप्त पनीर को ठंडा करने के लिए लगभग एक घंटे के लिए ठंडे पानी में डाल देते हैं। अच्छी तरह से ठंडा होने पर पानी से निकाल कर इसे रेफ्रिजरेटर में भंडारित कर लेते हैं।

छेना

छेना दूध को सिट्रिक अम्ल द्वारा फाडकर तैयार किया जाता है। इसमें वसा की मात्रा 50 प्रतिषत से ज्यादा व नमी 70 प्रतिषत से कम होनी चाहिये। छेना बनाते वक्त दूध को फाडने के बाद 3 से 4 घंटे के लिये खूँटी पर टाँग देते है। साधारणतयः 2-2.5 ग्राम सिट्रिक अम्ल 1 किग्रा0 दूध को फाडने के लिये पर्याप्त होता है। छेना बनाने के लिये गाय का दूध सर्वोत्तम रहता है क्योकि इससे प्राप्त छेना मुलायम व ठोस आकार का होता है। सिट्रिक अम्ल द्वारा बनाया गया छेना नर्म गठन वाला होता है और सन्देष बनाने के लिये उपयुक्त रहता है। यदि छेना दुग्धामल से तैयार किया गया है तो सख्त गठन एवं दानेदार बनता है तथा रसगुल्ला बनाने में इस्तेमाल होता है। छेना में प्रोटीन की मात्रा अधिक होने व कार्बोहाइड्रेट की मात्रा कम होने के कारण यह डायबिटीज के मरीजो के लिये एक उत्तम खाद्य पद्धार्थ है।

खोआ या मावा

खोआ पूर्ण दूध (whole milk) अथवा वसा रहित दूध (separated milk) को कुछ सीमा तक शुष्क किया गया दुग्ध पदार्थ है। जिसको तैयार करने के लिये दुग्ध को खुली आग पर चैडे मुँह के बर्तन में गाढा किया जाता है।

निर्माण विधि

खोआ बनाने के लिये ताजा व स्वच्छा दूध लेना चाहिये। इसको छानकर तोल लेना चाहिये। तथा प्रयोग में आने वाले यन्त्रों को भली प्रकार साफ या जीवाणु रहित कर लेना चाहिये। इसमें प्रयोग होने वाली कढाई 10 से 12 लीटा क्षमता वाली होती है तथा इसको 1/5 या 1/3 भाग तक भरकर स्टोव या भटटी पर रख देते है ध्यान रहे कि भटटी में

ISSN: 3049-2211

धुआँ नही होना चाहिये वसा जलने की गन्ध खोये से आने लगती है। उवलते समय पलटे की सहायता से दूध को 140-160 चक्कर प्रति मिनट चलाना चाहिये। इससे दुग्ध कढाई की तली में नही लगता। जब दुग्ध गाढा होने लगता है तब तापक्रम कम 80 डिग्री-85 डिग्री सं0 करके चलाने की गति धीमी कर देनी चाहिये अर्थात 100-110 चक्कर कर देनी चाहिये। जब खोआ बनकर तैयार हो जाता है उस समय वह कढाई की दिवारों से नही चिपकता तथा उसमें एक विशेष प्रकार की सुगन्ध आनी शुरू हो जाती है। उस समय कढाई को अंगीठी से उतार लेना चाहिये तथा उसकी 5 से 10 किग्रा0 की टिकिया बनाकर बटर पेपर में पैक कर देनी चाहिये।

दही

एफ एस एस ए आई (2011) के अनुसार दही को ऐसे किण्वित दुग्ध उत्पाद के रुप में परिभाषित किया जा सकता है जिसे पाश्चुरीकृत या उबाले हुए दूध में हानिरहित लैक्टिक अम्ल या अन्य जीवाणुवीय कल्चर (जामन) डालकर बनाया जाता है। यह बहुत ही लोकप्रिय दुग्ध उत्पाद है तथा कई जगहों पर इसे भोजन के स्थाई घटक के रुप में इस्तेमाल किया जाता है। मीठे दही का निर्माण *स्ट्रेप्टोकोकस लैक्टिस, स्ट्रेप्टोकोकस डाइएसिटैलिकस* एवं *स्ट्रेप्टोकोकस क्रीमोरिस* नामक जीवाणुओं द्वारा किया जाता है। जबकि खट्टे दही के निर्माण के लिए *स्ट्रेप्टोकोकस लैक्टिस, स्ट्रेप्टोकोकस डाइएसिटैलिकस* एवं *लैक्टोकोकस बुल्गैरिकस* नामक जीवाणुओं द् वारा होता है। उच्च गुणवत्ता की दही प्राप्त काने के लिए दूध में कुल ठोस की मात्रा 11-13 प्रतिशत या दूध के कुल ठोस से 2 प्रतिशत ज्यादा होना चाहिए।

निर्माण विधि

दही बनाने के लिये स्वच्छ ताजा दूध लेना चाहिये। इसके लिये दुग्ध अम्लता 17 प्रतिशत से अधिक नही होनी चाहिये। दुध को बारीक कपडे से छान लिया जाता है। दूध को सर्वप्रथम 35-40 डिग्री से. पर गर्म करके छान लेते हैं एवे इसमें वसा तथा वसा रहित ठोस की मात्रा को क्रमशः 3% एवं 12% के मानक स्तर पर लाते हैं।इसके बाद दूध को 60 डिग्री से.पर गर्म करके होमोजनाइज कर लेते हैं। इसके पश्चात दूध को 900 पर 15 मिनट के लिए पाश्चुरीकृत कर तुरंत 37 डिग्री से. तक ठंडा करके इसमें दूध की मात्रा का 1.5 प्रतिशत की दर से जामन (स्टार्टर कल्चर) मिलाकर इसे 37 डिग्री से. पर 16-18 घंटो के लिए इसका ऊष्मायन (इन्क्यूबेसन) करते हैं। इसके पश्चात इसे रेफ्रिजरेशन तापमान पर भंडारित कर लेते है। गर्मी में दही जमाने में कम समय 8-10 घण्टे लगाते हे। जबकि सर्दियों में ज्यादा समय लगता है। जीवाणुओं की उचित वृद्धि के लिये दूध का तापक्रम 70 डिग्री फा0 से 72 डिग्री फा0 अच्छा रहता है जाडे में 75 डिग्री फा0 कर देना चाहिये।

मिष्ठी दही

यह पूर्वी भारत मुख्यतः पश्चिम बंगाल का किण्डवित, मीठा दुग्ध उत्पाद है। इसे विभिन्न धार्मिक उत्सवों पर प्रमुखता के साथ पसंद किया जाता है तथा महत्वपूर्ण कार्यों एवं यात्रा शुरु करने के पहले इसका सेवन शुभ माना जाता है।

निर्माण विधि

मिष्ठी दही बनाने के लिए सर्वप्रथम दूध में वसा एवं वसा रहित ठोस की मात्रा को क्रमशः 3 एवं 12 प्रतिशत के मानक स्तर पर लाते हैं। तत्पश्चात दूध को 60 डिग्री से. पर गर्म करके इसका होमोजनाइजेसन कर लेते हैं। अब दूध के मात्रा की 14 प्रतिशत चीनी एवं 0.1 प्रतिशत कैरामल दूध में मिला कर इसे अच्छी तरह से घोल लेते हैं। कैरामल की निर्धारित मात्रा को 100 मिलीलीटर दूध में घोलकर इसे बाकी के दूध में मिलाना चाहिए। इसके बाद इसे मलमल के कपडे से छानकर अघुलनशील पदार्थों को इससे अलग कर लेते हैं। अब दूध को 90 डिग्री से. पर 10 मिनट के लिए गर्म कर इसे यथाशीघ्र 37 डिग्री से. तक ठंडा करके इसमें दूध के भार का 1.5 प्रतिशत जामन मिला देते हैं। इसका 37 डिग्री से. पर 6 घंटां के लिए इसका ऊष्मायन करते है ताकि इसमें अम्लता का मान 0.8 प्रतिशत के स्तर पर आ जाए। अब इसे 4 डिग्री से. सेल्सियस तक ठंडा करके इसका रेफ्रिजरेसन में भंडारण कर लेते हैं। इसके कई प्रकार प्रचलन में हैं जिन्हें बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के फल, सूखं मेवे आदि का उपयोग किया जाता है।

श्रीखंड

यह दही से बनने वाला खट्टे मीठे स्वादयुक्त दुग्ध उत्पाद है। यह बहुत ही लोकप्रिय डेजर्ट है तथा गुजरात एवं महाराष्ट्र में इसको प्रमुखता के साथ इस्तेमाल किया जाता है।

निर्माण विधि

इसे बनाने के लिए सर्वप्रथम उच्च गुणवत्ता की दही का निर्माण करते हैं। दही बन जाने पर इससे चक्का बनाने के लिए इसे मलमल के कपडे में लपेट कर रात भर के लिए किसी खूँटी पर टंगा देते हैं ताकि इससे व्हे या दही का तोड निकल जाए। अब प्राप्त चक्के में इसके भार के 14 प्रतिशत पिसी हुई चीनी मिलाते हैं। चीनी को अच्छी तरह से मिलाने के लिए इसे 65 डिग्री से. तक गर्म करते हैं। इस प्रकार से प्राप्त उत्पाद श्रीखंड को डिब्बाबंद करके रेफ्रिजरेशन ताप पर इसका भंडारण कर लेते हैं।

घी

घी क्रीम अथवा मक्खन को एक निश्चित तापक्रम तक गर्म करके, निथारने के बाद प्राप्त हुआ पदार्थ है। वह दुग्ध पदार्थ जिसमें 99 प्रतिशत से अधिक वसा उपस्थित हो तथा सामान्य ताप (20 डिग्री से0)

ISSN: 3049-2211

पर अर्द्ध संघनित या संघनित अवस्था में हो, परन्तु उसके अन्य वसा न मिले हो, घी कहलाता है। घी के निर्माण की अनेक विधियाँ प्रचलन में हैं जिनमें से कुछ प्रमुख विधियाँ इस प्रकार हैं-

ग्रामीण विधि

इस विधि में दही को बिलोकर या मंथन करके लोनी या देसी मक्खन प्राप्त किया जाता हे। प्रतिदिन का मक्खन एक सप्ताह बाद किसी मिटटी या धातु के बर्तन में गर्म किया जाता है। इसे पिघलने तक पलटे से या बडे चम्मच से चलाते रहते है। तापक्रम 100 डिग्री से0 पहुँचने पर इसमें उबाल आने से पानी वाष्पित होने लगता हे। पानी समाप्त होने पर इसमे वसा ऊपर रह जाती है। इसको ठंडा होने पर बारीक छलनी से छान कर अलग कर लिया जाता है।

पूर्व-स्तरीकाण विधि

राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, बंगलौर ने मक्खन से घी बनाने की पूर्वस्तर विधि ज्ञात की है। इस विधि में विशेष प्रकार के पात्र(केतली या बायलर)जिसमें दो पर्तों के बीच में भाप को प्रवाहित किया जाता है। इस विधि से घी बनाने के लिए बिना नमक मिले मक्खन को छोटे छोटे टुकडों में काट लेते हैं तथा इसे 80 – 85 डिग्री तापमान पर 30 मिनट के लिए शांत रख देते हैं, इस प्रकार से पिघला हुआ मक्खन तीन पर्तों में व्यवस्थित हो जाता है। ऊपर की पर्त विकृत प्रोटीन कण, दही के कण तथा अन्य अनेक अशुद्वियों की बनी होती है। मध्य पर्त स्वच्छ वसा एवं निचली पर्त छाछ तथा सीरम प्रोटीन की बनी होती है। अब नीचे की पर्त को ऊपर की दोनों पर्तो को बिना विचलित किए नल खोलकर हटा लेते हैं। इसके बाद ऊपर की दोनों पर्तो को 112-116 डिग्री सेल्सियस तापमान पर थोडी देर के लिए गर्म करते हैं ताकि इसमें घी की चारित्रिक सुगंध का विकास हो सके। इसके पश्चात प्राप्त घी को 40 डिग्री सेल्सियस तापमान तक ठंडा कर मलमल के कपडे से छान कर उचित पात्रों में इसका भंडारण कर लेते हैं। इस विधि से बनाए गए घी की अम्लता कम होती है एइसे लम्बे समय तक भंडारित किया जा सकता है एवं अन्य विधियों की अपेक्षा कम ईधन की आवश्यकता होती है।

क्रीमरी मक्खन विधि

यह विधि विभिन्न व्यवस्थित डेयरियों में इस्तेमाल में आने वाली लोकप्रिय विधि है। इस विधि से घी बनाने के लिए बिना नमक मिले मक्खन का उपयोग किया जाता है। मक्खन को छोटे-छोटे टुकडों में काट लेते हैं ताकि इसे आसानी से पिघलाया जा सके। मक्खन को स्टेनलेस स्टील के बर्तन में घीमी आँच पर पिघलने तक गर्म करते हैं। मक्खन के पूरी मरह पिघल जाने के पश्चात आँच या भाप के दाब को बढा देते हैं ताकि मक्खन उबलने लगे। उबलने की शुरुआत में तीव्र बुदबुदाहट तथा चटखने की आवाजें आती है, धीरे- धीरे नमी की मात्रा घटने के साथ बुदबुदाहट तथा चटखने की आवाजें कम होने लगती हैं। नमी की लगभग पूरी मात्रा के निकल जाने पर ताप को सावधानीपूर्वक बढा कर 110-120 डिग्री सेल्सियस कर देते हैं। इस स्थिति में पहले की अपेक्षा महीन बुदबुदाहट तथा दही के कणों का भूरापन देखने को मिलता है एवं घी की विशिष्ट सुगंध का विकास होता है जो कि क्रिया की पूर्णता को दर्शाता है। सामान्यतः तापमान को 107 डिग्री सेल्सियस के नीचे रखा जाता है ताकि घी को ज्यादा पके हुए या जले हुए स्वाद से बचाया जा सके। जिन क्षेत्रों में लोग ज्यादा पके हुए स्वाद को पसंद करते हैं वहाँ तापमान को 110-120 डिग्री सेल्सियस के मध्य रखा जाता है। अब घी को 29 डिग्री सेल्सियस तक ठंडा करते हैं जिससे दानेदार घी का निर्माण होता है। इस प्रक्रिया के पूर्ण होने के पश्चात प्राप्त घी को मलमल के कपडे से छानकर इसका 25 डिग्री सेल्सियस तापमान पर उचित भंडारण कर लेते हैं।

मक्खन से घी बनाना

मक्खन सबसे पहले क्रीम के मंथन से बनाते है तथा इस मक्खन को गर्म करके इससे घी बनाया जाता है। मक्खन को देशी विधि की तरह 110 से 120 डिग्री से0 तक गर्म किया जाता है। इस तापक्रम पर मक्खन का समस्त पानी भाप बन जाता है तथा दूध के दूसरे ठोस पदार्थ घी से अलग हो जाते है। इसके प्श्चात इसे छान लेते है।

आइसक्रीम

आइसक्रीम एक हिमीकृत खाद्य पदार्थ है जिसको दुग्ध पदार्थ के मिश्रण से बनाया जाता है और जिसमें दुग्ध, वसा रहित ठोस पदार्थो एवं चीनी की एक इच्छित प्रतिशत मात्रा होती है। इसके साथ साथ आइसक्रीम में स्थानीय कारक, सुवासकत्रा एवे रंजन पदार्थ भी इच्छित प्रतिशत मात्रा में मिलाये जाते है।

आइसक्रीम में प्रयोग होने वाले पदार्थ-

1. **दुग्ध तथ दुग्ध पदार्थ-** दूध स्प्रेटा, स्किम दुग्ध, दूध चूर्ण, संघटित दूध, क्रीम, मक्खन इत्यादि।
2. **मीठा करने वाले पदार्थ-** चीनी, ग्लूकोज, कोर्न, सुगर, शहद इत्यादि।
3. **अण्डे-** सम्पूर्ण अण्डे का चूर्ण, अण्डे की पीतक का चूर्ण, ताजे अण्डे।
4. **स्टेबिलाइजर-** जैलेटिन गाद (gum), सोडियम एल्जेनेट, पेक्टीन।
5. **सुगन्ध वाले पदार्थ-** वैनीला, कोका, चाकलेट, गोला, गुलाब, केवडा।
6. **संग देने वाले पदार्थ-** वैनीला, synthetic harmless fruit colour.

ISSN: 3049-2211

आइसक्रीम तैयार करने की विधि-

1. पदार्थो की प्राप्ति- आइसक्रीम के लिये आवश्यक सभी सामग्रियों को इकटठा करते समय उसमें ताजगी का परीक्षण कर लेना चाहिये।

2. उपकरणों की सफाई एवं जीवाणु हनन करना- प्रयोग में आने वाले सभी उपकरण स्वच्छ तथा जीवाणुहनित किये गये हो। अगर बर्तनों को अच्छी प्रकार से साफ नही किया गया तो बर्तनों की गन्ध तथा जीवाणु आइसक्रीम में प्रवेश पा जाते है जिससे आइसक्रीम हानिप्रद बनती है।

3. दुग्ध पदार्थो का संगठन- निर्धारित संगठन की आइसक्रीम बनाने के लिये हमें प्रयोग होने वाले दुग्ध व दुग्ध पदार्थो का भी संगठन ज्ञात होना चाहिये।

4. आइसक्रीम मिश्रण तैयार करना- आइसक्रीम का संगठन ज्ञात करने के बाद हम गणना की सहायता से विभिन्न पदार्थो की पृथक पृथक मात्रायें ज्ञात कर लेते है। तोलने के तुरन्त बाद स्टेबिलाइजर में थोडा पानी डालकर भिगो देते है। दुग्ध , दुग्ध चूर्ण तथा चीनी को मिलाकर एक बर्तन में रख देते है। किसी स्टील की कढाही में दूध व क्रीम को डालकर एक साथ गर्म करते है। इसे गर्म करते समय चीनी मिला दुग्ध चूर्ण धीरे धीरे डालकर मिला देते है। इसके बाद जिलेटिन मिलाकर इसका तापक्रम 145 से 150 डिग्री फा0 तक बढाकर 25-30 मिनट तक मिश्रण को निरोगित कर लिया जाता है। इस समय रंग भी मिलाया जा सकता है।

5. आइसक्रीम मिश्रण का निरोगन करना- घरों पर तथा प्रयोगशाला में बनाई गई आइसक्रीम का निरोगन 145 से 150 डिग्री फा0 तक बढाकर 25-30 मिनट तक गर्म करके किया जाता है।

6. आइसक्रीम मिश्रण का होमोजिनाइजेशन- बडी फैक्ट्रियों में मिश्रण में कसाघात बढाकर आइसक्रीम में ओवर रन की वृद्धि करने के लिये यह क्रिया की जाती है।परन्तु घर में यह क्रिया सम्भव नही है।

7. आइसक्रीम मिश्रण का शीतल करना- होमोजिनाइजेशन के तुरन्त बाद या निरोगन के बाद मिश्रण को 50 डिग्री फा0 तक ठण्डा करते है। बडी डेरियों में 32 डिग्री फा0 तक मिश्रण को ठण्डा किया जाता है।

8. आइसक्रीम मिश्रण का परिपक्वन- मिश्रण को 2 से 6 घण्टे के लिये 32 डिग्री से 40 डिग्री फा0 तक ठण्डे गृह में रखते है। इस क्रिया से मिश्रण में गाढापन तथा कसाघात की वृद्धि होती है।

9. मिश्रण में सुवास मिलाना- वैनीला तथा अन्य बाजार में मिलने वाले रंगो को परिपक्वन से पूर्व ठीक ढंग से मिला लिया जाता है।

10. आइसक्रीम मिश्रण को जमाना-

(क) घरेलू फ्रीजर

(ख) यान्त्रिक फ्रीजर

(ग) सतत फ्रीजर

11. आइसक्रीम का कठोरीकरण- आइसक्रीम का दृडीकरण के लिये डैसर को सबसे पहले निकाल लेना चाहिये तथा फ्रीजर की बाल्टी का पानी निकालकर आइसक्रीम के डिब्बे का मुँह बन्द कर ढक्कन का छेद बन्द कर देना चाहिये। इसमें नमक तथा बर्फ (1:6) का मिश्रण आइसक्रीम डिब्बे में चारों ओर भर देना चाहिये तथा आधे घण्टे के लिये रख देते है। इसके बाद इसे प्यालों, छोटे छोटे पैकेट या अन्य बर्तनों में भरकर hardening room में जिसका तापक्रम 0 डिग्री फा0 से 15 डिग्री फा0 ही रखा जाता है।

♣♣♣

आक, नीम और धतूरा: रसायन मुक्त खेती की प्रभावी तकनीक

प्राकृतिक संसाधनों से टिकाऊ कृषि की ओर एक प्रभावी कदम

भरत कुमार- सहायक आचार्य, उद्यान विज्ञान, **मनीष कुमार दुरिया**- पशुधन उत्पादन और प्रबंधन,
श्रीनाथजी कृषि महाविद्यालय नाथद्वारा, सम्बद्धता- महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर

आज के समय में कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग किया जा रहा है।रासायनिक कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी की उर्वरता, पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।ऐसी परिस्थितियों में जैविक खेती एक सुरक्षित एवं टिकाऊ विकल्प के रूप में उभर रही है। जैविक खेती में प्राकृतिक स्रोतों से तैयार किए गए कीट एवं रोग नियंत्रण उपायों का विशेष महत्व है।

आक (मदार), नीम एवं धतूरा ऐसे औषधीय पौधे हैं जिनमें प्राकृतिक कीट-नियंत्रक गुण पाए जाते हैं। इनसे तैयार घोल फसलों को अनेक हानिकारक कीटों से बचाने में सहायक होते हैं तथा रासायनिक दवाओं पर निर्भरता कम करते हैं।

1. आक (मदार) का महत्व

आक (*Calotropis procera*) एक औषधीय पौधा है जिसकी पत्तियों एवं दूध (लेटेक्स) में जैव सक्रिय तत्व पाए जाते हैं। यह प्राकृतिक कीटनाशक के रूप में उपयोगी माना जाता है।

इसके प्रमुख लाभ

- ✓ रस चूसने वाले कीटों के नियंत्रण में सहायक।
- ✓ इल्ली एवं कुछ फफूंदजनित रोगों की रोकथाम में उपयोगी।
- ✓ जैविक कीटनाशक घोल तैयार करने में प्रयुक्त।
- ✓ अन्य वनस्पति आधारित घोलों की प्रभावशीलता बढ़ाता है।

2. नीम का महत्व

नीम (*Azadirachta indica*) को जैविक खेती का सबसे प्रभावी प्राकृतिक कीटनाशक माना जाता है। इसमें Azadirachtin नामक सक्रिय तत्व पाया जाता है जो कीटों के भोजन, वृद्धि एवं प्रजनन को प्रभावित करता है। नीम आधारित घोल निम्न कीटों के नियंत्रण में अत्यंत प्रभावी है जैसे माहू , सफेद मक्खी, थ्रिप्स, जैसिड फल एवं तना छेदक, विभिन्न प्रकार की इल्लियाँ आदि ।

नीम की खली मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने, निमेटोड नियंत्रण तथा पौधों की स्वस्थ वृद्धि में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

3. धतूरा का महत्व

धतूरा (*Datura metel / Datura stramonium*) एक औषधीय पौधा है जिसमें प्राकृतिक एल्केलॉइड पाए जाते हैं। ये तत्व कई प्रकार के कीटों को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं। धतूरे का उपयोग विशेष रूप से पत्ती खाने वाली इल्लियों के नियंत्रण में रस चूसने वाले कीटों के नियंत्रण में विभिन्न जैविक कीटनाशक घोलों की तैयारी में किया जाता है। धतूरा भी विषैला पौधा है, अतः इसका प्रयोग केवल अनुशंसित मात्रा एवं सावधानी के साथ ही करना चाहिए।

आक, नीम एवं धतूरा का संयुक्त उपयोग

इन तीनों पौधों की पत्तियों को गोमूत्र अथवा पानी में 10–15 दिनों तक किण्वित करके प्राकृतिक कीट-प्रतिरोधक घोल तैयार किया जाता है। यह घोल जैविक खेती में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है।

मुख्य लाभ

- ♣ फसलों में कीटों का प्रकोप कम होता है।
- ♣ रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता घटती है।
- ♣ लाभकारी कीटों का संरक्षण होता है।
- ♣ मिट्टी एवं पर्यावरण सुरक्षित रहते हैं।
- ♣ उत्पादन लागत कम होती है।
- ♣ जैविक एवं सुरक्षित कृषि को बढ़ावा मिलता है।

उपयोग करते समय सावधानियाँ

- ✓ घोल बनाते समय दस्ताने एवं मास्क का प्रयोग करें।
- ✓ छिड़काव से पहले घोल को अच्छी तरह छान लें।
- ✓ सुबह अथवा शाम के समय ही छिड़काव करें।
- ✓ पहले छोटे क्षेत्र में परीक्षण करें।
- ✓ अनुशंसित मात्रा का ही प्रयोग करें।

आक, नीम एवं धतूरा प्रकृति द्वारा प्रदान किए गए ऐसे बहुमूल्य पौधे हैं, जिनका संतुलित एवं वैज्ञानिक उपयोग जैविक खेती को अधिक टिकाऊ, पर्यावरण-अनुकूल तथा कम लागत वाली बना सकता है।वर्तमान समय में जब सुरक्षित खाद्य उत्पादन एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की आवश्यकता बढ़ रही है, तब इन पौधों पर आधारित जैविक कीटनाशकों का उपयोग किसानों के लिए एक प्रभावी एवं किफायती विकल्प सिद्ध हो सकता है।यदि किसान इन पौधों से तैयार प्राकृतिक कीटनाशकों का उचित प्रशिक्षण एवं वैज्ञानिक सलाह के अनुसार उपयोग करें तो रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता कम होने के साथ-साथ सुरक्षित एवं गुणवत्तापूर्ण कृषि उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

धान का गुणवत्तापूर्ण बीज उत्पादन

[1]**सोनाली सिंहवाल-** शोध छात्रा, एम.एस.सी.(आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन) चौ.च.वि.वि. परिसर मेरठ (उ.प्र.)
[2]**सौरभ-** छात्र, सस्य विज्ञान विभाग-राजा महेन्द्र प्रताप महाविद्यालय, गुरुकुल नारसन, हरिद्वार
[3]**अंशिका-** छात्रा, बी.एस.सी. (कृषि) चौधरी छोटू राम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)

धान दुनिया की आवश्यक प्रमुख खाद्यान्न फसल है, जो कि लगभग 65 प्रतिशत से अधिक लोगों का पोषण करती है। देश में कुल खाद्यान्नों के उत्पादन में धान का योगदान 40 प्रतिशत से भी अधिक है, भारत में धान की खेती लगभग 47.6 मि. हेक्टेयर क्षेत्र में धान की खेती की जाती है, जिसमें प्रति एकड़ उत्पादन औसतन 1500 से 2500 कि.ग्रा. होता है, और देश में कुल धान उत्पादन लगभग 153 मि. टन है। भारत पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, असम, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, बिहार, आंध्र प्रदेश, केरल, पंजाब, महाराष्ट्र और कर्नाटक आदि धान उगाने वाले प्रमुख राज्य हैं और कुल 92 प्रतिशत उत्पादन में योगदान करते हैं। यदि धान उत्पादन की वैज्ञानिक उन्नत तकनीकियों का उपयोग कर औसत बीज उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है।

जलवायु

धान का उत्पादन उन क्षेत्रों में किया जा सकता है, जहाँ 100 से 200 सेंटीमीटर वर्षा प्रति वर्ष होती है। धान के लिए 16 से 30 डिग्री सेल्सियस तापमान उचित होता है। फसल कटाई के समय 16 से 26 डिग्री सेल्सियस तापमान सर्वोत्तम होता है।

भूमि एवं उसकी तैयारी

बीज उत्पादन के लिए ऐसे खेत का चयन करते हैं, जिसमें गत वर्ष धान की खेती न की गयी हो। धान की खेती विभिन्न प्रकार की भूमियों में की जा सकती है। लेकिन चिकनी एवं चिकनी दोमट भूमि सर्वोत्तम होती है। धान की खेती के लिए, अच्छी जल धारण क्षमता और कम पारगम्यता वाली मिट्टी अच्छी होती है, क्योंकि ये जल को लम्बे समय तक रोक के रख सकती है, जोकि धान फसल के लिए अत्यधिक आवश्यक है। धान फसल के लिए पी.एच. मान 5.5 से 6.5 सर्वोत्तम होता है। धान के लिए दो जुताई टैक्टर चालित हैरो से करके, एक जुताई कल्टीवेटर से तथा एक जुताई रोटावेटर से करके खेत को समतल कर लेना चाहिए। यदि धान को धान को डीएसआर विधि से उगाया जा रहा है तो खेत को बिना जुताई रखना उत्तम रहता है ताकि जीरो टिल ड्रिल से बुवाई की जा सके।

उन्नत प्रजातियों का चुनाव

धान की अधिक उपज प्राप्त करने के लिए उन्नत प्रजातियों का चयन अहम होता है। विभिन्न अनुसंधान संस्थानों द्वारा साधारण धान, बासमती धान एवं संकर धान की देश के विभिन्न भागों के लिए अनेक प्रजातियां विकसित की गई है जिनका सारणी 1. में विवरण दिया गया है।

ISSN: 3049-2211

सारणी1. भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा जारी धान की अधिक पैदावार के लिए उन्नत प्रजातियां

क्र.सं.	प्रजातियां	औसत उपज (कु./है.)	उपयुक्त क्षेत्र	विषेषतायें
1	पूसा बासमती 1	30-40	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली, उत्तराखंड	यह 135-140 दिनों में पकती है तथा बैक्टीरियल लीफ ब्लाइट प्रतिरोधी है।
2	पूसा सुगंध 3	40-50	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली, उत्तराखंड	यह 125 दिनों में पकती है इसके दाने लम्बे व स्वादिष्ट होते हैं।
3	पूसा सुगंध 4 (पूसा 1121)	40-45	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली, उत्तराखंड	इसके दाने की लम्बाई 8 मि.मी. तक होती है। इसको कम उर्वरक की आवश्यकता होती है।
4	पूसा बासमती 5	55-60	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली, उत्तराखंड एवं जम्मू व कश्मीर	यह 120-125 दिनों में पकती है तथा गाल मौज, भरे धब्बे व झुलसा प्रतिरोधी है।
5	पूसा बासमती 6	55	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली, उत्तराखंड एवं जम्मू व कश्मीर	150 दिनों में पकती है। तीव्र खुशबू एवं अर्द्ध बौनी किस्म है।
6	पूसा बासमती 1509	40-45	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली, उत्तराखंड	यह 115-120 दिनों में पकती है तथा इसके दाने कम झड़ते व कम गिरती है।
7	पूसा बासमती 1718	45-46	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली, उत्तराखंड	यह 135 दिनों में पकती है यह कम ऊँचाई वाली होती है।
8	पूसा बासमती 1728	41.46	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली, उत्तराखंड	यह 140 दिनों में पकती है यह कम ऊँचाई वाली होती है।
9	पूसा बासमती 1692	52.6	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली, उत्तराखंड	यह 115 दिनों में पकती है यह कम ऊँचाई वाली होती है।
10	पूसा बासमती 1847	57.1	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली	यह 120 दिनों में पकती है यह कम ऊँचाई वाली होती है।
11	पूसा बासमती 1885	46.47	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली	यह 135 दिनों में पकती है यह 1121 की बैक्टिरियल ब्लाइट एवं ब्लास्ट प्रतिरोधी होती है।
12	पूसा बासमती 1886	44.9	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली	यह 145 दिनों में पकती है, यह बैक्टिरियल ब्लाइट एवं ब्लास्ट प्रतिरोधी होती है।
13	पूसा बासमती 1979	45.8	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली	यह 133 दिनों में पकती है यह 1121 की खरपतवारनाशी सहिष्णु होती है।
14	पूसा बासमती 1985	51.6	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली	यह 115 दिनों में पकती है, 1509 की खरपतवार सहिष्णु किस्म है।
15	पूसा बासमती 1882	46.9	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली	यह 134 दिनों में पकती है, यह सूखा सहनशील किस्म है।
16	पूसा 2090	88.4	दिल्ली	यह 120 दिनों में पकती है। फसल गिरने की सम्भावना कम होती है।
17	पूसा 1824	95.1	दिल्ली	यह 120 दिनों में पकती है। गैर बासमती चावल है।
18	पूसा आर.एच. 10 (संकर)	60-65	पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड	यह 110-115 दिनों में पकती है तथा इसके दाने खुशबुदार व चिकने होते हैं।
19	पूसा 44	50-60	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी बिहार, महाराष्ट्र, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश	यह 140-145 दिनों में पकती है, यह कम ऊँचाई वाली किस्म है।
20	पूसा 1612	30-40	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश,	यह 120 दिनों में पकती है, यह पीली लीफ बीमारी

			दिल्ली, उत्तराखंड एवं जम्मू व कश्मीर	प्रतिरोधी है।
21	पूसा 1460	55-60	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली, उत्तराखंड, एवं जम्मू व कश्मीर	यह 135-140 दिनों में पकती है यह किस्म सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।
22	पीएनआर 381	50-60	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, बिहार, प.बंगाल, झारखंड, कर्नाटक	यह मध्यम ऊँचाई वाली स्वादिष्ट किस्म है एवं 120 दिनों में पकती है।
23	पीएनआर 516	40-50	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली, उत्तराखंड	यह मध्यम ऊँचाई वाली किस्म है एवं 115-120 दिनों में पकती है।
अन्य संस्थानों द्वारा विकसित संकर किस्में				
24	पन्त संकर धान 1	60-70	उत्तर-पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	120-125 दिनों में पकती है।

धान नर्सरी बुवाई का समय

धान नर्सरी के लिए 20 मई से 30 जून का समय उपयुक्त होता है। सीधी बुवाई के लिए धान की फसल को क्षेत्र एवं किस्मों के अनुसार 10 से 15 जुलाई का समय उपयुक्त है।

नर्सरी तैयार करना

धान की नर्सरी तैयार करने हेतु खेत का चयन करते समय सिंचाई की सुविधा का विशेष ध्यान रखना चाहिए। एक हेक्टेयर क्षेत्र में पौध रोपाई हेतु 800 से 1000 वर्ग मीटर क्षेत्र पर्याप्त है तथ क्यारियों की चैड़ाई 1.25 मीटर से अधिक नही रखनी चाहिए। नर्सरी में 10 क्विंटल गोबर या कम्पोस्ट खाद, 12.5 कि.ग्रा. यूरिया, 15 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट एवं 15 कि.ग्रा. म्यूरेट आफ पोटाश तैयार के समय देना चाहिए।

बीज की मात्रा एवं बीजोपचार

सामान्यतः एक हेक्टेयर की रोपाई के लिए 20-25 कि.ग्रा., बासमती के लिए 16-20 कि.ग्रा., संकर धान के लिए 12-16 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त है। बुवाई से पहले बीज को 40 ग्राम बावस्टीन या केप्टान तथा 4 ग्राम स्ट्रैप्टोसाइक्लीन को 40 लीटर पानी में घोल में 12 घण्टों तक भिगोकर उपचारित करना चाहिए तथा इसके बाद बीज को 24 घंटों तक गीली बोरी में दबाकर रखना चाहिए। इसके बाद बीज को क्यारियों में समान रूप से छिड़कर हल्की मिट्टी से ढककर हल्की सिंचाई करते रहना चाहिए तथा क्यारियों को खरपतवार मुक्त रखना चाहिए।

धान फसल उगाने की विधियाँ

धान की फसल विभिन्न विधियों द्वारा उगाई जाती है। यहाँ पर सिर्फ तीन प्रयोगिक विधि का वर्णन किया जा रहा है।

1. एस.आर.आई पद्वति से धान उगाना
2. धान की सीधी बुआई (एरोबिक्स राइस)
3. स्वचालित मशीन द्वारा धान की रोपाई

1. एस.आर.आई. पद्वति से धान उगाना

1.1 एस.आर.आई. पद्वति द्वारा धान की नर्सरी: धान की नर्सरी के लिए जल स्रोत के निकट की जगह का चुनाव करते है, कोशिश करते हैं कि मुख्य खेत के पास की जगह हो। 100 वर्गमीटर की नर्सरी 1 हे. खेत की रोपाई के लिए पर्याप्त होती है। इसके लिए मृदा-कम्पोस्ट (गोबर की खाद-1.5 किग्रा. डाई अमोनियम फास्फेट-2 किग्रा.एन.पी.के. खाद) का मिक्चर की आवश्यकता होती है। एक लकड़ी का फ्रेम जो 1 मी. लम्बा, 0-5 मी. चौड़ा तथा 4 से.मी. मोटाई के चार भागों से बना होता है। उस पर पालीथीन शीट रखकर उसमें मिक्चर भरते है। फिर 12 घंटे का भीगाये हुए बीज को 90 से 100 ग्राम मात्रा की दर से अच्छी तरह मिक्चर में मिला देते हैं, तदोपरान्त 5 मि.मी. मोटाई के सूखी मृदा से बीज को ढ़क देते हैं, उसके तुरन्त बाद हजारे से फुहारे के साथ अच्छी तरह भिगोकर लकड़ी के फ्रेम को हटा देते हैं। आगे की प्रक्रिया इसी तरह चलती रहती हैं। नर्सरी में पानी हजारे द्वारा दिन में 2 या 3 बार डालते हैं तथा वर्षा के पानी से 5-6 दिन तक नर्सरी को बचाये रखते हैं। 10 से 12 दिन की पौध रोपाई के लिए तैयार हो जाती है।

एस.आर.आई. पद्वति द्वारा धान की खेती

एस.आर.आई. पद्वति द्वारा बीज व पानी दोनों की काफी बचत होती है, क्योंकि 5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है। जहाँ पर जल भराव अधिक नहीं होता है, उस जगह का चुनाव कर इस विधि से धान की खेती करते हैं। पहले खेत पलेवा कर 4-5 दिन उपरान्त एक-एक पौध को 25 × 25 सेमी. की दूरी पर हाथ द्वारा स्थापित करते हैं। सघन पद्वति से धान उगाने के लिए खेत को नम रखते हैं। ध्यान रहे कि खेत पूरी तरह पानी से भरा नहीं रहना चाहिए और न ही सूखा रहना चाहिए। उसमें हमेशा नमी बनी रहनी चाहिए, जिससे की मृदा जीवाणुओ की अत्यधिक संख्या बढ़ सके खास कर केंचुआ की संख्या, जिसके द्वारा पौधो को वायु संचार के साथ-साथ पोषक तत्व की उपलब्धता बढ़ जाती

ISSN: 3049-2211

है, फलस्वरूप पौध की वृद्धि तीव्र हो जाती है, उपज 20-25 प्रतिशत अधिक प्राप्त होती हैं। पोषक तत्वो की मात्रा नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश (120:60:60) किलोग्राम प्रति हेक्टेयर रखते हैं। रोपाई के समय खेत में जल भराव नहीं होना चाहिए तथा अधिक पानी इकट्ठा होने पर जल निकास का उचित प्रबन्ध करना चाहिए। आवश्यकतानुसार फसल की सिंचाई करते रहते हैं। खरपतवार नियंत्रण के लिए पौध की दूरी 25 × 25 से.मी. होने के कारण कोनो बीडर द्वारा निराई कर देते हैं, जिससे घास नियंत्रित हो जाती है और फसल की गुड़ाई भी हो जाती है, जिसके फलस्वरूप पौध विकास अच्छा होता है और पैदावार भी अच्छी प्राप्त होती है।

2. धान की सीधी बुआई (एरोबिक्स राइस)/धान की सीधी बुवाई

धान की रोपाई विधि से खेती करने मे जो समस्याएं आती हैं, उनका एक ही विकल्प है धान की सीधी बुवाई तकनीकी को अपनाना। सीधी बुआई विधि से किसान को खेत को तैयार करने एवं धान की नर्सरी डालने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। खेत मे हल्की सी नमी रहने पर जीरो टिलेज (बिना जुताई) विधि से धान की सीधी बुआई कर देते हैं। जिससे धान की बुआई मे कम लागत और पानी, श्रम एवं ईधन की बचत होती है। यदि धान की सीधी बुवाई करनी हो, तो किसानों को कम अवधि वाली किस्में जैसे साकेत-4, गोविन्द, बाला, कावेरी, नगीना-22, नरेन्द्र धान-1, नरेन्द्र धान-97, वी. एल.धान-163, वी. एल.धान-206 आदि चुनना चाहिए और इनकी बुवाई मध्य जून से मध्य जुलाई तक अवश्य कर देनी चाहिए। इन किस्मों की प्रति हेक्टेयर 70-80 कि.ग्रा. बीज रखनी चाहिए तथा बुवाई पंक्तियों में करनी चाहिए। धान की सीधी बुवाई करके परम्परागत उत्पादन पद्धति नर्सरी उगाकर रोपाई करने की तुलना में सन्तोषजनक पैदावार प्राप्त की जा सकती है। धान की सीधी बुवाई में प्राकृतिक संसाधनों की आवश्यकता रोपाई वाले धान की तुलना में कम होती है। धान की सीधी बुवाई में लगभग 29 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत होती है। इस पद्धति में कम जुताई विधि से 42 प्रतिशत ओर शून्य जुताई विधि से 86 प्रतिशत डीजल की बचाया जा सकता है। कम जुताई और जुताई विधि की धान की सीधी बुवाई द्वारा 24-30 प्रतिशत मानव श्रम की बचत की जा सकती है और श्रमिकों की कमी के कारण धन की रोपाई में विलम्ब होने से पैदावार की हानि से बचा जा सकता है। उपरोक्त लाभों के अतिरिक्त धान की साधी बुवाई विधि से सिंचाई में 30 प्रतिशत बिजली के खर्च में बचत होती हैं। धान की सीधी बुवाई ढैंचा के साथ फसलोत्पादन करने पर जल की बचत तो अधिक होती है, किन्तु खरपतवारों का नियंत्रण कठिन होता है। शून्य जुताई मशीन से धान की सीधी बुवाई द्वारा कम जुताई एवं बिना जुताई किये गेहूँ के अवशेषों को मिट्टी में मिलाकर या सतह पर पलवार के रूप में प्रयोग करके धान की खेती करने से अच्छी उपज प्राप्त होती है। धान की सीधी बुवाई तकनीक के प्रमुख लाभ निम्नलिखित है-

- ✓ सीधी बुवाई से 25 से 30 प्रतिशत पानी की बचत होती है, क्योंकि इस विधि से धान की बुवाई करने पर खेत मे लगातार पानी भरने की आवश्यकता नही होती है।
- ✓ इस विधि से श्रम एवं समय की बचत होती है, क्योंकि इस विधि मे रोपाई करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।
- ✓ धान की नर्सरी उगाने और रोपाई का खर्च बच जाता है।
- ✓ इस तकनीक से रोपाई की तुलना मे ऊर्जा व ईधन की बचत होती है।
- ✓ सीधी बुवाई से किसान मशीन मे खाद व बीज डालकर आसानी से बुआई कर सकता है।
- ✓ रोपाई विधि की तुलना में सीधी बुवाई विधि से धान की खेती करने मे बीज की मात्रा कम लगती है।
- ✓ इस विधि से धान की बुवाई सीधे खेत में की जाती है तथा इससे समय, श्रम, संसाधन एवं लागत की बचत होती है।

चित्र: जीरो टिल ड्रिल एवं हैप्पी-टर्बो सीडर द्वारा धान की बुआई

ISSN: 3049-2211

जीरो टिल ड्रिल मशीन से धान की बुवाई

जीरो टिलेज तकनीक की माध्यम से खेती की लागत को कम करने, फसलों की बुवाई समय पर करने तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान है। संरक्षित खेती में फसल अवशेषों का अधिंकाश भाग मृदा सतह पर छोड़ दिया जाता है, जिससे न केवल फसल उत्पादकता में वृद्वि होती है बल्कि पर्यावरण में सुधार एंव भूमि की उर्वरा शक्ति में सुधार होता है। जिससे अच्छी नमी में बुवाई की गयी फसलों का जमाव उचित होता है। साथ-साथ सिंचाई में कम पानी की आवश्यकता होती है। जीरो ट्रिल कम फर्टि ड्रिल मशीन से धान की बुवाई बिना जुताई के की जाती है। जीरो टिल ड्रिल की प्रमुख निम्न विषेशेताएं है, जीरो टिल ड्रिल के प्रयोग से 75 से 85 प्रतिशत ईंधन, ऊर्जा एवं समय की बचत होती है और खरपतवार का कम जमाव होता है। इस मशीन द्वारा 1 हेक्टेयर प्रति घंटा बुआई की जा सकती है। इस मशीन द्वारा खेत तैयार करने की लागत में 2500 से 3000 रु. प्रति हेक्टेयर की दर से बचत होती है। परम्परागत विधि की तुलना में शून्य जुताई विधि से करीब रु. 5000-6000 तक शुद्व लाभ प्राप्त होता है।

रोपाई का समय एवं विधि

पौध जब 21-25 दिनों की हो जाये तो वह रोपाई योग्य हो जाती है खेत में रोपाई पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20 सें.मी. तथा पौध से पौध की दूरी 10 सें.मी. रखते हुए करनी चाहिए। रोपाई के समय भूमि को अच्छी प्रकार से पड़ल करके खेत में 3 से 4 सें.मी. तक पानी भरा रहना चाहिए।

पृथक्करण दूरी

धान एक स्वयं परागित फसल है। बीज खेत की दूसरे खेत से दूरी 3 मीटर रखनी चाहिए।

प्रक्षेत्र निरीक्षण

प्रक्षेत्र निरीक्षण खड़ी फसल में किया जाता है। धान की प्रजातियों के बीज उत्पादन में न्यूनतम दो निरीक्षण किये जाते हैं। पहला पुष्पन के समय एवं दूसरा कटाई से पहले। प्रक्षेत्र निरीक्षण का मुख्य बिन्दु उन कारकों की जाँच करना है, जिनमें बीज फसल की आनुवंशिक शुद्धता या बीज फसल का स्वास्थ्य प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो सकता है। प्रक्षेत्र निरीक्षण इस बात की जाँच भी करता है कि बीज निर्धारित प्रजाति का ही उत्पादित किया जा रहा है तथा इसकी आनुवंशिक शुद्धता निर्धारित मानकों के अनुरूप है।

प्रक्षेत्र मानक

प्रक्षेत्र मानक दो प्रकार के होते हैं, जैसे; (1) सामान्य आवश्यकताएं-पृथक्करण दूरी (2) विशेष आवश्यकताएं: आफ टाईप (भिन्न) पौधें तथा आपत्तिजनक खरपतवार के पौधों के न्यूनतम मानक। यह प्रक्षेत्र मानक बीज उत्पादन में यांत्रिक मिश्रण से बचाव एवं आनुवंशिक अशुद्धता होने की संभावना को न्यूनतम करते हैं।

सारणी: प्रक्षेत्र मानक

1. सामान्य आवश्यकताएं पृथक्करण दूरी	**निम्नतम पृथक्करण दूरी मी. में**	
	आधार बीज	**प्रमाणित बीज**
अन्य प्रजातियों के खेत	3	3
सामान्य प्रजाति के खेत जिसकी प्रजातिय शुद्धता की आवश्यकतायें पूर्ण नहीं हैं	3	3
2. विशेष आवश्यकताएं	**अधिकतम आफ टाइप प्रतिशत**	
	आधार बीज	**प्रमाणित बीज**
भिन्न पौधे	0.05	0.20
आपत्तिजनक खरपतवार के पौधे	0.01	0.02

सारणी: बीज मानक: धान के बीज उत्पादन में कटाई, गहाई एवं संसाधन के पश्चात इन बीजों का न्यूनतम बीज मानकों के आधार पर परीक्षण भी किया जाता है। धान का गुणवत्ता युक्त बीज में मानक निम्नलिखित होने चाहिए-

कारक	**आधार बीज**	**प्रमाणित बीज**
शुद्ध बीज (न्यूनतम)	98 प्रतिशत	98 प्रतिशत
अक्रिय पदार्थ (अधिकतम)	2 प्रतिशत	2 प्रतिशत
बिना तुष के बीज	2 प्रतिशत	2 प्रतिशत
अन्य फसलों के बीज (अधिकतम)	10/कि.ग्रा.	20 / कि.ग्रा.
खरपतवारों के कुल बीज (अधिकतम)	10/ कि.ग्रा.	20 / कि.ग्रा.
आपतिजनक खरपतवारों के बीज (अधिकतम)	10 / कि.ग्रा.	5 /कि.ग्रा.
धान बंट से ग्रसित बीज (संख्या में)	0.10	0.5
अंकुरण क्षमता (न्यूनतम)	80 प्रतिशत	80 प्रतिशत
नमी (अधिकतम)	13 प्रतिशत	13 प्रतिशत
पोलीथीन में पैक करते समय नमी (अधिकतम)	8 प्रतिशत	8 प्रतिशत

जल प्रबंधन

धान रोपाई के आरंभिक दिनों में सिंचाई करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त धान की सभी क्रांतिक अवस्थाओं जैसे; कल्ले फूटना, फूल आना तथा बालियों में दाना बनना के समय सिंचाई करना आवश्यक है। पौध लगाने के 8 से 10 दिनां◌ तक पानी खेत में रहना

ISSN: 3049-2211

चाहिए। रोपाई के 10 दिनों बाद कुछ समय के लिए खेत से पानी निकान देना चाहिए जिससे जड़े अच्छी प्रकार विकसित हो जायें। उच्च भूमियों में पानी की उपलब्धता कम होने के कारण भूमि को नम करके रखा जा सकता है। फसल की कटाई से 10 दिन पहले खेत से पानी निकाल देना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

बुवाई या रोपाई के 15 दिन पहले गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद टन प्रति हेक्टेयर की दर से अच्छी प्रकार मिट्टी में मिला देनी चाहिए। यदि हरी खाद हेतु ढैंचा या अन्य खाद वाली फसल लगायी जाती है तो उसे भूमि तैयार करते समय अच्छी प्रकार मिट्टी में मिला देना चाहिए तथा फिर कम्पोस्ट या गोबर की खाद देने की आवश्यकता नहीं होती है। बुवाई या रोपाई के समय (कि.ग्रा./है.) साधारण एवं बासमती धान में यूरिया 40, डीएपी 130, म्यूरेट आफ पोटाश 67, जिंक सल्फेट 25, संकर धान में यूरिया 60, डीएपी 130, म्यूरेट आफ पोटाश, जिंक सल्फेट 25, बुवाई या रोपाई के 25 से 30 दिन बाद (कि.ग्रा./है.)। साधारण एवं बासमती धान में यूरिया 87, संकर धान में 110 कि.ग्रा. बुवाई या रोपाई के 55 से 60 दिन बाद (कि.ग्रा.)।

खरपतवार नियंत्रण

खरपतवार की रोकथाम के लिए खेत में जल भरा रखना उपयुक्त रहता है। कोनोवीडर का प्रयोग भी उपयुक्त है।

धान के प्रमुख खरपतवार

खरपतवार के प्रकार	खरपतवार के नाम
चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार	केना, अमेरिकन घास, भ्रगराज, पत्थर चट्टा, हुरहुर, सफेद मुर्ग, लहसुआ।
संकरी पत्ती वाले खरपतवार	बड़ी साई, छोटी साई, मुटमुर, मकड़ा, जंगली मड़ुआ, सियुर, चाइनीज घास, दूब, बसवट।
मोथा कुल के खरपतवार	मोथा, गलमोथा, जलमोथा।

धान की सीधी बुवाई में खरपतवार प्रबंधन

धान की बुवाई से पूर्व खरपतवारों का प्रबंधन करना अति आवश्यक है। खरपतवारों को नष्ट करने के लिए खरपतवारनाशी दवाओं का प्रयोग किया जाता है। खरपतवारों को नष्ट करने के लिए पैराक्वाट 500 ग्राम या ग्लाईफोसेट 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हे. को 500-600 ली. पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए तथा 2-3 दिन के बाद मशीन से बुआई कर देनी चाहिए। धान की बुवाई के बाद खरपतवार काफी ज्यादा उगते हैं। इनके रोकथाम के लिए धान की बुवाई के बाद पेन्डीमिथेलिन 1.00 किल`गा्रम सक्रिय तत्व की दर से 500-600 ली. पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। छिड़काव करते समय मिट्टी में पर्याप्त मात्रा में नमी रहनी चाहिए तथा समान रूप से छिड़काव सारे खेत में करनी चाहिए। ये खरपतवारनाशी खरपतवारों के अंकुरित होते ही मार देती है। बाद में चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार या अन्य जैसे मोथा घास के नियंत्रण के लिए आलमिक्स मात्रा 4.00 ग्राम सक्रिय तत्व को 500-600 ली. पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से काफी लाभ मिलाता है।

सारणी 2. रसायनों द्वारा रोपाई किए गए धान तथा सीधी बुवाई धान में खरपतवार नियंत्रण

शाकनाशी	सक्रीय मात्रा प्रति हेक्टेयर	प्रयोग करने का समय एवं विधि	खरपतवार
ब्यूटाक्लोर 50 ई.सी.(मचैटी, डेलक्लोर)	1 से 1.5 लीटर	रोपाई के 2 से 3 दिन बाद तक 400 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति है. में स्प्रे करें।	सावाघास, मोथा, फिंगरूस
पेंडीमेथालिन 30 ई.सी. (स्टाम्प)	1 लीटर	उपरोक्त	जंगली धान, सांवक, मोथा, नागरमोथा
आक्सीडायरजिल 80 डब्ल्यूपी (टाफ स्टार)	100 ग्राम	उपरोक्त	जंगली धान, सांवक, मोथा, नागरमोथा
प्रेटिलाक्लोर 50 ई.सी. (रिफिट, इरेज)	750 मि.ली.	उपरोक्त	जंगली धान, सांवक, मोथा, नागरमोथा
बिसपाइरीबैक सोडियम 10 प्रतिशत एसपी (नोमिनी गोल्ड, अडोरा)	20 से 25 ग्रा.	रोपाई के 20 से 25 दिन के बाद 400 से 450 ली. पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर में स्प्रे करें।	जंगली धान, छोटा सांवक, बीज वाला मोथा, वाटर फलावर
हेलोसल्फयूरान 75 डब्ल्यू जी (परमिट)	70 ग्रा.	बुवाई के 1 से 15 दिन बाद 400 ली. पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर में स्प्रे करें।	इंडियन गूजघास, मोथा, वाटर फलावर,
2, 4-डी ईस्टर	500 ग्रा.	रोपाई के 20 से	फाल्स डेजी

ISSN: 3049-2211

38 ई.सर		25 दिन के बाद 400 से 450 ली. पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर में स्प्रे करें।	भंगरा, पटसाग, धन पापड़
2, 4-डी सोडियम साल्ट 80 प्रतिशत	500 ग्रा.	रोपाई के 20 से 25 दिन के बाद 400 से 450 ली. पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर में स्प्रे करें।	फाल्स डेजी भंगरा, पटसाग, धन पापड़

अवांछित पौधों को निकालना (रोगिंग)

धान बीजोत्पादन में ऊँचाई, कल्ले, पत्ती, तुष एवं पराग लक्षणों के आधार पर 2 से 3 बार अवांछनीय पौधों को निकाल दें। भिन्न-भिन्न तथा रोगग्रस्त पौधों को पूर्व पुष्पन तथा पुष्पन के समय दो बार नर तथा मादा जनक की पंक्तियों से निकाल देना चाहिए।

कीट नियंत्रण:

1. तना छेदक: इस कीट की सूण्डी तने में घुसकर उसको अन्दर से जाती है, जिसके कारण केन्द्रीय पत्ती चक्र भूरे रंग में बदल जाता है तथा बाली भी सूख जाती है। इस कीट की रोकथाम के लिए नाइट्रोजन का संतुलित मात्रा में प्रयोग करना चाहिए। मैलाथियान की 50 ई.सी. की 1.0 मिली. या क्यूनालफोस की 0.50 मि.ली.या क्लोरोपाइरिफोस 20 ई.सी. मात्रा प्रति लिटर पानी में घोल बनाकर स्प्रे करना चाहिए।

2. गन्धी बग सून्डी: यह कीट दानों की दूधिया अवस्था में तथा पत्तीयों के रस चूस कर फसल को नुकसान पहुँचाता है एवं यह खेत में दुर्गन्ध फैलाता है। इसके प्रकोप से फसल को बचाने के लिए रोगोर या मैलाथियोन 1.50 मि.ली. या एसीफेट की 2 ग्राम मात्रा प्रति लिटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

3. धान का हिप्सा: इस कीट के लार्वे व प्रौढ़ ही पौधों को ग्रस्त करते हैं। लार्वे पत्तियों के अंदर जा कर सफेद धारियाँ बनाते हैं। पत्ते सूख कर गिर जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए क्लोरोपाइरीफोस 20 ई.सी. की 2.5 मि.ली. मात्रा को प्रति हेक्टेयर पानी में घोन बनाकर स्प्रे करें या नीमजाल की 0.03 प्रतिशत या ईकोनीम की 0.05 प्रतिशत का उपयोग भी किया जा सकता है।

4. धान की पत्ती लपेटक कीट: इस कीट की सूण्डी पत्ती के हरे पदार्थ को खा जाती है तथा पत्ती सिकुड़ कर भूरे रंग की होकर मुड जाती है। क्लोरोपाइरिफोस 20 ई.सी. की 2.5 मि.ली. मात्रा को प्रति लिटर पानी में घोल बनाकर स्प्रे करना चाहिए या एसीफेट की 2 ग्राम मात्रा प्रति लिटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

5. पौध फुदका: इसकी रोकथाम हेतु नाइट्रोजन की संतुलित मात्रा को प्रयोग करें तथा खेत में इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल की 0.50 मि.ली. या क्लोरोपाइरिफोस 20 ई.सी. मात्रा को प्रति लिटर पानी में घोल बनाकर स्प्रे करना चाहिए

6. सैनिक कीट: इसकी रोकथाम हेतु क्लोरोपाइरिफोस 20 ई.सी. की 2.5 मि.ली. या इन्डोक्साकार्व 14.5 एससी की 0.50 मि.ली. मात्रा को प्रति लिटर पानी में घोल बनाकर स्प्रे करना चाहिए

धान की बीमारियाँ

1. तना गलन: इसकी रोकथाम के लिए रोगरोधी किस्मों का प्रकोप करना चाहिए, नाइट्रोजन की संतुलित मात्रा में प्रयोग करना चाहिए तथा खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए तथा कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू पी की एक ग्राम मात्रा को प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर स्प्रे करें।

2. पत्ती झुलसा रोग: फसल काल के दौरान जब रात्रि का तापमान 20 से 22 व आर्द्रता 95 प्रतिशत से अधिक होती है तक इसे रोग का तीव्र प्रकोप होने की संभावना होती है। प्रारंभिक अवस्था में निचली पत्तीयों पर हल्के बैंगनी रंग के छोटे-छोटे धब्बे बनते हैं, जो धीरे-धीरे बढ़कर आँख के समान बीच में चैड़े व किनारे पर संकरे हो जाते हैं। इन धब्बों के बीच एक रंग हल्के भूरे रंग का होता है। इस बीमारी के नियंत्रण हेतु कार्बेन्डाजिम 0.1 ग्रा./1ली. या ट्राईसाइक्लाजोल 75 डब्ल्यू पी की 2 ग्राम या कारप्रोपामीड 30 ई.सी. की 1 मि.ली./1 ली. पानी में घोल बनाकर स्प्रे करें।

3. बैक्टीरियल लीफ ब्लाइट: इसकी रोकथाम के लिए स्ट्रोप्टोसाइक्लीन 250 मिली ग्राम प्रति लीटर पानी में मिला कर स्प्रे करें।

4. टुन्ग्रो बीमारी: इसकी रोकथाम के लिए फोरेट (10 जी) की 12 से 15 कि.ग्रा. या फीप्रोनील (0.4 जी) की 25 कि.ग्रा. मात्रा प्रति लीटर की दर से नर्सरी में स्प्रे करें। फसल में कार्बारिल (50 डब्ल्यू पी) की 0.65 लीटर मात्रा को प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से स्प्रे करें।

5. खैरा रोग: यह रोग जस्ते की कमी के कारण होता है। इसमें पत्तीयों पर हल्के रंग के धब्बे बनते हैं, जो बाद में कत्थई रंग के हो जाते हैं। प्रभावित पौधों की जड़े भी कत्थई रंग की हो जाती है, इसकी रोकथाम के लिए फसल पर 5 कि.ग्रा जिंक सल्फेट 2.5 कि.ग्रा. बुझे चूने के साथ 100 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

ISSN: 3049-2211

कटाई एवं मड़ाई

धान की बालियाँ जब 85 से 90 प्रतिशत तक पक जाए तथा दानों में 18 से 20 प्रतिशत तक नमी रहे एवं बालियों का रंग पीला पड़ जाए तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। फसल के अधिक पकने पर दानों के झड़ने का भय रहता है। कटाई के बाद फसल को अच्छी प्रकार सुखाकर दाने को अलग कर लेना चाहिए।

ऊपरी (ऊँची) भूमि में धान की खेती

ऊँची भूमि से अभिप्राय यह है कि जहाँ पानी जमा करने में अथवा भरने में कठिनाई हो। यह खेती उन क्षेत्रों में की जाती है, जहाँ औसत वार्षिक वर्षा 80 से 100 मि.मी. होती है तथा किसानों के पास सिंचाई की कोई सुविधा नहीं होती है। ऊँची भूमि की खेती में अक्सर छिड़काव विधि से धान बोते हैं एवं कम अवधि की किस्में उगाते हैं। ऊपरी (ऊँची) भूमि में धान की उपयुक्त किस्में है जैसे; साकेत-4, गोविन्द, बाला, कावेरी, पूसा-2,21, नगीना-22, रतना, आर. आर.-5, 664, बागड। ऊपरी (ऊँची) भूमि में धान की बीज दर 100 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर रखते हैं तथा 50 से 60 कि.ग्रा. नत्रजन, 30-40 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 20-30 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है।

कटाई

जब दाने कड़े व पीले हो जायें और नमी 25 प्रतिशत से कम हो जाये तो फसल की कटाई करनी चाहिए।

उपज: 50 से 60 क्विंटल प्रति हेक्टेयर।

सारांश

धान सबसे अधिक उपयोग किया जाना वाला अन्न है। जिसकी आधुनिक वैज्ञानिक उत्पादन तकनीकियों जैसे, प्रजाति का चयन, बुवाई व रोपाई विधि, सिंचाई, उर्वरक एवं फसल सुरक्षा को अपनाया जायें, तो निश्चित ही प्रति इकाई क्षेत्र की उत्पादकता बढ़ेगी।

नीमास्त्र: प्राकृतिक कीट प्रबंधन की एक प्रभावी जैविक तकनीक

[1]**अबरार अहमद खान-** बी.एससी. (ऑनर्स) कृषि, कृषि संकाय, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, डोंगरिया, बालाघाट (म.प्र.)
[2]**माजिद खान-** शोध छात्र, एम.एस.सी. बागवानी (सब्जी विज्ञान) सरदार पटेल विश्वविद्यालय, डोंगरिया, बालाघाट
[3]**डॉ. मोहम्मद वामिक -** सहायक प्राध्यापक, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, डोंगरिया, बालाघाट
[4]**श्री अवधेश सिंह चैधरी-** विभागाध्यक्ष, कृषि संकाय, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बालाघाट

आज के समय में कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार के रासायनिक कीटनाशकों का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। यद्यपि इनसे फसलों को कीटों से त्वरित सुरक्षा मिलती है, लेकिन इनके लगातार और असंतुलित उपयोग से मिट्टी की गुणवत्ता, पर्यावरण तथा मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसके अलावा लाभकारी कीटों और सूक्ष्मजीवों पर भी इनका नकारात्मक असर देखा गया है। इसलिए वर्तमान समय में ऐसी प्राकृतिक एवं सुरक्षित तकनीकों की आवश्यकता महसूस की जा रही है, जो फसलों की प्रभावी सुरक्षा के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण में भी सहायक हों इसी दिशा में नीमास्त्र एक सरल, किफायती एवं प्रभावी जैविक कीटनाशक के रूप में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसे मुख्य रूप से नीम की पत्तियों, देशी गाय के गोमूत्र, ताजे गोबर तथा पानी की सहायता से तैयार किया जाता है। नीम में प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले सक्रिय तत्व अनेक प्रकार के हानिकारक कीटों की वृद्धि एवं प्रजनन को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं। इसका उपयोग विशेष रूप से चूसक कीटों तथा पत्तियाँ खाने वाले कीटों के प्रबंधन के लिए किया जाता है।

नीमास्त्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसे किसान अपने खेत पर उपलब्ध संसाधनों से बहुत कम लागत में स्वयं तैयार कर सकते हैं। इसके नियमित उपयोग से रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता कम होती है, उत्पादन लागत में कमी आती है तथा मिट्टी की उर्वरता, पर्यावरण और जैव विविधता का संरक्षण भी होता है। यही कारण है कि प्राकृतिक खेती एवं जैविक कृषि प्रणाली में नीमास्त्र का उपयोग निरंतर बढ़ रहा है और इसे टिकाऊ कृषि के लिए एक उपयोगी विकल्प माना जाता है।

नीमास्त्र बनाने के लिए आवश्यक सामग्री

नीमास्त्र तैयार करने के लिए ऐसी सामग्रियों का उपयोग किया जाता है जो अधिकांश किसानों को अपने खेत या आसपास आसानी से उपलब्ध हो जाती हैं। इसे बनाने के लिए लगभग 200 लीटर स्वच्छ पानी, 10 किलोग्राम ताजी एवं कुटी हुई नीम की पत्तियाँ, 10 लीटर देशी गाय का गोमूत्र तथा 2 किलोग्राम ताजा देशी गाय का गोबर इन सभी सामग्रियों को मिलाने के लिए लगभग 200 लीटर क्षमता वाले प्लास्टिक के ड्रम का उपयोग किया जाता है। सभी सामग्री प्राकृतिक होने के कारण यह मिश्रण कम लागत में तैयार हो जाता है और जैविक खेती के लिए एक सुरक्षित विकल्प माना जाता है।

नीमास्त्र बनाने की विधि

सबसे पहले 200 लीटर क्षमता वाले प्लास्टिक ड्रम में 200 लीटर स्वच्छ पानी भरें। इसके बाद उसमें 10 किलोग्राम कुटी हुई नीम की पत्तियाँ डालें। फिर 10 लीटर देशी गाय का गोमूत्र तथा 2 किलोग्राम ताजा गोबर मिलाएँ। सभी सामग्री को लकड़ी के डंडे की सहायता से अच्छी तरह मिलाकर एकसमान घोल तैयार करें।

मिश्रण तैयार होने के बाद ड्रम को ढक्कन या सूती कपड़े से ढककर छायादार स्थान पर रखें। अगले 48 घंटे 2 दिन तक इस मिश्रण को रहने दें। इस दौरान सुबह एवं शाम लकड़ी के डंडे से मिश्रण को अच्छी तरह हिलाते रहें, जिससे सभी घटकों का उचित किण्वन हो सके और जैविक सक्रियता बढ़े।

नीमास्त्र तैयार होने का समय

लगभग 48 घंटे बाद नीमास्त्र उपयोग के लिए तैयार हो जाता है। तैयार घोल को सूती कपड़े से अच्छी तरह छान लें, ताकि पत्तियों एवं अन्य ठोस पदार्थों के कण अलग हो जाएँ। इसके बाद इसे फसलों पर छिड़काव के लिए उपयोग किया जा सकता है।

नीमास्त्र का उपयोग

नीमास्त्र का उपयोग फल, सब्जी, दलहनी, तिलहनी एवं अन्य कृषि फसलों में किया जाता है। यह विशेष रूप से माहू , सफेद मक्खी , जासिड, थ्रिप्स तथा पत्तियाँ खाने वाली इल्ली जैसे कीटों के नियंत्रण में लाभकारी है। आवश्यकता अनुसार इसे पानी में मिलाकर फसलों पर समान रूप से छिड़काव किया जाता है। अधिक प्रभाव के लिए प्रातः या सायंकाल के समय छिड़काव करना उपयुक्त माना जाता है।

तैयार नीमास्त्र को छायादार एवं ठंडे स्थान पर बंद पात्र में लगभग 6 माह तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

नीमास्त्र के लाभ

- ✓ यह प्राकृतिक अवयवों से तैयार होने वाला एक सुरक्षित एवं पर्यावरण-अनुकूल जैविक कीटनाशक है।
- ✓ रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता कम करने में सहायक होता है।
- ✓ चूसक कीटों तथा पत्तियाँ खाने वाले कीटों के प्रभावी प्रबंधन में उपयोगी है।
- ✓ मिट्टी की उर्वरता एवं उसमें उपस्थित लाभकारी सूक्ष्मजीवों की सुरक्षा बनाए रखने में मदद करता है।
- ✓ स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों से कम लागत में आसानी से तैयार किया जा सकता है।
- ✓ जैविक एवं प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- ✓ मानव, पशुओं, पक्षियों तथा अन्य लाभकारी जीवों के लिए अपेक्षाकृत सुरक्षित माना जाता है।
- ✓ फसल की गुणवत्ता बनाए रखने के साथ-साथ स्वस्थ उत्पादन प्राप्त करने में सहायक होता है।
- ✓ पर्यावरण प्रदूषण को कम करने तथा कृषि पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण में योगदान देता है।

सावधानियाँ

- ✓ नीमास्त्र तैयार करने के लिए हमेशा ताजी, स्वस्थ एवं रोगमुक्त नीम की पत्तियों का ही उपयोग करें।
- ✓ मिश्रण तैयार करने के लिए धातु के बर्तनों के स्थान पर प्लास्टिक के ड्रम या पात्र का उपयोग करना अधिक उपयुक्त होता है।
- ✓ किण्वन (फर्मेंटेशन) की प्रक्रिया के दौरान मिश्रण को प्रतिदिन सुबह एवं शाम लकड़ी के डंडे से अच्छी तरह हिलाएँ।
- ✓ छिड़काव से पहले घोल को सूती कपड़े से अच्छी तरह छान लें, ताकि स्प्रेयर की नोजल जाम न हो।
- ✓ बेहतर परिणाम के लिए सुबह या शाम के समय ही छिड़काव करें तथा तेज धूप, वर्षा या तेज हवा की स्थिति में छिड़काव करने से बचें।
- ✓ तैयार नीमास्त्र को साफ एवं छायादार स्थान पर बंद पात्र में सुरक्षित रखें।
- ✓ छिड़काव करते समय घोल की उचित मात्रा का ही प्रयोग करें, ताकि फसल पर समान रूप से इसका प्रभाव हो।

निष्कर्ष

नीमास्त्र प्राकृतिक खेती एवं जैविक कृषि की दिशा में एक प्रभावी, सस्ता एवं टिकाऊ विकल्प है। यह स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों से आसानी से तैयार किया जा सकता है तथा फसलों को अनेक हानिकारक कीटों से सुरक्षित रखने में सहायक होता है। इसके नियमित उपयोग से रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता कम होती है, उत्पादन लागत घटती है तथा मिट्टी, पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य की सुरक्षा सुनिश्चित होती है। इसलिए प्रत्येक किसान को टिकाऊ एवं सुरक्षित कृषि प्रणाली अपनाने के लिए नीमास्त्र जैसे जैविक कीटनाशकों का उपयोग करना चाहिए।

♣♣♣

पराली से पर्यावरण-अनुकूल विश्राम कुटी: कृषि अवशेषों के सतत उपयोग का एक नवाचार

Yanu Poonia- Ph.D. Scholar, **Promila K. Chahal-** Assistant Professor
Manisha Lather- Ph.D. Scholar
COCS, CCS HAU Hisar

"क्या खेतों में जलने वाली पराली किसी सुंदर, उपयोगी और पर्यावरण-अनुकूल विश्राम कुटी का रूप ले सकती है?"

पहली नज़र में इस प्रश्न का उत्तर कठिन प्रतीत होता है, परंतु यदि कृषि अवशेषों को समस्या नहीं बल्कि संसाधन के रूप में देखा जाए, तो इसका उत्तर स्पष्ट रूप से **"हाँ"** है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ प्रतिवर्ष धान की कटाई के बाद बड़ी मात्रा में पराली निकलती है। समय की कमी, श्रम की अनुपलब्धता तथा उचित प्रबंधन के अभाव में अधिकांश किसान इसे खेतों में ही जला देते हैं। पराली जलाने से वायु प्रदूषण, ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन, मिट्टी के लाभकारी सूक्ष्मजीवों की हानि तथा मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि प्रत्येक वर्ष पराली जलाने का विषय राष्ट्रीय स्तर पर चिंता का विषय बन जाता है।

किन्तु यदि इसी पराली का वैज्ञानिक एवं रचनात्मक उपयोग किया जाए, तो यह सतत निर्माण (Sustainable Construction), ग्रामीण पर्यटन, पर्यावरण संरक्षण तथा स्थानीय रोजगार के लिए एक मूल्यवान संसाधन सिद्ध हो सकती है। इसी सोच को व्यवहार में उतारने के उद्देश्य से बांस, पराली तथा पुनः उपयोग योग्य सामग्रियों का उपयोग करते हुए एक **पर्यावरण-अनुकूल विश्राम कुटी** का निर्माण किया गया। यह केवल एक संरचना नहीं, बल्कि कृषि अवशेषों के मूल्यवर्धन तथा हरित निर्माण की दिशा में एक व्यवहारिक मॉडल है।

चित्र 1. बांस एवं पराली से निर्मित पर्यावरण-अनुकूल विश्राम कुटी (अंतिम स्वरूप)

पराली: समस्या नहीं, संभावनाओं का भंडार

सामान्यतः पराली को अनुपयोगी कृषि अवशेष मान लिया जाता है, जबकि वास्तव में यह प्राकृतिक, हल्की, कम लागत वाली तथा ऊष्मा रोधी (Thermal Insulation) विशेषताओं वाली सामग्री है। वर्षों से ग्रामीण भारत में पराली का उपयोग छप्पर, पशु आश्रय, चारा भंडारण तथा पारंपरिक आवासों में किया जाता रहा है। आधुनिक संदर्भ में इसका

उपयोग पर्यावरण-अनुकूल संरचनाओं, फार्म स्टे, विश्राम कुटियों, कृषि पर्यटन स्थलों तथा सामुदायिक बैठकों के लिए भी किया जा सकता है। यदि पराली को जलाने के बजाय ऐसे उपयोगों में लाया जाए, तो प्रदूषण कम होगा, संसाधनों का संरक्षण होगा तथा किसानों को अतिरिक्त आर्थिक अवसर भी प्राप्त हो सकते हैं।

विचार से वास्तविकता तक

इस परियोजना का उद्देश्य केवल एक आकर्षक कुटी बनाना नहीं था, बल्कि यह प्रदर्शित करना था कि स्थानीय संसाधनों एवं कृषि अवशेषों का उपयोग करके कम लागत में पर्यावरण-अनुकूल एवं सौंदर्यपूर्ण संरचना तैयार की जा सकती है।

निर्माण स्थल का चयन करते समय यह सुनिश्चित किया गया कि किसी भी वृक्ष को क्षति न पहुँचे। इसके विपरीत, पहले से मौजूद वृक्ष को ही संपूर्ण डिजाइन का अभिन्न भाग बनाया गया। इससे प्राकृतिक छाया भी प्राप्त हुई और संरचना को एक अनूठी पहचान भी मिली। यह निर्णय प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण निर्माण (Nature Integrated Design) का उत्कृष्ट उदाहरण है।

चित्र 2. विश्राम कुटी के निर्माण की चरणबद्ध प्रक्रिया (स्थान चयन से अंतिम संरचना तक)

निर्माण की चरणबद्ध प्रक्रिया

विश्राम कुटी के निर्माण की शुरुआत स्थान चयन एवं भूमि की सफाई से हुई। इसके बाद बांस के मजबूत ढाँचे का निर्माण किया गया। बांस का चयन इसलिए किया गया क्योंकि यह मजबूत, टिकाऊ, शीघ्र नवीकरणीय (Renewable) तथा पर्यावरण-अनुकूल निर्माण सामग्री है।

ढाँचा तैयार होने के बाद धान की पराली को परत-दर-परत व्यवस्थित ढंग से बाँधकर प्राकृतिक छत तैयार की गई। यह छत गर्मी से संरक्षण प्रदान करने के साथ-साथ प्राकृतिक ताप संतुलन बनाए रखने में भी सहायक है।

अंतिम चरण में पुनर्चक्रित तथा प्राकृतिक सजावटी सामग्रियों का उपयोग किया गया। पुराने टायरों को बैठने की व्यवस्था, वृक्ष के पुराने ठूंठ को सेंटर टेबल, प्राकृतिक बेलों को पर्दों तथा गमलों एवं पौधों को सजावट के रूप में उपयोग किया गया। इस प्रकार संपूर्ण संरचना Reduce, Reuse and Recycle की अवधारणा को व्यवहारिक रूप से प्रदर्शित करती है।

इस विश्राम कुटी की प्रमुख विशेषताएँ

- स्थानीय एवं आसानी से उपलब्ध सामग्री का उपयोग
- कम लागत में निर्माण
- पराली का मूल्यवर्धन
- प्राकृतिक ताप नियंत्रण एवं वेंटिलेशन
- पर्यावरण-अनुकूल एवं कम कार्बन उत्सर्जन वाला निर्माण
- पुनर्चक्रण (Recycling) एवं पुनः उपयोग (Reuse) को बढ़ावा
- सौंदर्य एवं उपयोगिता का संतुलित समन्वय
- विद्यार्थियों एवं किसानों के लिए प्रदर्शन मॉडल
- कृषि पर्यटन एवं ग्रामीण नवाचार के लिए उपयुक्त

इस मॉडल में प्रयुक्त प्रमुख सामग्री

सामग्री	उपयोग
बांस	मुख्य ढाँचा
धान की पराली	प्राकृतिक छत
पुराना वृक्ष	डिजाइन का अभिन्न भाग
वृक्ष का ठूंठ	सेंटर टेबल
पुराने टायर	बैठने की व्यवस्था
सजावटी पौधे	प्राकृतिक सौंदर्य
बेलें एवं पत्तियाँ	प्राकृतिक पर्दे

किसानों के लिए नई संभावनाएँ

यदि किसान पराली को जलाने के स्थान पर उसका उपयोग स्थानीय निर्माण कार्यों में करें, तो इससे न केवल प्रदूषण कम होगा बल्कि आय के नए अवसर भी विकसित हो सकते हैं। पराली आधारित संरचनाएँ निम्न स्थानों पर विकसित की जा सकती हैं—

- कृषि पर्यटन (Agri-tourism) केंद्र
- फार्म हाउस
- किचन गार्डन
- नर्सरी
- जैविक खेती प्रदर्शन केंद्र
- ग्राम चौपाल
- विद्यालय
- आंगनवाड़ी
- सामुदायिक विश्राम स्थल

इस प्रकार पराली केवल कृषि अवशेष न रहकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाने वाला संसाधन बन सकती है।

यह मॉडल हमें क्या सिखाता है?

- कृषि अवशेष भी मूल्यवान संसाधन बन सकते हैं।
- स्थानीय सामग्री से कम लागत में आकर्षक निर्माण संभव है।
- पुनर्चक्रण पर्यावरण संरक्षण का प्रभावी माध्यम है।
- प्रकृति को नुकसान पहुँचाए बिना सुंदर एवं उपयोगी संरचनाएँ विकसित की जा सकती हैं।
- सतत विकास केवल सिद्धांत नहीं, बल्कि व्यवहार में अपनाई जाने वाली जीवनशैली है।

भविष्य की दिशा

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, संसाधनों की कमी तथा बढ़ते प्रदूषण को देखते हुए स्थानीय एवं पर्यावरण-अनुकूल निर्माण की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है। यदि कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केंद्र, पंचायतें तथा किसान संगठन मिलकर ऐसे प्रदर्शन मॉडल विकसित करें, तो पराली जलाने की समस्या को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

बांस, पराली तथा अन्य कृषि अवशेषों पर आधारित निर्माण ग्रामीण भारत में हरित अवसंरचना (Green Infrastructure), सर्कुलर इकोनॉमी (Circular Economy) तथा सतत विकास (Sustainable Development) की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

निष्कर्ष

पराली को जलाना समस्या का समाधान नहीं, बल्कि अनेक नई समस्याओं की शुरुआत है। आवश्यकता इस बात की है कि हम कृषि अवशेषों को अपशिष्ट नहीं, बल्कि मूल्यवान संसाधन के रूप में देखें। प्रस्तुत पर्यावरण-अनुकूल विश्राम कुटी इस सोच का एक सफल उदाहरण है, जिसमें बांस, पराली तथा पुनः उपयोग योग्य सामग्रियों के माध्यम से प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए कम लागत में आकर्षक एवं उपयोगी संरचना विकसित की गई।

यह प्रयास केवल एक विश्राम कुटी के निर्माण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह संदेश देता है कि नवाचार, स्थानीय संसाधनों और पर्यावरणीय जिम्मेदारी के समन्वय से कृषि अवशेष भी सतत विकास के सशक्त माध्यम बन सकते हैं।

"जिस दिन हम पराली को कचरा नहीं, बल्कि संसाधन मानने लगेंगे, उसी दिन प्रदूषण की एक बड़ी समस्या का समाधान हमारे हाथों में होगा।"

हरित खाद: मृदा उर्वरता का प्राकृतिक आधार

स्नेहा- सहायक प्राध्यापक-सह-कनिष्ठ वैज्ञानिक, मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, भोला पासवान शास्त्री कृषि महाविद्यालय, पूर्णिया
साक्षी कुमारी- स्नातक छात्रा (यू.जी.), भोला पासवान शास्त्री कृषि महाविद्यालय, पूर्णिया, बिहार
***सोनम राय-** सहायक प्राध्यापक-सह-कनिष्ठ वैज्ञानिक, कृषि प्रसार शिक्षा विभाग, मंडन भारती कृषि महाविद्यालय, अगवानपुर, सहरसा
अल्पना कुसुम- सहायक प्राध्यापक-सह-कनिष्ठ वैज्ञानिक, मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, भोला पासवान शास्त्री कृषि महाविद्यालय, पूर्णिया

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ अधिकांश जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है। कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए मिट्टी की उर्वरता बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है। वर्तमान समय में रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी की गुणवत्ता में कमी, सूक्ष्मजीवों का नाश तथा पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। इन समस्याओं का प्रभावी और प्राकृतिक समाधान हरित खाद है।

हरी खाद की परिभाषा

हरित खाद वह जैविक खाद है जो विशेष रूप से उगाई गई हरी फसलों को फूल आने से पहले खेत में जोतकर मिट्टी में मिलाने से प्राप्त होती है। यह सड़ने के बाद मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ एवं पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ाती है।

"हरी अवस्था में उगाई गई फसल को मिट्टी में पलटकर जो खाद तैयार होती है, उसे हरित खाद कहते हैं।"

हरी खाद का इतिहास

हरित खाद का प्रयोग हजारों वर्षों से किया जाता रहा है। भारत, चीन और मिस्र जैसी प्राचीन सभ्यताओं में किसान मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने के लिए दलहनी फसलों को खेत में दबाते थे।

भारत में पारंपरिक कृषि पद्धतियों में ढैंचा, सनै, मूंग और उड़द जैसी फसलों का उपयोग हरित खाद के रूप में किया जाता था। रासायनिक उर्वरकों के आने के बाद इसका उपयोग कुछ समय तक कम हुआ, लेकिन आज जैविक खेती और प्राकृतिक खेती के बढ़ते महत्व के कारण हरित खाद का उपयोग फिर से तेजी से बढ़ रहा है।

हरी खाद का महत्व

हरित खाद का कृषि में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इसके प्रमुख महत्व निम्नलिखित हैं—

- ✓ मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है।
- ✓ वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है।
- ✓ मिट्टी की संरचना में सुधार होता है।
- ✓ जल धारण क्षमता बढ़ती है।
- ✓ लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ती है।
- ✓ खरपतवारों की वृद्धि कम होती है।
- ✓ मिट्टी का कटाव कम होता है।
- ✓ रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता घटती है।

- ✓ कृषि लागत कम होती है।
- ✓ पर्यावरण संरक्षण में सहायता मिलती है।

हरी खाद की विशेषताएँ

एक अच्छी हरित खाद फसल में निम्नलिखित गुण होने चाहिए—

- तेजी से बढ़ने वाली हो।
- कम समय में अधिक हरा जैविक पदार्थ दे।
- नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता अधिक हो।
- कम लागत में तैयार हो जाए।
- रोग एवं कीटों के प्रति सहनशील हो।
- विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाई जा सके।
- आसानी से सड़कर मिट्टी में मिल जाए।

हरी खाद की आवश्यकता

आज कृषि में हरित खाद की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है क्योंकि—

- ✓ मिट्टी की उर्वरता लगातार घट रही है।
- ✓ रासायनिक उर्वरकों की कीमत बढ़ रही है।
- ✓ जैविक खेती का महत्व बढ़ रहा है।
- ✓ पर्यावरण संरक्षण आवश्यक हो गया है!
- ✓ मिट्टी में जैविक कार्बन की कमी हो रही है।
- ✓ किसानों को कम लागत वाली तकनीकों की आवश्यकता है।

हरी खाद के सिद्धांत

दलहनी हरित खाद फसलों की जड़ों में राइजोबियम (*Rhizobium*) नामक जीवाणु रहते हैं। ये जीवाणु वायुमंडल की नाइट्रोजन को पौधों के उपयोग योग्य रूप में बदलते हैं। जब फसल को मिट्टी में पलट दिया जाता है, तब पौधे सड़कर नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश तथा अन्य पोषक तत्व मिट्टी में छोड़ते हैं।

इस प्रक्रिया से मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है तथा अगली फसल को पर्याप्त पोषण प्राप्त होता है।

हरी खाद का उद्देश्य

हरित खाद का उपयोग निम्नलिखित उद्देश्यों से किया जाता है—

- ✓ मिट्टी की उर्वरता बढ़ाना।
- ✓ जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ाना।
- ✓ नाइट्रोजन की पूर्ति करना।
- ✓ मिट्टी की संरचना सुधारना।
- ✓ फसल उत्पादन बढ़ाना।
- ✓ रासायनिक उर्वरकों का उपयोग कम करना।
- ✓ टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देना।
- ✓ पर्यावरण संरक्षण करना।

हरी खाद की वर्तमान प्रासंगिकता

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, भूमि क्षरण तथा रासायनिक उर्वरकों के दुष्प्रभावों के कारण हरित खाद का महत्व लगातार बढ़ रहा है। सरकार भी प्राकृतिक एवं जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए हरित खाद के उपयोग को प्रोत्साहित कर रही है। यह किसानों की आय बढ़ाने के साथ-साथ मिट्टी के दीर्घकालीन स्वास्थ्य को बनाए रखने का प्रभावी उपाय है।

हरी खाद के प्रकार

हरित खाद को मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा जाता है—

(क) स्व-उत्पादित हरित खाद (In-situ Green Manuring):

इस विधि में हरित खाद की फसल उसी खेत में उगाई जाती है जहाँ मुख्य फसल बोई जानी होती है। लगभग 40–50 दिन बाद, फूल आने से पहले फसल को खेत में जोतकर मिट्टी में मिला दिया जाता है।

उदाहरण - मूंग , ढैंचा , लोबिया, उड़द।

लाभ:-

- ✓ कम लागत
- ✓ अधिक जैविक पदार्थ प्राप्त
- ✓ नाइट्रोजन की अच्छी आपूर्ति
- ✓ मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि!

(ख) बाहरी हरित खाद (Green Leaf Manuring):

इस विधि में पेड़ों या झाड़ियों की हरी पत्तियाँ और टहनियाँ काटकर खेत में लाकर मिट्टी में मिलाई जाती हैं।

उदाहरण:- ग्लिरिसिडिया, नीम, करंज, सुबबूल

लाभ:-

- ✓ जहाँ हरित खाद की फसल उगाना संभव न हो, वहाँ उपयोगी।
- ✓ जैविक पदार्थ की पूर्ति होती है।

हरित खाद की प्रमुख फसलें

(1) ढैंचा (*Sesbania aculeata*)

- ♣ भारत में सबसे अधिक उपयोग की जाने वाली हरित खाद फसल।
- ♣ 45–50 दिनों में तैयार हो जाती है।
- ♣ अधिक नाइट्रोजन स्थिर करती है।

- धान की खेती के लिए अत्यंत उपयुक्त।

(2) सनै (Sunhemp)

- तेजी से बढ़ने वाली दलहनी फसल।
- कम समय में अधिक हरा जैविक पदार्थ देती है।
- सभी प्रकार की मिट्टी में उगाई जा सकती है।

(3) मूंग (Green Gram)

- नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायक।
- मिट्टी की उर्वरता बढ़ाती है।
- कम अवधि की फसल।

(4) लोबिया (Cowpea)

- सूखा सहन करने वाली फसल।
- कम वर्षा वाले क्षेत्रों में उपयोगी।
- अधिक जैविक पदार्थ प्रदान करती है।

(5) उड़द (Black Gram)

- दलहनी फसल।
- मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाती है।
- जैविक खेती में उपयोगी।

(6) बरसीम (Berseem)

- कुछ क्षेत्रों में इसे भी हरित खाद के रूप में उपयोग किया जाता है।
- खेत की अच्छी तरह जुताई करें।
- मिट्टी को भुरभुरी बनाएं।

हरी खाद उगाने की प्रक्रिया

- आवश्यकतानुसार पाटा लगाएँ।
- बीज की बुवाई
- वर्षा प्रारंभ होने पर या सिंचाई के बाद बुवाई करें।
- बीजों को समान रूप से खेत में बिखेरें या कतारों में बोएँ।

सिंचाई

- आवश्यकता अनुसार सिंचाई करें।
- जलभराव से बचें।
- खरपतवार नियंत्रण
- प्रारंभिक अवस्था में खरपतवार हटाएँ।
- स्वस्थ वृद्धि सुनिश्चित करें।

खेत में पलटने (Incorporation) की विधि

- फसल को 45–50 दिन की अवस्था में या फूल आने से पहले मिट्टी में पलट देना चाहिए।
- ट्रैक्टर, हल या रोटावेटर की सहायता से फसल को मिट्टी में मिला दें।
- इसके बाद हल्की सिंचाई करें ताकि सड़न की प्रक्रिया तेज हो।
- लगभग 15–20 दिनों में फसल सड़कर खाद में बदल जाती है।
- इसके बाद मुख्य फसल की बुवाई की जाती है।
- हरित खाद के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ
- पर्याप्त नमी वाली मिट्टी।
- सामान्य तापमान (25–35°C) ।
- अच्छी जल निकासी।
- वर्षा ऋतु हरित खाद उगाने के लिए सबसे उपयुक्त मानी जाती है।

हरित खाद के लिए आवश्यक सावधानियाँ

- स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग करें।
- समय पर बुवाई करें।
- फूल आने से पहले फसल को पलट दें।
- पलटने के बाद पर्याप्त नमी बनाए रखें।
- सड़ने के लिए कम से कम 15–20 दिन का समय दें।
- बहुत अधिक परिपक्व फसल को हरित खाद के रूप में उपयोग न करें।
- खेत में जलभराव न होने दें।

हरित खाद में प्रयुक्त प्रमुख वृक्ष

ग्लिरिसिडिया, करंज, नीम, सुबबूल, अगाथी

इनकी हरी पत्तियाँ काटकर खेत में मिलाई जाती हैं, जिससे मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ और पोषक तत्वों की वृद्धि होती है।

हरित खाद के सड़ने पर मिट्टी को निम्नलिखित पोषक तत्व प्राप्त होते हैं—

इट्रोजन (N), फॉस्फोरस (P), पोटाश (K), कैल्शियम (Ca), मैग्नीशियम (Mg), सल्फर (S), सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे जिंक, आयरन, मैंगनीज आदि।

इस प्रकार हरित खाद मिट्टी को संतुलित पोषण प्रदान करती है और अगली फसल की वृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान देती है। मिट्टी, फसल तथा पर्यावरण तीनों को लाभ होता है।

इसके प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं—

(1) मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि:- हरित खाद सड़ने के बाद मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ (Organic Matter) की मात्रा बढ़ाती है, जिससे मिट्टी अधिक उपजाऊ बनती है।

(2) नाइट्रोजन की पूर्ति:- दलहनी हरित खाद फसलों की जड़ों में उपस्थित राइजोबियम जीवाणु वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं। इससे अगली फसल को पर्याप्त नाइट्रोजन मिलती है।

(3) मिट्टी की संरचना में सुधार:- हरित खाद मिट्टी को भुरभुरी बनाती है, जिससे जड़ों का विकास बेहतर होता है और हवा का संचार बढ़ता है।

(4) जल धारण क्षमता बढ़ाती है:- कार्बनिक पदार्थ बढ़ने से मिट्टी अधिक समय तक पानी को रोककर रखती है, जिससे सिंचाई की आवश्यकता कम होती है।

(5) लाभकारी सूक्ष्मजीवों की वृद्धि:- हरित खाद मिट्टी में जीवाणु, कवक तथा अन्य लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाती है।

(6) खरपतवार नियंत्रण:- घनी हरित खाद फसलें खरपतवारों की वृद्धि को कम करती हैं।

(7) मृदा अपरदन (Soil Erosion) में कमी:- हरित आवरण होने के कारण वर्षा और हवा से मिट्टी का कटाव कम होता है।

(8) रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम :- हरित खाद के प्रयोग से रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है, जिससे कृषि लागत घटती है।

(9) उत्पादन में वृद्धि:- स्वस्थ मिट्टी के कारण फसल की वृद्धि अच्छी होती है और उत्पादन बढ़ता है।

(10) पर्यावरण संरक्षण:- हरित खाद प्राकृतिक एवं प्रदूषण रहित कृषि को बढ़ावा देती है तथा पर्यावरण को सुरक्षित रखने में सहायता करती है।

हरित खाद की हानियाँ

हरित खाद के अनेक लाभ हैं, फिर भी कुछ सीमाएँ भी हैं—

- ✓ हरित खाद उगाने के लिए अतिरिक्त समय चाहिए।
- ✓ कुछ समय तक खेत मुख्य फसल के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता।
- ✓ सिंचाई की आवश्यकता हो सकती है।
- ✓ बीज एवं श्रम पर अतिरिक्त खर्च आता है।
- ✓ शुष्क क्षेत्रों में हरित खाद उगाना कठिन हो सकता है।
- ✓ समय पर खेत में न पलटने पर लाभ कम हो जाता।

हरित खाद मिट्टी की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक विशेषताओं में सुधार करती है।

(क) भौतिक प्रभाव:

- मिट्टी भुरभुरी बनती है।
- जल धारण क्षमता बढ़ती है।
- मिट्टी का घनत्व कम होता है।
- जड़ों का विकास अच्छा होता है।

(ख) रासायनिक प्रभाव

- नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ती है।
- फॉस्फोरस एवं पोटाश की उपलब्धता बढ़ती है।
- सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता में सुधार होता है।
- मिट्टी की उर्वरता लंबे समय तक बनी रहती है।

(ग) जैविक प्रभाव

- लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ती है।
- केंचुओं की गतिविधि बढ़ती है।
- जैविक कार्बन में वृद्धि होती है।

पर्यावरण संरक्षण में हरित खाद की भूमिका

(1) मृदा स्वास्थ्य एवं उर्वरता में सुधार: हरित खाद मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ाती है, जिससे मिट्टी की संरचना, उर्वरता एवं जल धारण क्षमता में सुधार होता है। इसके प्रयोग से रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम होती है और पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा मिलता है।

(2) नाइट्रोजन की पूर्ति: दलहनी हरित खाद फसलों की जड़ों में उपस्थित राइजोबियम जीवाणु वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं। इससे अगली फसल को पर्याप्त नाइट्रोजन मिलती है।

(3) मिट्टी की संरचना में सुधार: हरित खाद मिट्टी को भुरभुरी बनाती है, जिससे जड़ों का विकास बेहतर होता है और हवा का संचार बढ़ता है।

(4) जल धारण क्षमता बढ़ाती है: कार्बनिक पदार्थ बढ़ने से मिट्टी अधिक समय तक पानी को रोककर रखती है, जिससे सिंचाई की आवश्यकता कम होती है।

(5) लाभकारी सूक्ष्मजीवों की वृद्धि: हरित खाद मिट्टी में जीवाणु, कवक तथा अन्य लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाती है।

(6) खरपतवार नियंत्रण: घनी हरित खाद फसलें खरपतवारों की वृद्धि को कम करती हैं।

(7) मृदा अपरदन में कमी: हरित आवरण होने के कारण वर्षा और हवा से मिट्टी का कटाव कम होता है।

ISSN: 3049-2211

(8) रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम: हरित खाद के प्रयोग से रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है, जिससे कृषि लागत घटती है।

(9) उत्पादन में वृद्धि: स्वस्थ मिट्टी के कारण फसल की वृद्धि अच्छी होती है और उत्पादन बढ़ता है।

(10) पर्यावरण संरक्षण: हरित खाद प्राकृतिक एवं प्रदूषण रहित कृषि को बढ़ावा देती है तथा पर्यावरण को सुरक्षित रखने में सहायता करती है।

आज के समय में पर्यावरण संरक्षण अत्यंत आवश्यक है। हरित खाद एक पर्यावरण अनुकूल कृषि पद्धति है, जो मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ाकर मृदा स्वास्थ्य में सुधार करती है तथा रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग को कम करके पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

- ✓ मिट्टी एवं जल प्रदूषण घटाती है।
- ✓ कार्बन का संचय बढ़ाने में सहायता करती है।
- ✓ जैव विविधता को बढ़ावा देती है।
- ✓ मिट्टी के स्वास्थ्य को लंबे समय तक सुरक्षित रखती है।
- ✓ टिकाऊ कृषि को प्रोत्साहित करती है।

जैविक खेती में हरित खाद का महत्व

- जैविक खेती में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग नहीं किया जाता। इसलिए हरित खाद एक महत्वपूर्ण पोषक स्रोत है।
- मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरता बनाए रखती है।
- जैविक कार्बन बढ़ाती है।
- सूक्ष्मजीवों की सक्रियता बढ़ाती है।
- सुरक्षित एवं गुणवत्तापूर्ण खाद्य उत्पादन में सहायक है।
- किसानों की लागत कम करती है।

हरित खाद और टिकाऊ कृषि

टिकाऊ कृषि का उद्देश्य वर्तमान के साथ भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी भूमि को उपजाऊ बनाए रखना है। हरित खाद इस उद्देश्य को पूरा करने में अत्यंत उपयोगी है क्योंकि यह प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करती है तथा मिट्टी की गुणवत्ता को लंबे समय तक बनाए रखती है।

निष्कर्ष

हरित खाद केवल एक जैविक खाद नहीं, बल्कि मृदा स्वास्थ्य सुधारने का एक प्रभावी एवं प्राकृतिक उपाय है। इसके नियमित उपयोग से मिट्टी की उर्वरता, जल धारण क्षमता, सूक्ष्मजीवों की संख्या तथा फसल उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। इसलिए आधुनिक एवं टिकाऊ कृषि में हरित खाद का महत्व निरंतर बढ़ रहा है।

संदर्भ

- भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR), मृदा उर्वरता एवं पोषक तत्व प्रबंधन पर तकनीकी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, जैविक खेती एवं टिकाऊ कृषि संबंधी मार्गदर्शिका।
- पाठक, ए. एवं वर्मा, एस., जैविक खेती के सिद्धांत, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली।
- राष्ट्रीय जैविक खेती केंद्र, हरित खाद एवं मृदा स्वास्थ्य पर प्रशिक्षण सामग्री!

प्राकृतिक खेती एवं जैविक खेती:
अंतर, लाभ, चुनौतियाँ एवं भविष्य की संभावनाएँ

मनीष यादव, किरण मीणा
पीएच.डी. शोधार्थी
कृषि विज्ञान (एग्रोनॉमी) विभाग, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान

रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से उत्पन्न मृदा स्वास्थ्य के ह्रास, बढ़ती उत्पादन लागत तथा पर्यावरणीय चिंताओं ने किसानों एवं नीति-निर्माताओं को वैकल्पिक कृषि पद्धतियों की ओर प्रेरित किया है। इस दिशा में प्राकृतिक खेती एवं जैविक खेती दो प्रमुख एवं व्यापक रूप से अपनाई जाने वाली प्रणालियों के रूप में उभरी हैं। यद्यपि दोनों का साझा उद्देश्य रासायनिक-मुक्त, टिकाऊ एवं मृदा-हितैषी कृषि को बढ़ावा देना है, फिर भी उनकी अवधारणा, निवेश की प्रकृति, लागत तथा क्रियान्वयन की विधियों में महत्वपूर्ण अंतर हैं। प्राकृतिक खेती, जिसे प्रायः 'शून्य बजट प्राकृतिक खेती' (Zero Budget Natural Farming; ZBNF) के रूप में भी जाना जाता है, मुख्यतः स्थानीय एवं देशी संसाधनों पर आधारित है, जबकि जैविक खेती बाह्य जैविक निवेशों तथा औपचारिक प्रमाणीकरण प्रणाली पर अधिक निर्भर करती है। प्रस्तुत लेख में दोनों पद्धतियों की अवधारणा, उनके मूल अंतर, लाभ एवं चुनौतियाँ, किसान की परिस्थितियों के अनुसार उनकी उपयुक्तता तथा भारतीय कृषि में उनके भविष्य की संभावनाओं पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

प्रस्तावना

पिछले कुछ दशकों में रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों पर आधारित गहन कृषि प्रणाली ने खाद्यान्न उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि की है। किंतु इसके साथ-साथ मृदा स्वास्थ्य में गिरावट, उत्पादन लागत में वृद्धि, भूजल प्रदूषण तथा खाद्य सुरक्षा एवं पर्यावरण से जुड़ी अनेक चिंताएँ भी सामने आई हैं। इन चुनौतियों के समाधान के लिए किसान, वैज्ञानिक एवं नीति-निर्माता वैकल्पिक कृषि प्रणालियों की ओर अग्रसर हुए हैं, जिनमें प्राकृतिक खेती एवं जैविक खेती सबसे अधिक चर्चित एवं प्रचलित पद्धतियाँ हैं।

प्रायः इन दोनों शब्दों का प्रयोग एक-दूसरे के पर्याय के रूप में किया जाता है, जबकि वास्तव में ये दो भिन्न अवधारणाओं एवं कार्यप्रणालियों पर आधारित कृषि प्रणालियाँ हैं। दोनों का उद्देश्य रासायनिक-मुक्त, मृदा-हितैषी एवं पर्यावरण-अनुकूल कृषि को बढ़ावा देना है, किंतु इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपनाए जाने वाले सिद्धांत एवं उपाय अलग-अलग हैं। इसलिए किसानों के लिए यह समझना आवश्यक है कि उनकी संसाधन उपलब्धता, कृषि परिस्थितियों एवं उत्पादन लक्ष्यों के अनुसार कौन-सी पद्धति अधिक उपयुक्त है, ताकि वे वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक निर्णय ले सकें।

यह भ्रम विशेष रूप से नए किसानों एवं उपभोक्ताओं में अधिक देखा जाता है, जो प्रायः **'रसायन-मुक्त'** उत्पादों को स्वतः जैविक अथवा प्राकृतिक मान लेते हैं, जबकि दोनों पद्धतियों के सिद्धांत, लागत संरचना तथा प्रमाणीकरण प्रणाली अलग-अलग होती हैं। नीति-निर्माताओं के लिए भी यह अंतर महत्वपूर्ण है, क्योंकि दोनों प्रणालियों को बढ़ावा देने के लिए प्रशिक्षण, प्रोत्साहन एवं विपणन संबंधी आवश्यकताएँ भिन्न

होती हैं। इसी उद्देश्य से इस लेख में प्राकृतिक एवं जैविक खेती के बीच के मूलभूत अंतर को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

प्राकृतिक खेती क्या है?

प्राकृतिक खेती एक ऐसी कृषि पद्धति है, जो प्रकृति के साथ सामंजस्य एवं न्यूनतम बाह्य हस्तक्षेप के सिद्धांत पर आधारित है। इसमें किसी भी प्रकार के रासायनिक उर्वरकों, रासायनिक कीटनाशकों अथवा बाहरी वाणिज्यिक जैविक निवेशों (जैसे बाज़ार से खरीदी गई जैविक खाद) का उपयोग नहीं किया जाता। इसके स्थान पर खेत एवं स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों, विशेषकर देशी गोवंश के गोबर एवं गोमूत्र, से तैयार किए गए विभिन्न घोल एवं जैविक मिश्रणों का उपयोग किया जाता है।

भारत में इस पद्धति को प्रायः 'शून्य बजट प्राकृतिक खेती' (Zero Budget Natural Farming; ZBNF) के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि इसमें बाहरी कृषि निवेशों की आवश्यकता न्यूनतम होती है। इसका उद्देश्य स्थानीय संसाधनों के अधिकतम उपयोग के माध्यम से उत्पादन लागत को कम करना तथा मृदा, पौधों एवं पर्यावरण के बीच प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखना है।

चित्र 1: प्राकृतिक खेती (ZBNF) के चार प्रमुख स्तंभ

प्राकृतिक खेती चार प्रमुख स्तंभों पर आधारित है— जीवामृत, बीजामृत, आच्छादन (मल्चिंग) तथा वाफसा। जीवामृत देशी गोबर, गोमूत्र, गुड़ एवं दलहन के आटे से तैयार किया गया सूक्ष्मजीव-समृद्ध घोल है, जिसका उपयोग मृदा में सूक्ष्मजैविक गतिविधियों को बढ़ाने के लिए किया जाता है। बीजामृत बीज उपचार हेतु प्रयुक्त मिश्रण है, जो अंकुरण एवं प्रारंभिक पौध वृद्धि में सहायक होता है। आच्छादन (मल्चिंग) के अंतर्गत फसल अवशेषों अथवा जीवित आवरण द्वारा मिट्टी को ढका जाता है, जिससे नमी संरक्षित रहती है तथा मृदा का तापमान संतुलित बना रहता है। वाफसा मृदा में वायु एवं नमी के संतुलित अनुपात की अवस्था को दर्शाता है, जो पौधों की स्वस्थ वृद्धि के लिए आवश्यक मानी जाती है। इन चारों सिद्धांतों का पालन करके किसान बिना किसी बाह्य रासायनिक अथवा महँगे जैविक निवेश के अपनी खेती का प्रबंधन कर सकते हैं।

इस पद्धति का मूल सिद्धांत यह है कि प्राकृतिक परिस्थितियों में पौधे बिना बाहरी उर्वरकों के भी विकसित होते हैं, क्योंकि मृदा में उपस्थित सूक्ष्मजीव आवश्यक पोषक तत्वों को पौधों के लिए उपलब्ध कराते रहते हैं। **जीवामृत** एवं **बीजामृत** का उद्देश्य इन्हीं लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या एवं सक्रियता को बढ़ाना है, ताकि मृदा अपनी प्राकृतिक उर्वरता बनाए रख सके। इसी कारण इसे **'शून्य बजट'** खेती कहा जाता है, क्योंकि किसान अपने खेत, पशुधन एवं स्थानीय संसाधनों के आधार पर अधिकांश आवश्यक कृषि निवेश स्वयं तैयार कर सकता है।

जैविक खेती क्या है?

जैविक खेती एक ऐसी कृषि पद्धति है, जिसमें संश्लेषित रासायनिक उर्वरकों, रासायनिक कीटनाशकों तथा आनुवंशिक रूप से संशोधित जीवों (GMO) का उपयोग नहीं किया जाता। इनके स्थान पर जैविक खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट, हरी खाद, जैव-उर्वरकों तथा जैविक कीट एवं रोग प्रबंधन जैसी विधियों को अपनाया जाता है। जैविक खेती में इन जैविक निवेशों का उत्पादन खेत पर स्वयं किया जा सकता है अथवा आवश्यकता अनुसार प्रमाणित स्रोतों से खरीदा भी जा सकता है। यही विशेषता इसे प्राकृतिक खेती से अलग करती है।

जैविक खेती की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसकी औपचारिक प्रमाणीकरण (Certification) प्रणाली है। यदि किसान अपने उत्पादों का विपणन 'जैविक उत्पाद' के रूप में करना चाहते हैं, तो उन्हें निर्धारित मानकों के अनुसार भूमि एवं उत्पादन प्रणाली का प्रमाणीकरण कराना होता है। सामान्यतः इस प्रक्रिया में दो से तीन वर्ष का संक्रमण काल (Transition Period) लगता है। प्रमाणीकरण के पश्चात किसानों को घरेलू एवं अंतरराष्ट्रीय जैविक बाज़ारों में अपने उत्पादों के लिए प्रीमियम मूल्य प्राप्त करने का अवसर मिलता है।

जैविक खेती में पोषक तत्वों का प्रबंधन अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है। मृदा परीक्षण के आधार पर यह निर्धारित किया जाता है कि कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट अथवा अन्य जैविक खादों की कितनी मात्रा आवश्यक है। इन खादों को किसान स्वयं तैयार कर सकते हैं या प्रमाणित विक्रेताओं से खरीद सकते हैं। इसी प्रकार, कीट एवं रोग प्रबंधन के लिए नीम-आधारित उत्पाद, जैविक कीटनाशक, जैव-नियंत्रण एजेंट तथा फसल चक्र जैसी तकनीकों का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार, जैविक खेती प्राकृतिक खेती की तुलना में अधिक लचीली है, क्योंकि इसमें बाह्य जैविक निवेशों के उपयोग की अनुमति होती है, बशर्ते वे निर्धारित जैविक मानकों के अनुरूप हों।

ISSN: 3049-2211

दोनों में मूल अंतर

यद्यपि प्राकृतिक खेती एवं जैविक खेती दोनों का उद्देश्य रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों से मुक्त, टिकाऊ एवं पर्यावरण-अनुकूल कृषि को बढ़ावा देना है, फिर भी उनकी मूल अवधारणा, निवेश की प्रकृति, प्रबंधन प्रणाली तथा क्रियान्वयन की विधियों में स्पष्ट अंतर है। प्राकृतिक खेती मुख्यतः स्थानीय एवं खेत पर उपलब्ध संसाधनों पर आधारित होती है, जबकि जैविक खेती में स्थानीय संसाधनों के साथ-साथ प्रमाणित बाह्य जैविक निवेशों के उपयोग की भी अनुमति होती है। इसी प्रकार, जैविक खेती में औपचारिक प्रमाणीकरण प्रणाली का विशेष महत्व है, जबकि प्राकृतिक खेती में इसका स्वरूप अपेक्षाकृत भिन्न हो सकता है। इन प्रमुख अंतरों को चित्र 1 में संक्षेप में दर्शाया गया है।

चित्र 2: प्राकृतिक खेती एवं जैविक खेती- एक तुलनात्मक झलक

प्राकृतिक खेती एवं जैविक खेती के बीच के प्रमुख अंतरों को निम्न तालिका में प्रस्तुत किया गया है।

पहलू	प्राकृतिक खेती	जैविक खेती
मूल दर्शन	न्यूनतम हस्तक्षेप एवं प्रकृति के साथ सामंजस्य	रासायनिक-मुक्त कृषि के साथ वैज्ञानिक पोषक तत्व प्रबंधन
निवेश स्रोत	देशी गोवंश आधारित, खेत में स्वनिर्मित संसाधन	जैविक खाद, कम्पोस्ट आदि—स्वनिर्मित अथवा क्रय
लागत	अत्यंत कम (शून्य बजट के निकट)	मध्यम; जैविक निवेशों की लागत सम्मिलित
प्रमाणीकरण	सामान्यतः औपचारिक प्रमाणीकरण आवश्यक	औपचारिक प्रमाणीकरण आवश्यक

	नहीं	
संक्रमण काल	अपेक्षाकृत कम	सामान्यतः 2–3 वर्ष
बाज़ार पहुँच	मुख्यतः स्थानीय एवं प्रत्यक्ष विपणन	प्रीमियम, निर्यात एवं संगठित बाज़ार

प्राकृतिक खेती के लाभ

I. बाह्य कृषि निवेशों की आवश्यकता न्यूनतम होने से उत्पादन लागत में उल्लेखनीय कमी आती है।
II. देशी गोवंश आधारित प्रणाली होने के कारण पशुपालन एवं खेती के बीच प्राकृतिक समन्वय स्थापित होता है।
III. मृदा की सूक्ष्मजैविक गतिविधियों एवं जैविक कार्बन में सुधार होता है।
IV. मल्चिंग एवं वाफसा सिद्धांत के कारण जल संरक्षण में सहायता मिलती है तथा सिंचाई की आवश्यकता कम हो सकती है।
V. कम पूँजी निवेश के कारण यह छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए अधिक सुलभ एवं उपयुक्त पद्धति है।

जैविक खेती के लाभ

I. औपचारिक प्रमाणीकरण के माध्यम से घरेलू एवं अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों में प्रीमियम मूल्य प्राप्त करने की संभावना बढ़ती है।
II. मानकीकृत उत्पादन प्रणाली एवं गुणवत्ता नियंत्रण से उपभोक्ताओं का विश्वास सुदृढ़ होता है।
III. कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट एवं अन्य वैज्ञानिक रूप से स्वीकृत जैविक निवेशों के उपयोग से पोषक तत्व प्रबंधन अधिक व्यवस्थित रहता है।
IV. निर्यात-उन्मुख कृषि के लिए एक स्थापित एवं व्यापक रूप से मान्यता प्राप्त प्रणाली उपलब्ध होती है।
V. बड़े एवं संसाधन-संपन्न किसानों के लिए व्यावसायिक विस्तार की बेहतर संभावनाएँ उपलब्ध कराती है।

दोनों पद्धतियों की चुनौतियाँ

प्राकृतिक एवं जैविक खेती—दोनों को अपनाने में कुछ समान तथा कुछ विशिष्ट चुनौतियाँ सामने आती हैं, जिन्हें निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

चुनौती	प्राकृतिक खेती	जैविक खेती
उपज में प्रारंभिक कमी	संक्रमण काल में संभावित	संक्रमण काल में संभावित

ISSN: 3049-2211

संसाधनों की उपलब्धता	देशी गोवंश एवं स्थानीय संसाधनों पर निर्भरता	गुणवत्तापूर्ण जैविक निवेशों की उपलब्धता
ज्ञान एवं प्रशिक्षण	जीवामृत, बीजामृत आदि तैयार करने का तकनीकी ज्ञान आवश्यक	प्रमाणीकरण एवं मानकों की जानकारी आवश्यक
बाज़ार संबंधी चुनौतियाँ	प्रीमियम मूल्य का हमेशा सुनिश्चित न होना	प्रमाणीकरण लागत एवं दस्तावेज़ीकरण की जटिलता
वैज्ञानिक प्रमाण	दीर्घकालिक शोध अपेक्षाकृत सीमित	अपेक्षाकृत अधिक शोध एवं प्रायोगिक आधार उपलब्ध

किसान की परिस्थिति के अनुसार उपयुक्तता

'कौन-सी पद्धति बेहतर है?' इस प्रश्न का कोई एक सार्वभौमिक उत्तर नहीं है। किसी भी पद्धति की उपयुक्तता किसान की संसाधन उपलब्धता, कृषि परिस्थितियों, आर्थिक क्षमता, विपणन व्यवस्था तथा उत्पादन लक्ष्यों पर निर्भर करती है। जिन किसानों के पास स्थानीय संसाधन एवं देशी गोवंश उपलब्ध हैं, उनके लिए प्राकृतिक खेती अधिक उपयुक्त हो सकती है, जबकि संगठित बाज़ार, प्रमाणीकरण एवं प्रीमियम मूल्य प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले किसानों के लिए जैविक खेती बेहतर विकल्प सिद्ध हो सकती है। इस निर्णय की रूपरेखा **चित्र 3** में संक्षेप में दर्शाई गई है।

चित्र 3: उपयुक्तता — किसान की परिस्थिति के अनुसार चयन

जिन किसानों के पास देशी गोवंश उपलब्ध है, पूँजी निवेश सीमित है तथा स्थानीय संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता है, उनके लिए प्राकृतिक खेती एक व्यावहारिक एवं किफायती विकल्प सिद्ध हो सकती है। इसके विपरीत, जो किसान संगठित बाज़ार, निर्यात अथवा प्रीमियम मूल्य को लक्ष्य बनाकर खेती करना चाहते हैं तथा प्रमाणीकरण प्रक्रिया एवं जैविक निवेशों में निवेश करने में सक्षम हैं, उनके लिए जैविक खेती अधिक उपयुक्त हो सकती है। वर्तमान में अनेक प्रगतिशील किसान अपनी स्थानीय परिस्थितियों एवं संसाधनों के अनुसार दोनों पद्धतियों के उपयोगी तत्वों का समन्वय कर एक मिश्रित एवं व्यवहारिक दृष्टिकोण भी अपना रहे हैं।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि दोनों पद्धतियों में संक्रमण काल के दौरान उपज में अस्थायी कमी आना सामान्य है, क्योंकि रासायनिक निवेशों पर निर्भर मृदा को अपनी प्राकृतिक जैविक सक्रियता एवं उर्वरता पुनः स्थापित करने में समय लगता है। इसलिए किसानों को इन प्रणालियों को धैर्यपूर्वक अपनाना चाहिए तथा प्रारंभिक चरण में पूरे खेत के बजाय सीमित क्षेत्र में परीक्षण कर अनुभव प्राप्त करने के बाद ही व्यापक स्तर पर विस्तार करना चाहिए। कृषि विज्ञान केन्द्रों से तकनीकी मार्गदर्शन प्राप्त करना तथा अनुभवी किसानों के अनुभवों से सीखना इस परिवर्तन को अधिक सफल एवं सुगम बना सकता है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य एवं भविष्य

भारत में प्राकृतिक खेती एवं जैविक खेती, दोनों को विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों एवं नीतियों के माध्यम से प्रोत्साहन दिया जा रहा है। कई राज्यों में प्राकृतिक खेती के विस्तार हेतु विशेष अभियान संचालित किए जा रहे हैं, जबकि जैविक खेती को बढ़ावा देने वाली योजनाओं के अंतर्गत किसानों को प्रमाणीकरण, प्रशिक्षण तथा बाज़ार संपर्क संबंधी सहायता उपलब्ध कराई जा रही है। साथ ही, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) एवं विभिन्न कृषि विश्वविद्यालय इन दोनों कृषि प्रणालियों पर वैज्ञानिक अनुसंधान कर रहे हैं, ताकि उनकी उत्पादकता, मृदा स्वास्थ्य, पर्यावरणीय प्रभाव एवं आर्थिक व्यवहार्यता का दीर्घकालिक मूल्यांकन किया जा सके।

भविष्य में यह संभावना प्रबल है कि प्राकृतिक एवं जैविक खेती के प्रभावी सिद्धांतों का समन्वय कर क्षेत्र-विशेष एवं किसान-विशेष आवश्यकताओं के अनुरूप अधिक व्यावहारिक कृषि मॉडल विकसित किए जाएँ। इसके साथ ही, रासायनिक-मुक्त एवं सुरक्षित खाद्य पदार्थों के प्रति उपभोक्ताओं की बढ़ती जागरूकता तथा माँग इन दोनों प्रणालियों के लिए नए एवं विस्तारशील बाज़ार अवसर प्रदान कर रही है। यदि वैज्ञानिक अनुसंधान, प्रभावी प्रशिक्षण, उपयुक्त नीतिगत सहयोग तथा मजबूत विपणन व्यवस्था का समुचित समन्वय हो, तो आने वाले वर्षों में प्राकृतिक एवं जैविक खेती भारतीय कृषि की मुख्यधारा में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकती हैं।

निष्कर्ष

प्राकृतिक खेती एवं जैविक खेती—दोनों ही रासायनिक-मुक्त, टिकाऊ एवं मृदा-हितैषी कृषि की दिशा में महत्वपूर्ण एवं परस्पर पूरक कृषि प्रणालियाँ हैं। प्राकृतिक खेती अपनी कम लागत, स्थानीय संसाधनों पर आधारित सरलता एवं आत्मनिर्भरता के कारण विशेष रूप से छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए आकर्षक विकल्प है, जबकि जैविक खेती औपचारिक प्रमाणीकरण, गुणवत्ता आश्वासन एवं संगठित बाज़ार पहुँच के कारण व्यावसायिक एवं निर्यातोन्मुख कृषि के लिए अधिक उपयुक्त मानी जाती है। अतः इनमें से किसी एक को सार्वभौमिक रूप से श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता; उपयुक्त विकल्प का चयन किसान की संसाधन उपलब्धता, आर्थिक स्थिति, उत्पादन लक्ष्य एवं विपणन आवश्यकताओं पर निर्भर करता है।

आवश्यकता इस बात की है कि किसानों को दोनों पद्धतियों के सिद्धांतों, लाभों, सीमाओं एवं व्यावहारिक उपयोग की स्पष्ट, निष्पक्ष एवं वैज्ञानिक जानकारी उपलब्ध कराई जाए, ताकि वे अपनी स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप उचित निर्णय ले सकें। यदि अनुसंधान संस्थान, शासन, कृषि विस्तार तंत्र एवं कृषक समुदाय समन्वित रूप से कार्य करें तथा वैज्ञानिक मार्गदर्शन, गुणवत्तापूर्ण प्रशिक्षण एवं सुदृढ़ बाज़ार व्यवस्था सुनिश्चित करें, तो प्राकृतिक एवं जैविक खेती मिलकर भारतीय कृषि को अधिक उत्पादक, पर्यावरण-अनुकूल, आर्थिक रूप से सुदृढ़ एवं दीर्घकालिक रूप से टिकाऊ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं।

■■■

सूक्ष्म पोषक तत्वों का फसल उत्पादन एवं गुणवत्ता पर प्रभाव

हेमराज मीणा
पीएच.डी. शोधार्थी
पादप कार्यिकी विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिंदू विश्वविद्यालय (BHU), वाराणसी, उत्तर प्रदेश

पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए यद्यपि नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटैशियम जैसे प्रमुख पोषक तत्वों की सबसे अधिक चर्चा होती है, किंतु जिंक, लोहा, बोरॉन, मैंगनीज़, तांबा एवं मॉलिब्डेनम जैसे सूक्ष्म पोषक तत्व भी समान रूप से आवश्यक हैं, यद्यपि इनकी आवश्यकता अत्यंत अल्प मात्रा में होती है। ये तत्व पौधों के एन्ज़ाइम तंत्र, प्रकाश-संश्लेषण, प्रोटीन संश्लेषण, हार्मोन निर्माण तथा प्रजनन प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनकी थोड़ी-सी कमी भी फसल की वृद्धि, उपज एवं गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है। भारत की अनेक मृदाओं में, विशेषकर जिंक एवं बोरॉन की व्यापक कमी पाई जाती है, जिसे किसान प्रायः सामान्य पोषण संबंधी समस्या समझकर अनदेखा कर देते हैं। प्रस्तुत लेख में सूक्ष्म पोषक तत्वों की भूमिका, उनकी कमी के कारण एवं लक्षण, फसल उत्पादन एवं गुणवत्ता पर उनके प्रभाव तथा इनके वैज्ञानिक प्रबंधन एवं उपयोग की विधियों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

प्रस्तावना

कृषि में उर्वरक प्रबंधन की चर्चा प्रायः नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटैशियम (NPK) जैसे प्रमुख पोषक तत्वों तक ही सीमित रहती है। किसान भी लंबे समय से मुख्य रूप से इन्हीं पोषक तत्वों पर ध्यान केंद्रित करते आए हैं, क्योंकि इनकी आवश्यकता अधिक मात्रा में होती है तथा इनकी कमी के लक्षण अपेक्षाकृत स्पष्ट दिखाई देते हैं। किंतु पौधों की संतुलित वृद्धि एवं पूर्ण जीवन-चक्र के लिए कुछ ऐसे पोषक तत्व भी आवश्यक हैं, जिनकी आवश्यकता अत्यंत कम मात्रा में होने पर भी उनका महत्व अत्यधिक होता है। इन्हें सूक्ष्म पोषक तत्व (Micronutrients) कहा जाता है।

यद्यपि सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता प्रति हेक्टेयर केवल कुछ ग्राम से लेकर कुछ किलोग्राम तक होती है, फिर भी इनके अभाव में पौधों की अनेक महत्वपूर्ण जैव-रासायनिक एवं शारीरिक क्रियाएँ प्रभावित हो जाती हैं। निरंतर गहन कृषि, असंतुलित उर्वरक उपयोग तथा मृदा में जैविक पदार्थ की घटती मात्रा के कारण भारत की अनेक मृदाओं में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी एक गंभीर एवं बढ़ती हुई समस्या बनती जा रही है। यही कारण है कि वर्तमान समय में संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन में सूक्ष्म पोषक तत्वों का महत्व निरंतर बढ़ रहा है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को प्रायः **'छिपी हुई भूख' (Hidden Hunger)** कहा जाता है, क्योंकि इसके लक्षण प्रारंभिक अवस्था में स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देते। कई बार फसल देखने में सामान्य एवं हरी-भरी प्रतीत होती है, जबकि भीतर ही भीतर सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी उसकी वास्तविक उत्पादन क्षमता एवं गुणवत्ता को सीमित कर रही होती है। यह स्थिति मानव शरीर में विटामिन एवं खनिजों की कमी के समान है, जहाँ बाहरी रूप से व्यक्ति स्वस्थ दिखाई दे सकता है, किंतु उसकी कार्यक्षमता एवं स्वास्थ्य प्रभावित होते रहते हैं। इसलिए सूक्ष्म पोषक तत्वों की समय पर पहचान एवं वैज्ञानिक प्रबंधन टिकाऊ एवं गुणवत्तापूर्ण कृषि उत्पादन के लिए अत्यंत आवश्यक है।

सूक्ष्म पोषक तत्व क्या हैं?

पौधों के लिए आवश्यक 17 आवश्यक पोषक तत्वों में से कुछ तत्व ऐसे हैं, जिनकी आवश्यकता अत्यंत अल्प मात्रा में होती है। इन्हें सूक्ष्म पोषक तत्व (Micronutrients) कहा जाता है। इनमें प्रमुख रूप से जिंक (Zn), लोहा (Fe), बोरॉन (B), मैंगनीज़ (Mn), तांबा (Cu), मॉलिब्डेनम (Mo) तथा क्लोरीन (Cl) शामिल हैं। यद्यपि इनकी आवश्यकता प्रमुख पोषक तत्वों—नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटैशियम—की तुलना में बहुत कम होती है, फिर भी पौधों की वृद्धि, विकास एवं उपज में इनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों को पौधे की कार्यप्रणाली के अनिवार्य सहायक घटक के रूप में समझा जा सकता है। ये विभिन्न एन्ज़ाइमों को सक्रिय करने, प्रकाश-संश्लेषण, श्वसन, प्रोटीन एवं क्लोरोफिल निर्माण, परागण, फल एवं बीज विकास तथा हार्मोन निर्माण जैसी अनेक जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं में भाग लेते हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे किसी मशीन का छोटा-सा पुर्जा आकार में भले ही छोटा हो, लेकिन उसके बिना पूरी मशीन सुचारु रूप से कार्य नहीं कर सकती, उसी प्रकार सूक्ष्म पोषक तत्वों की अल्प मात्रा भी पौधों के लिए अत्यंत आवश्यक होती है। इनके अभाव में फसल की वृद्धि, उत्पादन क्षमता तथा गुणवत्ता तीनों प्रभावित हो सकती हैं।

चित्र 1: फसलों हेतु आवश्यक प्रमुख सूक्ष्म पोषक तत्व

भारत की अधिकांश कृषि मृदाओं में जिंक (Zn) एवं बोरॉन (B) की कमी सबसे अधिक पाई जाती है, जबकि लोहा (Fe), मैंगनीज़ (Mn) एवं तांबा (Cu) की कमी विशेष परिस्थितियों, जैसे क्षारीय (उच्च pH) अथवा जल-जमाव वाली मृदाओं में अपेक्षाकृत अधिक देखी जाती है। मॉलिब्डेनम (Mo) की आवश्यकता सबसे कम होती है, किंतु विशेषकर दलहनी फसलों में जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया में इसकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है।

यह समझना आवश्यक है कि प्रमुख एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों के बीच अंतर उनके महत्व का नहीं, बल्कि उनकी आवश्यक मात्रा का है। पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए दोनों समान रूप से अनिवार्य हैं। प्रमुख पोषक तत्व पौधे की संरचनात्मक इकाइयों, जैसे प्रोटीन, न्यूक्लिक अम्ल एवं कोशिका संरचना, के निर्माण में अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में प्रयुक्त होते हैं, जबकि सूक्ष्म पोषक तत्व मुख्यतः एन्ज़ाइमों के सह-कारक (Cofactors) एवं उत्प्रेरक (Catalysts) के रूप में कार्य करते हैं। इसलिए इनकी अत्यंत अल्प मात्रा भी अनेक महत्वपूर्ण जैव-रासायनिक क्रियाओं को संचालित करने के लिए पर्याप्त होती है।

फसल में सूक्ष्म पोषक तत्वों की भूमिका एवं कमी के लक्षण

प्रत्येक सूक्ष्म पोषक तत्व पौधे के भीतर विशिष्ट जैव-रासायनिक एवं शारीरिक कार्य करता है। किसी भी तत्व की कमी होने पर उसके अनुरूप विशिष्ट एवं पहचान योग्य लक्षण दिखाई देते हैं, जिनका समय पर निदान फसल उत्पादन में हानि को रोकने के लिए अत्यंत आवश्यक है। प्रमुख सूक्ष्म पोषक तत्वों की भूमिका एवं उनके अभाव के सामान्य लक्षण निम्न तालिका में दिए गए हैं।

तत्व	मुख्य भूमिका	कमी के प्रमुख लक्षण
जिंक (Zn)	एन्ज़ाइम सक्रियता एवं वृद्धि हार्मोन (ऑक्सिन) का निर्माण	छोटी पत्तियाँ, अंतर्शिरा पीलापन, कल्लों की संख्या में कमी
लोहा (Fe)	हरितलवक निर्माण एवं श्वसन क्रिया	नई पत्तियों में अंतर्शिरा पीलापन, शिराएँ हरी एवं शेष भाग पीला
बोरॉन (B)	कोशिका विभाजन, परागण तथा फूल एवं फल विकास	फूल एवं फल का झड़ना, तने में दरारें, जड़ों की वृद्धि रुकना
मैंगनीज़ (Mn)	प्रकाश-संश्लेषण एवं एन्ज़ाइम सक्रियता	पत्तियों पर धब्बेदार पीलापन तथा धीमी वृद्धि
तांबा (Cu)	एन्ज़ाइम निर्माण एवं प्रजनन क्रियाएँ	पत्तियों का मुड़ना तथा अनाज की गुणवत्ता में कमी
मॉलिब्डेनम (Mo)	विशेषकर दलहनी फसलों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण	पत्तियों का पीलापन तथा जड़ों की गाँठों का कम निर्माण

ISSN: 3049-2211

यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इन लक्षणों में से कई सामान्य पोषण असंतुलन, जल-तनाव अथवा अन्य जैविक एवं अजैविक समस्याओं से मिलते-जुलते हो सकते हैं। इसलिए केवल दृश्य लक्षणों के आधार पर निर्णय लेने के बजाय मृदा परीक्षण एवं पौध ऊतक विश्लेषण द्वारा सटीक निदान करना अधिक वैज्ञानिक एवं विश्वसनीय उपाय है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के प्रमुख कारण

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी अनेक कृषि एवं मृदा संबंधी कारकों के संयुक्त प्रभाव का परिणाम है। प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

I. निरंतर गहन खेती एवं उच्च उपज देने वाली किस्मों का उपयोग, जिससे मृदा से सूक्ष्म पोषक तत्वों का अधिक निष्कासन होता है।
II. केवल नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटैशियम (NPK) पर आधारित असंतुलित उर्वरक प्रबंधन, जिसमें सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपेक्षा होती है।
III. मृदा में जैविक कार्बन की कमी, जिससे सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता एवं गतिशीलता प्रभावित होती है।
IV. उच्च pH (क्षारीय) मृदाएँ, जिनमें जिंक एवं लोहे जैसे तत्व अपेक्षाकृत अघुलनशील होकर पौधों के लिए कम उपलब्ध हो जाते हैं।
V. बलुई मृदाओं में सूक्ष्म पोषक तत्वों की स्वाभाविक रूप से कम उपलब्धता।

इन सभी कारणों के संयुक्त प्रभाव से भारत के अनेक कृषि क्षेत्रों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी एक व्यापक एवं निरंतर बढ़ती हुई समस्या बनती जा रही है।

इसके अतिरिक्त, विभिन्न पोषक तत्वों के बीच होने वाली पोषक तत्व अंतर्क्रिया (Nutrient Interaction) भी सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए, मृदा में फॉस्फोरस की अत्यधिक मात्रा जिंक के अवशोषण को कम कर सकती है, जिसे फॉस्फोरस–जिंक अंतर्क्रिया कहा जाता है। इसी प्रकार, किसी एक सूक्ष्म पोषक तत्व की अत्यधिक उपलब्धता अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों के अवशोषण में भी बाधा उत्पन्न कर सकती है। इसलिए उर्वरक प्रबंधन में केवल किसी एक तत्व की पूर्ति पर ध्यान देने के बजाय समग्र पोषक तत्व संतुलन बनाए रखना आवश्यक है, जिसका सबसे प्रभावी आधार मृदा परीक्षण है।

फसल उत्पादन पर प्रभाव

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी का प्रभाव प्रायः तत्काल दिखाई नहीं देता, बल्कि यह धीरे-धीरे पौधों की जैव-रासायनिक एवं शारीरिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करता है। प्रारंभ में एन्ज़ाइम सक्रियता, प्रकाश-संश्लेषण एवं पोषक तत्वों के उपयोग की दक्षता घटती है, जिसके परिणामस्वरूप पौधों की वृद्धि मंद पड़ जाती है। इसके बाद फूल एवं फल बनने की क्षमता, दानों का विकास तथा पोषक तत्वों का संचयन प्रभावित होने लगता है, जिससे अंततः उपज एवं उत्पाद की गुणवत्ता दोनों में कमी आती है। इस क्रमिक प्रक्रिया को **चित्र 2** में दर्शाया गया है।

चित्र 2: सूक्ष्म पोषक तत्व की कमी से उपज हानि तक की प्रक्रिया

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी का प्रभाव प्रायः धीरे-धीरे विकसित होता है और अंततः फसल की उपज में उल्लेखनीय कमी का कारण बनता है। जब मृदा में किसी सूक्ष्म पोषक तत्व की उपलब्धता कम हो जाती है, तो पौधों की जड़ों द्वारा उसका अवशोषण बाधित हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप संबंधित एन्ज़ाइमों की सक्रियता तथा विभिन्न उपापचयी (Metabolic) प्रक्रियाएँ प्रभावित होती हैं। आगे चलकर पत्तियों में पीलापन, धब्बे, वृद्धि में अवरोध अथवा अन्य विशिष्ट कमी के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। यदि समय पर सुधारात्मक उपाय नहीं किए जाएँ, तो फूल एवं फल बनने की प्रक्रिया, दानों का भराव तथा अंततः समग्र उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। विभिन्न अनुसंधानों से यह स्पष्ट हुआ है कि जिंक अथवा बोरॉन की गंभीर कमी होने पर फसल की उपज में 20–40 प्रतिशत तक की कमी आ सकती है, जो इस समस्या की गंभीरता को दर्शाती है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि दृश्य लक्षण प्रकट होने तक पौधे के भीतर अनेक जैव-रासायनिक प्रक्रियाएँ पहले ही प्रभावित हो चुकी होती हैं। कृषि वैज्ञानिक इस अवस्था को 'छिपी हुई कमी' (Hidden Deficiency) कहते हैं, जिसमें उपज पर प्रतिकूल प्रभाव आरंभ हो चुका होता है, जबकि पत्तियों पर स्पष्ट लक्षण दिखाई नहीं देते। इसलिए केवल दृश्य लक्षणों के आधार पर निर्णय लेने के बजाय मृदा परीक्षण एवं पौध ऊतक विश्लेषण के माध्यम से पूर्व-निवारक (Preventive) दृष्टिकोण अपनाना अधिक वैज्ञानिक एवं लाभकारी माना जाता है। इससे उपज में संभावित हानि होने से पहले ही आवश्यक सुधारात्मक उपाय किए जा सकते हैं।

फसल गुणवत्ता पर प्रभाव

सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रभाव केवल फसल की उपज तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वे उत्पाद की पोषण गुणवत्ता, भंडारण क्षमता, स्वाद,

रंग, रोग प्रतिरोधकता तथा बीज गुणवत्ता को भी महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं।

I. **पोषण गुणवत्ता:** जिंक एवं लोहे की पर्याप्त उपलब्धता से अनाज में इन पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ती है, जिससे मानव पोषण में सुधार होता है। इस प्रक्रिया को **जैव-सुदृढ़ीकरण (Biofortification)** कहा जाता है।

II. **भंडारण क्षमता:** बोरॉन एवं तांबे की पर्याप्त उपलब्धता फल एवं सब्जियों की भंडारण अवधि तथा परिवहन सहनशीलता को बढ़ाने में सहायक होती है।

III. **स्वाद एवं रंग:** मैंगनीज़ एवं जिंक फलों के रंग, आकार एवं स्वाद के समुचित विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

IV. **रोग प्रतिरोधकता:** सूक्ष्म पोषक तत्वों की संतुलित उपलब्धता पौधों की कोशिका भित्ति को सुदृढ़ बनाती है, जिससे रोगों एवं कीटों के प्रति उनकी प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

V. **बीज गुणवत्ता:** बोरॉन एवं मॉलिब्डेनम बीजों की अंकुरण क्षमता तथा जीवनक्षम (Viability) बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सूक्ष्म पोषक तत्वों के प्रयोग की विधियाँ

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी की पूर्ति एवं उनके प्रभावी उपयोग के लिए सामान्यतः तीन प्रमुख विधियाँ अपनाई जाती हैं। प्रत्येक विधि की अपनी उपयोगिता है तथा उसका चयन फसल, मृदा की स्थिति एवं कमी की गंभीरता के आधार पर किया जाता है। इन प्रमुख विधियों को **चित्र 3** में दर्शाया गया है।

चित्र 3: सूक्ष्म पोषक तत्व प्रयोग की प्रमुख विधियाँ

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी की पूर्ति के लिए अपनाई जाने वाली प्रमुख विधियों की तुलना निम्न तालिका में प्रस्तुत की गई है। यह किसानों को अपनी फसल, मृदा की स्थिति तथा कमी की गंभीरता के अनुसार उपयुक्त विधि का चयन करने में सहायता प्रदान करती है।

विधि	कब उपयुक्त	विशेषता
मृदा प्रयोग	बुवाई से पूर्व तथा गंभीर एवं दीर्घकालिक कमी की स्थिति में	दीर्घकालिक प्रभाव, पोषक तत्वों की क्रमिक उपलब्धता
पर्णीय छिड़काव	फसल में कमी के लक्षण दिखाई देने पर त्वरित सुधार हेतु	तीव्र अवशोषण एवं शीघ्र प्रभाव
बीज उपचार	बुवाई के समय प्रारंभिक वृद्धि को सुदृढ़ करने हेतु	किफायती, कम मात्रा में प्रभावी एवं प्रारंभिक पोषण उपलब्ध कराता है

सामान्यतः दीर्घकालिक एवं गंभीर कमी की स्थिति में मृदा प्रयोग को प्राथमिकता दी जाती है, जबकि दृश्य लक्षणों के त्वरित सुधार के लिए पर्णीय छिड़काव अधिक प्रभावी माना जाता है। अनेक कृषि वैज्ञानिक इन दोनों विधियों के समन्वित उपयोग की अनुशंसा करते हैं, ताकि फसल की अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक पोषक आवश्यकताओं की प्रभावी पूर्ति सुनिश्चित की जा सके।

भारतीय मृदाओं में सूक्ष्म पोषक तत्वों की स्थिति

भारत में किए गए व्यापक मृदा सर्वेक्षणों से यह स्पष्ट हुआ है कि देश की बड़ी संख्या में कृषि मृदाओं में जिंक (Zn) की कमी पाई जाती है, जिससे यह सबसे व्यापक रूप से पाया जाने वाला सूक्ष्म पोषक तत्व अभाव बन गया है। इसके अतिरिक्त बोरॉन (B) एवं लोहा (Fe) की कमी भी अनेक कृषि क्षेत्रों में सामान्य रूप से देखी जाती है। यह समस्या विशेष रूप से उन क्षेत्रों में अधिक गंभीर है, जहाँ लंबे समय से गहन खेती की जा रही है तथा जैविक खादों एवं कार्बनिक पदार्थों का उपयोग सीमित हो गया है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) तथा विभिन्न राज्य कृषि विश्वविद्यालय फसल-विशेष एवं क्षेत्र-विशेष आवश्यकताओं के अनुसार सूक्ष्म पोषक तत्वों की वैज्ञानिक सिफारिशें विकसित कर रहे हैं। मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के अंतर्गत भी सूक्ष्म पोषक तत्वों के परीक्षण को सम्मिलित किया गया है, ताकि किसान इस 'छिपी हुई भूख' (Hidden Hunger) की पहचान कर समय पर आवश्यक सुधारात्मक उपाय अपना सकें। इसके साथ ही, जैव-सुदृढ़ीकरण (Biofortification) कार्यक्रमों के माध्यम से जिंक एवं लोहे से समृद्ध फसल किस्मों का विकास किया जा रहा है, जो मृदा स्वास्थ्य एवं मानव पोषण—दोनों की चुनौतियों के समाधान की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल है।

यह उल्लेखनीय है कि सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी केवल कृषि उत्पादन तक सीमित समस्या नहीं है, बल्कि इसका सीधा संबंध मानव पोषण से भी है। भारत में बड़ी आबादी जिंक एवं लोहे की कमी से प्रभावित है, जिसका एक प्रमुख कारण अनाज-प्रधान आहार में इन तत्वों

की सीमित उपलब्धता है। यदि फसलों में सूक्ष्म पोषक तत्वों का संतुलित प्रबंधन किया जाए, तो इससे न केवल उपज एवं गुणवत्ता में सुधार होगा, बल्कि अनाज में इन पोषक तत्वों की मात्रा भी बढ़ेगी, जिससे उपभोक्ताओं के पोषण स्तर में भी सुधार संभव होगा। इस प्रकार, मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों का समुचित प्रबंधन खेत से लेकर थाली तक संपूर्ण खाद्य श्रृंखला के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

निष्कर्ष

सूक्ष्म पोषक तत्व, यद्यपि पौधों को अत्यंत अल्प मात्रा में आवश्यक होते हैं, फिर भी फसल की वृद्धि, उत्पादन, गुणवत्ता एवं पोषण मूल्य में उनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। इनकी कमी केवल उपज को ही प्रभावित नहीं करती, बल्कि उत्पाद की पोषण गुणवत्ता, भंडारण क्षमता, रोग प्रतिरोधकता तथा बीज गुणवत्ता को भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है। दुर्भाग्यवश, यह 'छिपी हुई भूख' अक्सर किसानों की दृष्टि से ओझल रह जाती है, क्योंकि इसके लक्षण अन्य पोषण संबंधी समस्याओं से मिलते-जुलते होते हैं।

अतः आवश्यक है कि किसान नियमित मृदा परीक्षण एवं आवश्यकता पड़ने पर पौध ऊतक विश्लेषण के माध्यम से सूक्ष्म पोषक तत्वों की स्थिति का वैज्ञानिक आकलन करें तथा कमी की प्रकृति के अनुसार मृदा प्रयोग, पर्णीय छिड़काव अथवा बीज उपचार जैसी उपयुक्त तकनीकों को अपनाएँ। यदि अनुसंधान संस्थान, शासन, कृषि विस्तार तंत्र एवं कृषक समुदाय समन्वित रूप से जागरूकता, वैज्ञानिक मार्गदर्शन एवं तकनीकी सहयोग को बढ़ावा दें, तो सूक्ष्म पोषक तत्वों के संतुलित प्रबंधन से न केवल फसल उत्पादन एवं गुणवत्ता में उल्लेखनीय वृद्धि होगी, बल्कि मानव पोषण सुरक्षा को भी सुदृढ़ बनाया जा सकेगा। वास्तव में, संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन की यह अंतिम किंतु अत्यंत महत्वपूर्ण कड़ी टिकाऊ, उत्पादक एवं समृद्ध कृषि प्रणाली की आधारशिला है।

■■■

जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों का संतुलित उपयोग: लाभ और चुनौतियाँ

मनीष यादव
पीएच.डी. शोधार्थी
कृषि विज्ञान (एग्रोनॉमी) विभाग, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान

आधुनिक कृषि में उर्वरकों का चयन प्रायः दो भिन्न दृष्टिकोणों के बीच केंद्रित रहता है—कुछ किसान पूर्णतः रासायनिक उर्वरकों पर निर्भर हैं, जबकि कुछ केवल जैविक स्रोतों को अपनाने के पक्षधर हैं। किंतु वैज्ञानिक दृष्टिकोण से न तो केवल रासायनिक उर्वरकों का उपयोग और न ही केवल जैविक उर्वरकों पर निर्भरता दीर्घकाल में सर्वोत्तम परिणाम प्रदान करती है। रासायनिक उर्वरक पौधों को आवश्यक पोषक तत्व शीघ्र एवं निर्धारित मात्रा में उपलब्ध कराते हैं, जबकि जैविक उर्वरक मृदा की संरचना, जैविक कार्बन तथा सूक्ष्मजैविक गतिविधियों में सुधार कर उसकी दीर्घकालिक उर्वरता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दोनों प्रकार के उर्वरकों के गुण एवं सीमाओं को ध्यान में रखते हुए उनका संतुलित एवं समन्वित उपयोग, जिसे एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (Integrated Nutrient Management; INM) कहा जाता है, फसल उत्पादकता तथा मृदा स्वास्थ्य दोनों को दीर्घकाल तक बनाए रखने का सर्वाधिक प्रभावी उपाय माना जाता है। प्रस्तुत लेख में जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों की प्रकृति, उनके लाभ एवं सीमाएँ, संतुलित उपयोग की आवश्यकता एवं विधियाँ, इससे जुड़ी व्यावहारिक चुनौतियाँ तथा भारतीय परिप्रेक्ष्य में इसके महत्व पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

प्रस्तावना

हरित क्रांति के पश्चात भारतीय कृषि में रासायनिक उर्वरकों का उपयोग तीव्र गति से बढ़ा, जिसके परिणामस्वरूप खाद्यान्न उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। किंतु दशकों तक इनके निरंतर एवं असंतुलित उपयोग के कारण अनेक क्षेत्रों में मृदा का जैविक कार्बन घटा, मृदा संरचना प्रभावित हुई तथा सूक्ष्मजैविक गतिविधियाँ कमज़ोर पड़ीं। दूसरी ओर, जैविक खेती के समर्थक पूर्णतः प्राकृतिक स्रोतों पर आधारित उर्वरण की वकालत करते हैं, जो मृदा स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है, किंतु अकेले बड़ी जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमेशा पर्याप्त एवं त्वरित परिणाम नहीं दे पाता।

वास्तव में, यह एक असत्य विकल्प (False Choice) है। वैज्ञानिक अनुसंधान एवं क्षेत्रीय अनुभव स्पष्ट करते हैं कि जैविक तथा रासायनिक—दोनों प्रकार के उर्वरकों के अपने-अपने विशिष्ट गुण एवं सीमाएँ हैं। इनका वैज्ञानिक एवं संतुलित उपयोग ही सर्वोत्तम परिणाम प्रदान करता है। न तो मृदा को केवल रासायनिक उर्वरकों पर निर्भर बनाना उचित है और न ही फसल की तात्कालिक पोषक आवश्यकताओं की उपेक्षा करते हुए केवल जैविक स्रोतों पर निर्भर रहना व्यावहारिक है। इस लेख में दोनों प्रकार के उर्वरकों का निष्पक्ष विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए उनके संतुलित उपयोग की आवश्यकता एवं महत्व को समझाने का प्रयास किया गया है।

यह विषय केवल तकनीकी दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि किसानों के दैनिक कृषि प्रबंधन से भी प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा है। किसान प्रतिदिन यह निर्णय लेते हैं कि किस खेत में कितनी जैविक खाद और कितनी रासायनिक उर्वरक का उपयोग करना है। यही निर्णय उनकी उत्पादन लागत, फसल उपज तथा मृदा की दीर्घकालिक उर्वरता को

ISSN: 3049-2211

प्रभावित करता है। इसलिए यह केवल वैचारिक बहस का विषय नहीं, बल्कि एक व्यावहारिक प्रश्न है, जिसका समाधान वैज्ञानिक ज्ञान एवं कृषि अनुभव—दोनों के समन्वय से संभव है।

जैविक एवं रासायनिक उर्वरक: मूल अंतर

जैविक उर्वरक प्राकृतिक स्रोतों, जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट, हरी खाद तथा फसल अवशेषों से प्राप्त होते हैं। इनमें पोषक तत्व जटिल कार्बनिक यौगिकों के रूप में उपस्थित रहते हैं, जिन्हें मृदा के सूक्ष्मजीव धीरे-धीरे अपघटित कर पौधों के लिए उपलब्ध कराते हैं। इसके विपरीत, रासायनिक उर्वरक औद्योगिक प्रक्रियाओं द्वारा निर्मित सांद्रित यौगिक होते हैं, जैसे यूरिया, डीएपी (DAP) एवं पोटाश, जिनमें पोषक तत्व घुलनशील एवं पौधों के लिए तुरंत उपलब्ध रूप में होते हैं।

यही मूल अंतर इनके प्रभाव की प्रकृति निर्धारित करता है। जैविक उर्वरक अपेक्षाकृत धीमी गति से कार्य करते हैं, किंतु उनका प्रभाव दीर्घकालिक एवं व्यापक होता है। दूसरी ओर, रासायनिक उर्वरक त्वरित प्रभाव दिखाते हैं, किंतु उनका प्रभाव मुख्यतः पोषक तत्वों की तत्काल उपलब्धता तक सीमित रहता है। दोनों प्रकार के उर्वरकों की तुलना निम्न तालिका में प्रस्तुत की गई है।

विशेषता	जैविक उर्वरक	रासायनिक उर्वरक
पोषक तत्वों की उपलब्धता	धीमी एवं क्रमिक	तीव्र एवं तत्काल
मृदा संरचना पर प्रभाव	मृदा संरचना में सुधार एवं जैविक कार्बन में वृद्धि	प्रत्यक्ष प्रभाव सीमित; अत्यधिक उपयोग से प्रतिकूल प्रभाव संभव
पोषक तत्वों की सांद्रता	कम, इसलिए अधिक मात्रा की आवश्यकता	अधिक, इसलिए कम मात्रा पर्याप्त
सूक्ष्मजैविक गतिविधि	बढ़ाती है	अत्यधिक उपयोग से घट सकती है
लागत एवं सुलभता	स्थानीय स्तर पर अपेक्षाकृत सस्ती, परंतु अधिक श्रम की आवश्यकता	अपेक्षाकृत महँगी, किंतु आसानी से उपलब्ध
पर्यावरणीय प्रभाव	पर्यावरण के अनुकूल	अत्यधिक उपयोग से प्रदूषण की संभावना

संतुलन की आवश्यकता क्यों?

उपरोक्त तुलना से स्पष्ट है कि जैविक एवं रासायनिक उर्वरक एक-दूसरे के विकल्प नहीं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं। जहाँ रासायनिक उर्वरक फसलों की तात्कालिक पोषक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, वहीं जैविक उर्वरक मृदा के दीर्घकालिक स्वास्थ्य, जैविक कार्बन एवं सूक्ष्मजैविक गतिविधियों को सुदृढ़ करते हैं। इन दोनों का संतुलित एवं समन्वित उपयोग ही टिकाऊ कृषि, बेहतर उत्पादकता तथा स्वस्थ मृदा का आधार बनता है। इसी संतुलन की अवधारणा को **चित्र 1** में दर्शाया गया है।

चित्र 1: जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों के बीच संतुलन

यदि किसान केवल रासायनिक उर्वरकों पर निर्भर रहें, तो अल्पकाल में फसल की उपज अच्छी प्राप्त हो सकती है, किंतु दीर्घकाल में मृदा की जैविक गुणवत्ता एवं उर्वरता प्रभावित होने लगती है। इसके परिणामस्वरूप उर्वरकों की उपयोग दक्षता घटती है तथा उत्पादन लागत बढ़ने लगती है। दूसरी ओर, यदि केवल जैविक स्रोतों पर निर्भर रहा जाए, तो पोषक तत्वों की उपलब्धता धीमी होने के कारण उच्च उत्पादन लक्ष्यों को शीघ्र प्राप्त करना कठिन हो सकता है। इसलिए जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों का संतुलित एवं समन्वित उपयोग ही सबसे व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक उपाय माना जाता है।

जैविक उर्वरकों के लाभ

I. मृदा की भौतिक संरचना, सरंध्रता एवं जल धारण क्षमता में सुधार करते हैं।
II. मृदा में जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ाकर उसकी दीर्घकालिक उर्वरता बनाए रखते हैं।
III. लाभकारी सूक्ष्मजीवों, केंचुओं एवं अन्य मृदा जीवों के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करते हैं।
IV. पोषक तत्वों के धीमे विमोचन के कारण निक्षालन एवं अपव्यय कम होता है।
V. गोबर, फसल अवशेष एवं अन्य स्थानीय संसाधनों से तैयार किए जा सकते हैं, जिससे उत्पादन लागत कम होती है।

रासायनिक उर्वरकों के लाभ

I. पोषक तत्व घुलनशील एवं तुरंत उपलब्ध होने के कारण फसल की तात्कालिक पोषक आवश्यकता शीघ्र पूरी होती है।

ISSN: 3049-2211

II. पोषक तत्वों की सांद्रता अधिक होने से कम मात्रा में ही आवश्यक पोषण उपलब्ध कराया जा सकता है।
III. गुणवत्ता एवं संरचना में एकरूपता होने से उर्वरकों की मात्रा का सटीक निर्धारण संभव होता है।
IV. बड़े क्षेत्र में इनका प्रयोग सरल, त्वरित एवं सुविधाजनक होता है।
V. विशिष्ट पोषक तत्वों, विशेषकर सूक्ष्म पोषक तत्वों की तीव्र कमी को शीघ्र दूर करने में प्रभावी होते हैं।

जैविक उर्वरकों की सीमाएँ एवं चुनौतियाँ

I. पोषक तत्वों की सांद्रता कम होने के कारण अधिक मात्रा में सामग्री की आवश्यकता होती है, जिससे परिवहन एवं श्रम लागत बढ़ती है।
II. इनके निर्माण, परिपक्वता एवं भंडारण के लिए पर्याप्त समय तथा स्थान की आवश्यकता होती है।
III. पोषक तत्वों की मात्रा एवं गुणवत्ता में एकरूपता का अभाव हो सकता है।
IV. उच्च उत्पादन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए अकेले पर्याप्त नहीं होते।
V. गुणवत्तापूर्ण जैविक खाद की समय पर एवं पर्याप्त उपलब्धता एक प्रमुख चुनौती है।

रासायनिक उर्वरकों की सीमाएँ एवं चुनौतियाँ

I. असंतुलित एवं अत्यधिक उपयोग से मृदा की संरचना तथा सूक्ष्मजैविक गतिविधियाँ प्रभावित होती हैं।
II. निक्षालन एवं अपवाह के कारण भूजल तथा अन्य जल स्रोतों के प्रदूषित होने की संभावना बढ़ जाती है।
III. दीर्घकाल तक अत्यधिक उपयोग से मृदा की अम्लीयता बढ़ सकती है।
IV. उर्वरकों की बढ़ती कीमतें किसानों की उत्पादन लागत को प्रभावित करती हैं।
V. निरंतर एवं असंतुलित उपयोग से मृदा के सूक्ष्मजैविक तंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

लाभ एवं चुनौतियों का सारांश

दोनों प्रकार के उर्वरकों के लाभ एवं सीमाओं का समग्र विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि इनका संतुलित एवं समन्वित उपयोग ही दोनों की कमियों की प्रभावी पूर्ति कर सकता है।

पक्ष	जैविक उर्वरक	रासायनिक उर्वरक
मुख्य लाभ	मृदा स्वास्थ्य एवं दीर्घकालिक उर्वरता में सुधार	त्वरित एवं सटीक पोषक तत्व उपलब्धता
मुख्य सीमा	धीमा प्रभाव, अधिक मात्रा की आवश्यकता	अत्यधिक उपयोग से मृदा स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव
उपयुक्त भूमिका	आधार-स्तरीय एवं दीर्घकालिक पोषण	पूरक एवं तात्कालिक पोषक आवश्यकता की पूर्ति

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (INM): संतुलन का व्यावहारिक मार्ग

जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों के संतुलित एवं वैज्ञानिक उपयोग की पद्धति को एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (Integrated Nutrient Management; INM) कहा जाता है। इस दृष्टिकोण में मृदा परीक्षण के आधार पर यह निर्धारित किया जाता है कि फसल की कुल पोषक आवश्यकता का कितना भाग जैविक स्रोतों से तथा कितना भाग रासायनिक उर्वरकों से पूरा किया जाए, ताकि दोनों के लाभ प्राप्त हों और उनकी सीमाओं का प्रभाव न्यूनतम रहे।

चित्र 2: एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (INM) के प्रमुख स्रोत

सामान्यतः फसल की कुल नाइट्रोजन आवश्यकता का एक भाग जैविक स्रोतों, जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट एवं हरी खाद, तथा शेष भाग रासायनिक उर्वरकों से पूरा करना एक संतुलित एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण माना जाता है। इसके साथ जैव-उर्वरकों, जैसे राइज़ोबियम, एज़ोटोबैक्टर एवं फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (PSB), का उपयोग पोषक तत्वों की प्राकृतिक उपलब्धता को और बढ़ाता है। यह अनुपात मृदा के

प्रकार, फसल एवं स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार भिन्न हो सकता है, इसलिए अंतिम सिफारिश सदैव मृदा परीक्षण तथा स्थानीय कृषि विज्ञान केन्द्र की अनुशंसाओं के आधार पर ही अपनानी चाहिए।

विभिन्न फसलों के लिए जैविक एवं रासायनिक स्रोतों की सामान्य भूमिका निम्न तालिका में दर्शाई गई है। यह केवल सामान्य मार्गदर्शन है; अंतिम मात्रा मृदा परीक्षण के आधार पर निर्धारित की जानी चाहिए।

फसल वर्ग	जैविक स्रोतों की भूमिका	रासायनिक स्रोतों की भूमिका
अनाज (धान, गेहूँ)	आधार खाद के रूप में गोबर की खाद/कम्पोस्ट	नाइट्रोजन तथा फॉस्फोरस-पोटाश का विभाजित प्रयोग
दलहन	राइज़ोबियम बीज उपचार एवं सीमित मात्रा में जैविक खाद	मुख्यतः फॉस्फोरस एवं सूक्ष्म पोषक तत्व
सब्जियाँ	अधिक मात्रा में कम्पोस्ट/वर्मीकम्पोस्ट	पूरक NPK एवं आवश्यकतानुसार पर्णीय छिड़काव
फलदार वृक्ष	नियमित गोबर की खाद एवं हरी खाद	वृद्धि अवस्था के अनुसार पूरक उर्वरक

संतुलित उपयोग अपनाने में व्यावहारिक चुनौतियाँ

यद्यपि एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (INM) वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यंत प्रभावी पद्धति है, फिर भी इसके व्यापक प्रसार एवं अपनाने में कुछ व्यावहारिक चुनौतियाँ हैं।

I. किसानों में जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों के उचित अनुपात के प्रति पर्याप्त जागरूकता का अभाव।
II. गुणवत्तापूर्ण जैविक खाद एवं जैव-उर्वरकों की सीमित तथा असमान उपलब्धता।
III. जैविक खाद के निर्माण एवं उपयोग में अधिक समय, श्रम तथा स्थान की आवश्यकता।
IV. रासायनिक उर्वरकों की तुलना में जैविक स्रोतों के परिणाम अपेक्षाकृत धीमी गति से प्राप्त होना।
V. मृदा परीक्षण आधारित सटीक उर्वरक सिफारिशों तक सभी किसानों की समान पहुँच का अभाव।

इन चुनौतियों के समाधान के लिए किसानों को व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान करना, प्रदर्शन प्रक्षेत्रों के माध्यम से परिणामों का प्रदर्शन करना, जैविक संसाधनों की उपलब्धता बढ़ाना तथा मृदा स्वास्थ्य कार्ड जैसी योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित करना आवश्यक है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य

भारत जैसे विविध कृषि-जलवायु परिस्थितियों वाले देश में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन की व्यापक संभावनाएँ हैं, क्योंकि यहाँ पशुधन आधारित गोबर की खाद, प्रचुर मात्रा में फसल अवशेष तथा समृद्ध पारंपरिक जैविक ज्ञान उपलब्ध है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) तथा विभिन्न राज्य कृषि विश्वविद्यालय विभिन्न फसलों एवं क्षेत्रों के लिए फसल-विशेष और क्षेत्र-विशेष एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन संबंधी सिफारिशें विकसित कर रहे हैं, जो किसानों को वैज्ञानिक मार्गदर्शन प्रदान करती हैं।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना, जैविक खेती को प्रोत्साहित करने वाली नीतियाँ तथा जैव-उर्वरक उत्पादन इकाइयों की स्थापना जैसी पहलें इस संतुलित दृष्टिकोण को व्यवहार में अपनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। भविष्य में यदि किसानों को स्थानीय भाषा में सरल एवं फसल-विशेष वैज्ञानिक मार्गदर्शन उपलब्ध कराया जाए, तो भारतीय कृषि में उत्पादकता एवं मृदा स्वास्थ्य—दोनों में उल्लेखनीय सुधार संभव है।

निष्कर्ष

जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों के बीच चयन का प्रश्न 'या तो-या' का नहीं, बल्कि 'दोनों का संतुलित एवं वैज्ञानिक उपयोग कैसे किया जाए' का है। रासायनिक उर्वरक फसलों की तात्कालिक पोषक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, जबकि जैविक उर्वरक मृदा के दीर्घकालिक स्वास्थ्य एवं उर्वरता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन दोनों का मृदा परीक्षण के आधार पर तथा एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (INM) के सिद्धांतों के अनुरूप समन्वित उपयोग ही उत्पादन, मृदा स्वास्थ्य एवं पर्यावरण संरक्षण—तीनों उद्देश्यों की एक साथ प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग है।

आवश्यकता इस बात की है कि किसानों को इस संतुलित दृष्टिकोण के महत्व एवं इसकी व्यावहारिक विधियों की जानकारी उपलब्ध कराई जाए, जैविक संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित की जाए तथा नीतिगत स्तर पर इसके व्यापक प्रसार को प्रोत्साहन दिया जाए। यदि अनुसंधान संस्थान, शासन एवं कृषक समुदाय समन्वित रूप से इस दिशा में कार्य करें, तो भारतीय कृषि उच्च उत्पादकता, स्वस्थ मृदा एवं पर्यावरणीय स्थिरता की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति कर सकती है। वास्तव में, संतुलित उर्वरण ही टिकाऊ कृषि की वास्तविक आधारशिला है।

♣♣♣

कार्बन संचयन: जलवायु परिवर्तन से निपटने का प्रभावी उपाय

अनुराधा चौधरी- पीएच.डी. शोधार्थी, मृदा विज्ञान विभाग, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ उत्तर प्रदेश
प्रियल निम- पीएच.डी. शोधार्थी, मृदा विज्ञान विभाग, चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर, उत्तर प्रदेश
सिद्धार्थ मिश्रा- शोधार्थी, मृदा विज्ञान विभाग, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश

जलवायु परिवर्तन आज विश्व के समक्ष सबसे गंभीर चुनौतियों में से एक है, जिसका प्रमुख कारण वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड एवं अन्य ग्रीनहाउस गैसों की बढ़ती सांद्रता है। इस चुनौती से निपटने के लिए केवल ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी लाना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि वायुमंडल से कार्बन को हटाकर उसे स्थिर रूप में संचित करना भी उतना ही आवश्यक है। इसी प्रक्रिया को 'कार्बन संचयन' (Carbon Sequestration) कहा जाता है। कृषि क्षेत्र में कार्बन संचयन की व्यापक संभावनाएँ हैं, क्योंकि मिट्टी, वनस्पति एवं फसल प्रणालियाँ वायुमंडलीय कार्बन को दीर्घकाल तक भूमि में स्थिर रूप से संचित करने में सक्षम हैं। संरक्षण कृषि, वृक्षारोपण, जैविक खेती, बायोचार का उपयोग, फसल अवशेष प्रबंधन तथा कृषि-वानिकी जैसी पद्धतियाँ मृदा एवं वनस्पति में कार्बन संचयन को बढ़ावा देती हैं। प्रस्तुत लेख में कार्बन चक्र एवं कार्बन संचयन की अवधारणा, इसके प्रकार, कृषि आधारित कार्बन संचयन की विभिन्न विधियों, इसके पर्यावरणीय एवं आर्थिक लाभों, कार्बन क्रेडिट की संभावनाओं तथा भारतीय परिप्रेक्ष्य में इसके महत्व एवं चुनौतियों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

प्रस्तावना

औद्योगिक क्रांति के पश्चात मानवीय गतिविधियों, विशेषकर जीवाश्म ईंधनों के दहन, वनों की कटाई तथा गहन कृषि पद्धतियों के कारण वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा निरंतर बढ़ती जा रही है। यह अतिरिक्त कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन एवं नाइट्रस ऑक्साइड जैसी अन्य ग्रीनहाउस गैसों के साथ मिलकर पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि कर रही है, जिसके परिणामस्वरूप असामान्य मौसम, बढ़ता सूखा, अनियमित वर्षा तथा समुद्र के जल स्तर में वृद्धि जैसी गंभीर समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं।

जलवायु परिवर्तन की इस चुनौती से निपटने के दो प्रमुख उपाय हैं— पहला, ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करना तथा दूसरा, वायुमंडल में पहले से उपस्थित कार्बन को हटाकर उसे किसी स्थिर रूप में संचित करना। यही प्रक्रिया 'कार्बन संचयन' (Carbon Sequestration) कहलाती है, जो प्रकृति की स्वाभाविक प्रक्रियाओं, जैसे पौधों द्वारा प्रकाश-संश्लेषण एवं मिट्टी में कार्बन के संचय, के माध्यम से संभव होती है। कृषि क्षेत्र, जिसे पहले मुख्यतः कार्बन उत्सर्जन का स्रोत माना जाता था, आज वैज्ञानिक एवं उचित प्रबंधन के माध्यम से कार्बन संचयन का एक प्रभावी साधन बन सकता है।

यह ध्यान देने योग्य है कि केवल उत्सर्जन में कमी लाना पर्याप्त नहीं है, क्योंकि वायुमंडल में पहले से ही बड़ी मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड संचित हो चुकी है। वैज्ञानिकों का मानना है कि जलवायु लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उत्सर्जन में कमी के साथ-साथ वायुमंडल में पहले से मौजूद कार्बन को सक्रिय रूप से हटाना भी आवश्यक है। ऐसे में कृषि एवं वनस्पति आधारित कार्बन संचयन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि यह अपेक्षाकृत सरल, किफायती एवं

ISSN: 3049-2211

व्यावहारिक समाधान प्रदान करता है, जिसके लिए किसी जटिल औद्योगिक तकनीक की आवश्यकता नहीं होती।

कार्बन चक्र एवं कार्बन संचयन की अवधारणा

प्रकृति में कार्बन निरंतर एक चक्र के माध्यम से विभिन्न घटकों के बीच संचरित होता रहता है, जिसे 'कार्बन चक्र' कहा जाता है। पौधे प्रकाश-संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड ग्रहण कर उसे अपने तने, पत्तियों एवं जड़ों में कार्बनिक पदार्थ के रूप में संचित करते हैं। जब पौधे नष्ट होते हैं अथवा उनके अवशेष मिट्टी में मिलते हैं, तो यह कार्बन मृदा में स्थानांतरित हो जाता है। सामान्य परिस्थितियों में सूक्ष्मजीव इस जैविक पदार्थ का अपघटन कर उसे पुनः कार्बन डाइऑक्साइड के रूप में वायुमंडल में लौटा देते हैं।

'कार्बन संचयन' का अर्थ इस प्राकृतिक चक्र का इस प्रकार प्रबंधन करना है कि कार्बन शीघ्रता से वायुमंडल में वापस न पहुँचे, बल्कि मिट्टी, वनस्पति अथवा अन्य स्थिर माध्यमों में लंबे समय तक सुरक्षित रहे। जब मृदा में जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ाई जाती है, वृक्षारोपण किया जाता है अथवा बायोचार जैसे स्थिर कार्बन रूपों का उपयोग किया जाता है, तब वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड भूमि में दीर्घकाल तक संचित हो जाती है। यही प्रक्रिया जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

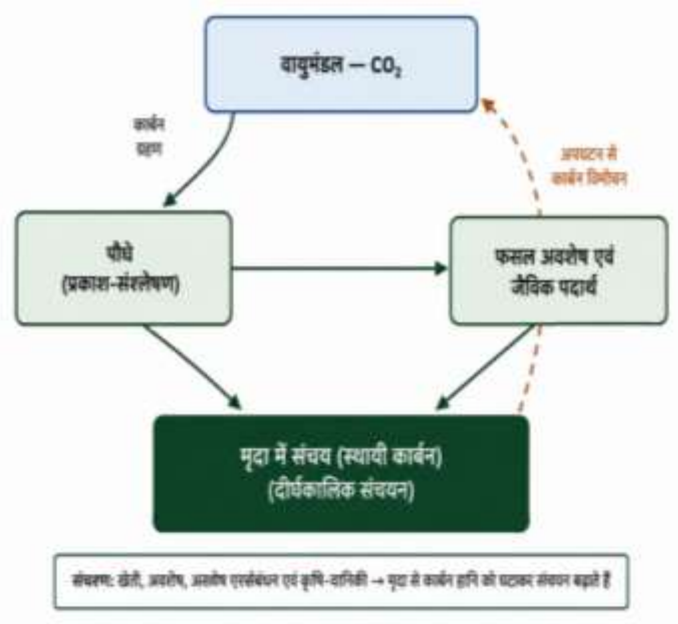

चित्र 1: कृषि में कार्बन चक्र एवं संचयन का मार्ग

चित्र 1 में दर्शाया गया है कि किस प्रकार पौधे वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड ग्रहण कर उसे अपने तने, पत्तियों, जड़ों तथा फसल अवशेषों में कार्बनिक पदार्थ के रूप में संचित करते हैं, जो अंततः मृदा में स्थानांतरित हो जाता है। सामान्य परिस्थितियों में अपघटन के कारण इसका एक भाग पुनः वायुमंडल में लौट जाता है, किंतु संरक्षण कृषि, बायोचार के उपयोग तथा फसल अवशेष प्रबंधन जैसी पद्धतियाँ इस हानि को कम कर कार्बन को मृदा में अधिक समय तक स्थिर बनाए रखती हैं।

कार्बन संचयन के प्रकार

कार्बन संचयन को मुख्यतः तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है, जिन्हें निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

प्रकार	प्रक्रिया	उदाहरण
जैविक (Biological)	पौधों एवं मृदा जीवों द्वारा प्राकृतिक रूप से कार्बन का संचयन	वनस्पति, मृदा जैविक कार्बन, कृषि-वानिकी
भूवैज्ञानिक (Geological)	कार्बन डाइऑक्साइड को भूमिगत चट्टानी परतों में संचित करना	कोयला खदानें, तेल भंडार, गहरी भूगर्भीय संरचनाएँ
तकनीकी (Technological)	औद्योगिक विधियों द्वारा कार्बन को पकड़कर संचित करना	कार्बन कैप्चर एवं स्टोरेज (CCS) संयंत्र

इन तीनों प्रकारों में जैविक कार्बन संचयन कृषि क्षेत्र के लिए सर्वाधिक प्रासंगिक एवं व्यावहारिक है, क्योंकि इसे किसानों की सामान्य कृषि गतिविधियों के माध्यम से अपनाया जा सकता है तथा इसके लिए किसी विशेष औद्योगिक अवसंरचना की आवश्यकता नहीं होती।

कृषि आधारित कार्बन संचयन की विधियाँ

कृषि क्षेत्र में अनेक व्यावहारिक पद्धतियों के माध्यम से मृदा एवं वनस्पति में कार्बन संचयन को बढ़ाया जा सकता है।

संरक्षण कृषि: न्यूनतम जुताई, सतत फसल आवरण तथा फसल चक्र अपनाने से जुताई के कारण होने वाली कार्बन हानि कम होती है और मृदा में जैविक कार्बन का संचयन बढ़ता है।

फसल अवशेष प्रबंधन: फसल अवशेषों को जलाने के बजाय मिट्टी में मिलाने से कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है, जो अपघटित होकर मृदा के जैविक कार्बन में परिवर्तित हो जाता है।

बायोचार का उपयोग: फसल अवशेषों से नियंत्रित ताप पर तैयार किया गया बायोचार अत्यंत स्थिर कार्बन का स्रोत है, जो मृदा में लंबे समय तक बिना विघटित हुए बना रहता है।

कृषि-वानिकी (Agroforestry): खेतों की मेड़ों तथा अनुपयोगी भूमि पर वृक्षारोपण करने से वृक्षों के तने, शाखाओं एवं जड़ों में दीर्घकाल तक कार्बन संचित रहता है।

ISSN: 3049-2211

जैविक खेती एवं हरी खाद: गोबर की खाद, कम्पोस्ट तथा हरी खाद वाली फसलों के उपयोग से मृदा में जैविक कार्बन की मात्रा एवं सूक्ष्मजीवी गतिविधियाँ दोनों बढ़ती हैं।

आवरण फसलें: मुख्य फसल के बीच अथवा खाली मौसम में आवरण फसलें उगाने से मृदा निरंतर हरित आवरण से ढकी रहती है, जिससे कार्बन की हानि कम होती है और मृदा में जैविक पदार्थ का संचयन बढ़ता है।

इन सभी पद्धतियों का मूल उद्देश्य मृदा को अधिकतम समय तक जीवित वनस्पति आवरण एवं जैविक पदार्थ से समृद्ध बनाए रखना है, ताकि कार्बन वायुमंडल में लौटने के बजाय भूमि में दीर्घकाल तक स्थिर रह सके।

इन पद्धतियों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इन्हें अपनाने के लिए किसानों को अपनी संपूर्ण कृषि प्रणाली में बड़े परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं होती। अधिकांश उपाय, जैसे न्यूनतम जुताई तथा फसल अवशेषों को न जलाना, वर्तमान कृषि पद्धति में क्रमिक सुधार के रूप में आसानी से अपनाए जा सकते हैं। इस प्रकार, कार्बन संचयन कोई अलग कृषि गतिविधि नहीं, बल्कि दैनिक कृषि कार्यों में छोटे-छोटे वैज्ञानिक सुधारों के माध्यम से प्राप्त किया जा सकने वाला व्यावहारिक एवं प्रभावी उपाय है।

चित्र 2: मृदा कार्बन संचयन बढ़ाने वाली प्रमुख कृषि पद्धतियाँ

विभिन्न कृषि पद्धतियों की कार्बन संचयन क्षमता एवं उनके प्रमुख लाभ अलग-अलग होते हैं। इन्हें संक्षेप में निम्न तालिका में दर्शाया गया है, जो किसानों को अपनी परिस्थितियों के अनुसार उपयुक्त पद्धति के चयन में सहायता प्रदान कर सकती है।

पद्धति	कार्बन संचयन क्षमता	अतिरिक्त लाभ
संरक्षण कृषि	मध्यम से उच्च	मृदा संरचना एवं नमी संरक्षण में सुधार
बायोचार	उच्च एवं दीर्घकालिक	दीर्घकाल तक स्थिर कार्बन, मृदा उर्वरता में वृद्धि
फसल अवशेष प्रबंधन	मध्यम	पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण एवं अवशेष जलाने से बचाव
कृषि-वानिकी	उच्च	लकड़ी, फल एवं अतिरिक्त आय का स्रोत
जैविक खेती/हरी खाद	मध्यम	सूक्ष्मजैविक गतिविधि एवं मृदा जैविक कार्बन में वृद्धि

मृदा: एक विशाल कार्बन भंडार

मृदा को प्रायः कम आँका जाता है, जबकि इसमें वायुमंडल एवं वनस्पति की तुलना में कहीं अधिक कार्बन संचित करने की क्षमता होती है। विश्व की मृदाओं में वायुमंडल की अपेक्षा लगभग दो से तीन गुना अधिक कार्बन संचित है। यही कारण है कि मृदा प्रबंधन में सुधार करके जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया जा सकता है।

दुर्भाग्यवश, सघन जुताई, फसल अवशेषों को जलाने तथा असंतुलित उर्वरण जैसी कृषि पद्धतियों के कारण अनेक कृषि मृदाएँ अपने प्राकृतिक कार्बन भंडार का बड़ा भाग खो चुकी हैं। अच्छी बात यह है कि वैज्ञानिक एवं उचित प्रबंधन अपनाकर इस खोए हुए कार्बन को पुनः मृदा में संचित किया जा सकता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि कृषि योग्य भूमि में जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ाकर वायुमंडलीय CO_2 की पर्याप्त मात्रा को संतुलित किया जा सकता है, जिससे कृषि जलवायु परिवर्तन के समाधान का एक महत्वपूर्ण भाग बन सकती है।

मृदा में कार्बन संचयन एक क्रमिक एवं दीर्घकालिक प्रक्रिया है। मृदा के जैविक कार्बन में एक-दो वर्षों के भीतर उल्लेखनीय परिवर्तन की अपेक्षा नहीं की जा सकती। निरंतर एवं वैज्ञानिक प्रबंधन पद्धतियों को कई वर्षों तक अपनाने पर ही स्पष्ट एवं मापने योग्य वृद्धि दिखाई देती है। इसलिए किसानों के लिए आवश्यक है कि वे धैर्य एवं निरंतरता के साथ इन पद्धतियों को अपनाएँ, क्योंकि इससे न केवल जलवायु परिवर्तन के प्रभाव कम होते हैं, बल्कि मृदा की दीर्घकालिक उर्वरता भी सुदृढ़ होती है।

कार्बन संचयन के बहुआयामी लाभ

कार्बन संचयन का सबसे प्रत्यक्ष लाभ जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करना है। इसके साथ-साथ यह कृषि, मृदा एवं किसानों

ISSN: 3049-2211

को अनेक अतिरिक्त लाभ भी प्रदान करता है, जिन्हें निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

लाभ का क्षेत्र	विवरण
जलवायु	वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड में कमी एवं ग्रीनहाउस प्रभाव का नियंत्रण
मृदा स्वास्थ्य	जैविक कार्बन, मृदा संरचना, जल धारण क्षमता एवं सूक्ष्मजैविक गतिविधियों में सुधार
उत्पादकता	बेहतर मृदा स्वास्थ्य के कारण फसल की उपज एवं गुणवत्ता में वृद्धि
जल संरक्षण	जल धारण क्षमता बढ़ने से सिंचाई की आवश्यकता में कमी
आर्थिक अवसर	कार्बन क्रेडिट के माध्यम से अतिरिक्त आय की संभावना

इस प्रकार, कार्बन संचयन केवल एक पर्यावरणीय उपाय नहीं है, बल्कि मृदा स्वास्थ्य, कृषि उत्पादकता एवं किसानों की आय—तीनों को सुदृढ़ करने वाली एक बहुआयामी रणनीति है।

कार्बन क्रेडिट: किसानों के लिए नया अवसर

कार्बन क्रेडिट एक ऐसा प्रमाणपत्र है, जो यह दर्शाता है कि किसी व्यक्ति, संस्था अथवा किसान ने अपनी गतिविधियों के माध्यम से एक निश्चित मात्रा में CO_2 को वायुमंडल से हटाकर स्थिर रूप में संचित किया है। इन क्रेडिटों का कार्बन बाज़ार में व्यापार किया जा सकता है, जिससे किसानों को अतिरिक्त आय प्राप्त होने की संभावना रहती है।

यदि किसान संरक्षण कृषि, वृक्षारोपण, बायोचार अथवा जैविक खेती जैसी पद्धतियाँ अपनाकर अपनी मृदा में कार्बन संचयन बढ़ाते हैं, तो आवश्यक सत्यापन प्रक्रिया के बाद उन्हें कार्बन क्रेडिट प्राप्त हो सकते हैं। विश्व स्तर पर अनेक कंपनियाँ एवं संस्थाएँ अपने कार्बन उत्सर्जन की भरपाई के लिए ऐसे क्रेडिट खरीदने में रुचि रखती हैं। यद्यपि भारत में यह व्यवस्था अभी विकासशील अवस्था में है, फिर भी भविष्य में यह छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन सकती है, बशर्ते इसकी प्रक्रिया सरल, पारदर्शी एवं किसान-हितैषी हो।

कार्बन क्रेडिट प्राप्त करने की प्रक्रिया में किसानों के समूह अथवा किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) की भागीदारी अधिक व्यावहारिक मानी जाती है, क्योंकि व्यक्तिगत किसान के लिए सत्यापन एवं दस्तावेज़ीकरण अपेक्षाकृत जटिल एवं महँगा हो सकता है। सामूहिक स्तर पर कार्य करने से यह प्रक्रिया सरल होने के साथ-साथ लेन-देन की लागत भी कम होती है। भविष्य में उपग्रह आधारित मृदा कार्बन मापन जैसी डिजिटल तकनीकों के विकास से यह व्यवस्था और अधिक पारदर्शी तथा किसानों के लिए सुलभ होने की संभावना है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य एवं चुनौतियाँ

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में कार्बन संचयन की अपार संभावनाएँ हैं, क्योंकि यहाँ की विशाल कृषि भूमि, विविध फसल प्रणालियाँ तथा फसल अवशेषों की प्रचुर उपलब्धता इसके लिए अनुकूल आधार प्रदान करती हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) तथा विभिन्न कृषि विश्वविद्यालय संरक्षण कृषि, बायोचार एवं कृषि-वानिकी जैसे विषयों पर निरंतर अनुसंधान कर रहे हैं, जो मृदा कार्बन बढ़ाने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

फिर भी, इसके व्यापक प्रसार एवं क्रियान्वयन में अनेक चुनौतियाँ हैं। किसानों में कार्बन संचयन एवं इसके लाभों के प्रति सीमित जागरूकता, नई पद्धतियों को अपनाने में प्रारंभिक संकोच, कार्बन क्रेडिट प्रणाली की जटिलता तथा कार्बन मापन एवं सत्यापन से जुड़ी तकनीकी एवं वित्तीय चुनौतियाँ प्रमुख हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए किसानों को सरल भाषा में प्रशिक्षण देना, प्रदर्शन प्रक्षेत्र स्थापित करना, कार्बन क्रेडिट प्रक्रिया को सरल एवं सुलभ बनाना तथा उपयुक्त नीतिगत प्रोत्साहन प्रदान करना आवश्यक है।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन के वर्तमान परिदृश्य में कार्बन संचयन एक प्रभावी, प्राकृतिक एवं व्यावहारिक उपाय है, जिसे कृषि के माध्यम से सफलतापूर्वक अपनाया जा सकता है। संरक्षण कृषि, फसल अवशेष प्रबंधन, बायोचार, कृषि-वानिकी तथा जैविक खेती जैसी पद्धतियों को अपनाकर किसान न केवल वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड को कम करने में योगदान दे सकते हैं, बल्कि अपनी मृदा के स्वास्थ्य, फसल उत्पादकता तथा संभावित रूप से आय में भी वृद्धि कर सकते हैं। यही कारण है कि कार्बन संचयन को पर्यावरण संरक्षण एवं कृषि विकास—दोनों के लिए 'दोहरे लाभ' वाली रणनीति माना जाता है।

आवश्यकता इस बात की है कि किसानों को इन पद्धतियों की पर्याप्त जानकारी, नियमित प्रशिक्षण तथा प्रभावी नीतिगत सहयोग उपलब्ध कराया जाए। साथ ही, कार्बन क्रेडिट जैसी व्यवस्थाओं को अधिक सरल, पारदर्शी एवं किसानों के लिए सुलभ बनाया जाए। यदि अनुसंधान संस्थान, शासन एवं कृषक समुदाय मिलकर इस दिशा में समन्वित प्रयास करें, तो भारतीय कृषि जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध वैश्विक प्रयासों में महत्वपूर्ण एवं सकारात्मक योगदान दे सकती है। वास्तव में, स्वस्थ एवं कार्बन-समृद्ध मिट्टी ही स्वस्थ पर्यावरण और सुरक्षित भविष्य की सुदृढ़ आधारशिला है।

♣♣♣

जैव-चार (Biochar): मृदा सुधार एवं कार्बन संरक्षण का नवीन विकल्प

दिव्या साहू- शोधार्थी (रिसर्च स्कॉलर), मृदा विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़
जय प्रकाश- शोधार्थी (रिसर्च स्कॉलर), मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, कृषि संकाय, वडूरा,
शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कश्मीर, जम्मू एवं कश्मीर

जैव-चार (Biochar) प्राचीन कृषि ज्ञान एवं आधुनिक विज्ञान का एक प्रभावी समन्वय है। यह बायोमास को ऑक्सीजन-रहित (या अत्यल्प ऑक्सीजन) वातावरण में उच्च तापमान पर पायरोलिसिस (Pyrolysis) प्रक्रिया द्वारा तैयार किया जाने वाला कार्बन-समृद्ध पदार्थ है। वर्तमान समय में मृदा अवक्रमण, जलवायु परिवर्तन तथा जल संकट जैसी चुनौतियों के बीच जैव-चार टिकाऊ कृषि के लिए एक बहुआयामी समाधान के रूप में उभर रहा है। यह मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में सुधार करने के साथ-साथ दीर्घकालिक कार्बन संरक्षण (Carbon Sequestration) के माध्यम से ग्रीनहाउस गैसों के प्रभाव को कम करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रस्तुत लेख में जैव-चार की उत्पादन प्रक्रिया, गुण, मृदा स्वास्थ्य एवं फसल उत्पादन पर इसके प्रभाव, कार्बन संरक्षण में इसकी भूमिका तथा भारतीय कृषि में इसकी संभावनाओं पर विस्तार से चर्चा की गई है।

प्रस्तावना

लगभग 2,000 वर्ष पूर्व, अमेज़न नदी के तट पर रहने वाली आदिवासी सभ्यताओं ने कृषि में एक अनूठी तकनीक विकसित की। उन्होंने जली हुई लकड़ी एवं अन्य जैविक पदार्थों को मिट्टी में मिलाकर अत्यंत उपजाऊ काली मिट्टी का निर्माण किया, जिसे पुर्तगाली भाषा में 'टेरा प्रेटा (Terra Preta)' कहा जाता है। आश्चर्यजनक रूप से, हजारों वर्ष बाद भी इन मिट्टियों की उर्वरता एवं कार्बनिक कार्बन की मात्रा सामान्य मृदाओं की तुलना में अधिक पाई जाती है। यही उदाहरण जैव-चार के दीर्घकालिक प्रभाव का सबसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रमाण माना जाता है।

आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों ने इस पारंपरिक ज्ञान को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया तथा इसे 'जैव-चार (Biochar)' नाम दिया। जैव-चार बायोमास—जैसे फसल अवशेष, लकड़ी, पशु अपशिष्ट एवं अन्य कार्बनिक पदार्थों—को नियंत्रित ऑक्सीजन-रहित वातावरण में 300–700°C तापमान पर पायरोलिसिस प्रक्रिया द्वारा तैयार किया जाने वाला कार्बन-समृद्ध ठोस पदार्थ है। इसकी सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें उपस्थित स्थायी कार्बन मृदा में लंबे समय तक स्थिर रहता है, जिससे कार्बन संरक्षण के साथ-साथ मृदा की गुणवत्ता में भी सुधार होता है।

भारत में प्रतिवर्ष लगभग 500 मिलियन टन फसल अवशेष उत्पन्न होते हैं, जिनका एक बड़ा भाग खेतों में जला दिया जाता है। इससे कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) सहित अनेक ग्रीनहाउस गैसों एवं वायु प्रदूषकों का उत्सर्जन होता है। यदि इन अवशेषों को जलाने के स्थान पर पायरोलिसिस के माध्यम से जैव-चार में परिवर्तित किया जाए, तो एक ओर वायु प्रदूषण एवं कार्बन उत्सर्जन में कमी लाई जा सकती है और दूसरी ओर मृदा उर्वरता, जल धारण क्षमता तथा कृषि उत्पादकता में सुधार किया जा सकता है।

जैव-चार उत्पादन की प्रक्रिया

1 पायरोलिसिस: मूल वैज्ञानिक प्रक्रिया

पायरोलिसिस (Pyrolysis) एक तापीय-रासायनिक (Thermochemical) प्रक्रिया है, जिसमें जैविक पदार्थों को ऑक्सीजन की अनुपस्थिति अथवा अत्यल्प ऑक्सीजन की स्थिति में उच्च तापमान

ISSN: 3049-2211

पर गर्म किया जाता है। इस प्रक्रिया के दौरान बायोमास का विघटन होकर मुख्यतः जैव-चार (Biochar), जैव-तेल (Bio-oil) तथा सिंथेटिक गैस (Syngas) का निर्माण होता है। प्राप्त उत्पादों का अनुपात प्रयुक्त तापमान, बायोमास के प्रकार तथा प्रक्रिया की अवधि पर निर्भर करता है।

तापमान एवं प्रक्रिया की गति के आधार पर पायरोलिसिस को मुख्यतः तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है—

- **धीमी पायरोलिसिस (Slow Pyrolysis):** अपेक्षाकृत कम तापमान (300–600°C) एवं अधिक समय तक चलने वाली प्रक्रिया, जिसमें जैव-चार का उत्पादन सर्वाधिक होता है।
- **तीव्र पायरोलिसिस (Fast Pyrolysis):** उच्च तापमान एवं कम समय में संचालित प्रक्रिया, जिसका मुख्य उद्देश्य जैव-तेल का उत्पादन होता है।
- **गैसीकरण (Gasification):** अत्यधिक तापमान एवं सीमित ऑक्सीजन की उपस्थिति में होने वाली प्रक्रिया, जिसमें ज्वलनशील गैसों का उत्पादन प्रमुख होता है।

कृषि एवं मृदा सुधार के उद्देश्य से धीमी पायरोलिसिस को सर्वाधिक उपयुक्त माना जाता है, क्योंकि इस प्रक्रिया से उच्च कार्बन सामग्री, अधिक स्थायित्व तथा बेहतर संरचनात्मक गुणों वाला जैव-चार प्राप्त होता है, जो मृदा सुधार एवं दीर्घकालिक कार्बन संरक्षण के लिए अत्यंत प्रभावी सिद्ध होता है।

चित्र 1: जैव-चार उत्पादन प्रक्रिया — बायोमास से जैव-चार तक के चरण एवं उप-उत्पाद

2. कच्चे माल (Feedstock) का चयन

जैव-चार की गुणवत्ता, संरचना एवं प्रभावशीलता मुख्यतः उसके कच्चे माल (Feedstock) पर निर्भर करती है। विभिन्न प्रकार के बायोमास से तैयार जैव-चार के भौतिक एवं रासायनिक गुण अलग-अलग होते हैं, जिसके कारण उनका मृदा पर प्रभाव भी भिन्न हो सकता है। उदाहरण के लिए, लकड़ी आधारित जैव-चार में सामान्यतः कार्बन की मात्रा अधिक होती है तथा यह मृदा के pH में सुधार एवं दीर्घकालिक कार्बन संरक्षण के लिए अधिक उपयुक्त माना जाता है। इसके विपरीत, पशु अपशिष्ट आधारित जैव-चार में पोषक तत्वों की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होने के कारण यह पौधों को पोषण उपलब्ध कराने में अधिक प्रभावी होता है।

फसल अवशेष, धान की भूसी (Rice Husk), गन्ने की खोई (Bagasse), मक्का के डंठल, लकड़ी के अवशेष तथा अन्य कृषि अपशिष्ट भी जैव-चार निर्माण के लिए उपयुक्त कच्चे माल हैं। इसलिए कच्चे माल का चयन जैव-चार के अपेक्षित उपयोग तथा स्थानीय संसाधनों की उपलब्धता को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

3. भारतीय परिप्रेक्ष्य में उत्पादन इकाइयाँ

भारत में जैव-चार उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न स्तरों पर अनेक प्रकार की उत्पादन इकाइयाँ विकसित की जा रही हैं।

- **कम लागत वाले स्थानीय भट्ठे (TLUD – Top Lit Updraft Gasifier):** ग्रामीण क्षेत्रों एवं छोटे किसानों के लिए उपयुक्त।
- **किसान उत्पादक संगठन (FPO) स्तर की इकाइयाँ:** लगभग 500 किलोग्राम प्रतिदिन क्षमता वाली सामुदायिक उत्पादन इकाइयाँ।
- **ICAR एवं राज्य कृषि विश्वविद्यालयों की प्रदर्शन इकाइयाँ:** प्रशिक्षण, अनुसंधान एवं तकनीकी प्रसार के उद्देश्य से स्थापित।
- **कृषि-उद्योग आधारित उत्पादन:** विशेष रूप से धान मिलों से प्राप्त **राइस हस्क (Rice Husk)** तथा अन्य कृषि अवशेषों का उपयोग कर जैव-चार निर्माण।

जैव-चार के भौतिक एवं रासायनिक गुण

जैव-चार की उपयोगिता उसकी विशिष्ट भौतिक, रासायनिक एवं संरचनात्मक विशेषताओं पर आधारित है, जो इसे अन्य कार्बनिक संशोधकों से अलग बनाती हैं।

I. **अत्यधिक सरंध्र (Porous) संरचना:** जैव-चार की सूक्ष्म छिद्रयुक्त संरचना के कारण 1 ग्राम जैव-चार का सतही क्षेत्रफल लगभग **200–400 वर्ग मीटर** तक हो सकता है, जिससे जल, पोषक तत्व एवं लाभकारी सूक्ष्मजीवों के लिए उपयुक्त स्थान उपलब्ध होता है।

II. **उच्च कैटायन विनिमय क्षमता (Cation Exchange Capacity; CEC):** सामान्यतः **40–150 cmol kg^{-1}** तक, जिससे मृदा की पोषक तत्वों को धारण एवं उपलब्ध कराने की क्षमता में वृद्धि होती है।

III. **उच्च एवं स्थिर कार्बन सामग्री:** जैव-चार में लगभग **60–90 प्रतिशत** स्थिर कार्बन पाया जाता है, जो दीर्घकाल तक मृदा में सुरक्षित रह सकता है।

IV. **क्षारीय प्रकृति (pH 7.5–10):** यह विशेषता अम्लीय मृदाओं की अम्लता कम करने तथा मृदा अभिक्रिया (Soil Reaction) को संतुलित करने में सहायक होती है।

V. **उच्च जल धारण क्षमता:** जैव-चार अपने भार का लगभग **5–8 गुना** जल धारण करने में सक्षम होता है, जिससे मृदा में नमी संरक्षण एवं जल उपयोग दक्षता में सुधार होता है।

मृदा सुधार में जैव-चार के लाभ

1. बहुआयामी मृदा सुधार

जैव-चार मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक तीनों गुणों में एक साथ सुधार करने की क्षमता रखता है। इसकी सरंध्र संरचना मृदा की संरचना, जल धारण क्षमता एवं वायु संचार को बेहतर बनाती है। उच्च CEC के कारण यह पोषक तत्वों के निक्षालन को कम करके उनकी उपलब्धता बढ़ाता है, जबकि इसकी स्थिर कार्बन संरचना मृदा में जैविक कार्बन के संचयन को बढ़ावा देती है। इसके अतिरिक्त, जैव-चार लाभकारी सूक्ष्मजीवों के लिए अनुकूल सूक्ष्म आवास (Microhabitat) उपलब्ध कराता है, जिससे मृदा की जैविक सक्रियता एवं पोषक तत्वों के चक्रण में सुधार होता है।

इन संयुक्त प्रभावों के कारण जैव-चार मृदा स्वास्थ्य, फसल उत्पादकता तथा पर्यावरणीय स्थिरता में महत्वपूर्ण योगदान देता है। जैव-चार के छह प्रमुख लाभ क्षेत्रों को चित्र 1 में संक्षेप में दर्शाया गया है।

जल धारण क्षमता 30–40% वृद्धि	**pH सुधार** अम्लीय मृदा उपचार	**कार्बन संग्रहण** 100–200 वर्ष स्थायित्व
पोषक उपलब्धता CEC में 20–35% वृद्धि	**जैव विविधता** मृदा सूक्ष्मजीव वृद्धि	**उत्पादकता वृद्धि** 10–42% अधिक उपज

तालिका 1: जैव-चार के मृदा सुधार में छह प्रमुख लाभ क्षेत्र

2. भौतिक गुणों में सुधार

जैव-चार की अत्यधिक सरंध्र (Porous) संरचना मृदा के कणों के बीच उपयुक्त रिक्त स्थान (Pore Space) का निर्माण करती है, जिससे वायु संचार, जल का प्रवेश (Infiltration) तथा जल धारण क्षमता में उल्लेखनीय सुधार होता है। बलुई मृदाओं में यह जल धारण क्षमता को लगभग 30–40 प्रतिशत तक बढ़ाने में सहायक पाया गया है, जबकि चिकनी (Clay) मृदाओं में यह मृदा के कड़ापन एवं सघनता को कम करके जड़ों के विकास के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, जैव-चार मृदा के बल्क घनत्व (Bulk Density) को कम करता है, जिससे जुताई अपेक्षाकृत आसान होती है तथा कृषि कार्यों में ऊर्जा की आवश्यकता कम होकर लगभग 10–15 प्रतिशत तक ऊर्जा की बचत संभव हो सकती है।

3. रासायनिक गुणों में सुधार

जैव-चार मृदा के रासायनिक गुणों में भी महत्वपूर्ण सुधार करता है। अम्लीय मृदाओं ($pH < 6.0$) में इसके प्रयोग से मृदा का pH सामान्यतः 0.5–1.5 इकाई तक बढ़ सकता है, जिससे एल्युमिनियम (Al) एवं मैंगनीज़ (Mn) की विषाक्तता कम होती है तथा पौधों के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धता में सुधार होता है।

जैव-चार की उच्च कैटायन विनिमय क्षमता (CEC) के कारण नाइट्रोजन, पोटाश तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों का मृदा से रिसाव (Leaching) कम होता है और उनकी उपलब्धता लंबे समय तक बनी रहती है। विभिन्न अध्ययनों से यह भी ज्ञात हुआ है कि जैव-चार के प्रयोग से नाइट्रोजन उपयोग दक्षता (Nitrogen Use Efficiency; NUE) में लगभग 20–35 प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती है, जिससे उर्वरकों की प्रभावशीलता बढ़ती है तथा पोषक तत्वों की हानि कम होती है।

4. जैविक गुणों में सुधार

जैव-चार की सूक्ष्म छिद्रयुक्त संरचना मृदा के लाभकारी सूक्ष्मजीवों—जैसे बैक्टीरिया, कवक एवं माइकोराइज़ा—के लिए अनुकूल सूक्ष्म आवास (Microhabitat) प्रदान करती है। परिणामस्वरूप सूक्ष्मजीवों की संख्या एवं सक्रियता में वृद्धि होती है, जिससे मृदा की जैविक उर्वरता सुदृढ़ होती है।

अध्ययनों में पाया गया है कि जैव-चार के प्रयोग से माइकोराइज़ल उपनिवेशण में लगभग 40–60 प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती है। इसके अतिरिक्त, यह मृदा एन्ज़ाइमों की सक्रियता को बढ़ावा देता है तथा कार्बन एवं पोषक तत्वों के चक्रण (Nutrient Cycling) को अधिक प्रभावी बनाता है, जिससे दीर्घकाल में मृदा स्वास्थ्य एवं फसल उत्पादकता दोनों में सुधार होता है।

कार्बन संरक्षण एवं जलवायु परिवर्तन में जैव-चार की भूमिका

1. कार्बन संरक्षण (Carbon Sequestration)

जैव-चार की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसकी दीर्घकालिक कार्बन संरक्षण क्षमता है। पौधे प्रकाश-संश्लेषण के माध्यम से वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) अवशोषित करके उसे अपने जैवभार (Biomass) में संचित करते हैं। सामान्य परिस्थितियों में यही जैवभार जब सड़ता है अथवा जला दिया जाता है, तो इसमें संचित अधिकांश कार्बन पुनः CO_2 के रूप में वायुमंडल में लौट जाता है। इसके विपरीत, यदि उसी बायोमास को पायरोलिसिस द्वारा जैव-चार में परिवर्तित कर मृदा में मिलाया जाए, तो उसका एक बड़ा भाग स्थिर कार्बन (Stable Carbon) के रूप में दशकों से लेकर सैकड़ों वर्षों तक मृदा में सुरक्षित रह सकता है। इस प्रकार जैव-चार प्राकृतिक कार्बन चक्र को संशोधित कर वायुमंडल में कार्बन की वापसी को काफी हद तक कम कर देता है।

चित्र 3 में सामान्य बायोमास, जैव-चार तथा जीवाश्म ईंधन के कार्बन चक्र की तुलनात्मक रूपरेखा प्रस्तुत की गई है, जिससे स्पष्ट होता है कि जैव-चार ऋणात्मक कार्बन संतुलन (Negative Carbon Balance) स्थापित करने में सक्षम है, जबकि जीवाश्म ईंधन का उपयोग वायुमंडल में अतिरिक्त कार्बन जोड़ता है।

पहलू	सामान्य बायोमास	जैव-चार (Biochar)	जीवाश्म ईंधन
कार्बन का स्रोत	प्रकाश-संश्लेषण द्वारा हाल ही में अवशोषित वायुमंडलीय	प्रकाश-संश्लेषण द्वारा अवशोषित CO_2, जिसे पायरोलिसिस द्वारा	लाखों वर्षों से भूगर्भ में संचित कार्बन

ISSN: 3049-2211

	CO_2	स्थिर किया जाता है	
प्रमुख प्रक्रिया	पौधों की वृद्धि → बायोमास निर्माण → सड़न/दहन	पौधों की वृद्धि → पायरोलिसिस → जैव-चार निर्माण	जीवाश्म ईंधन का दहन
कार्बन का अंतिम भाग्य	अधिकांश कार्बन पुनः CO_2 के रूप में वायुमंडल में लौटता है	कार्बन का बड़ा भाग स्थिर रूप में मृदा में संरक्षित रहता है	संचित कार्बन सीधे CO_2 के रूप में वायुमंडल में उत्सर्जित होता है
कार्बन का स्थायित्व	अल्पकालिक (दिनों से कुछ वर्षों तक)	दीर्घकालिक (लगभग 100–200 वर्ष या उससे अधिक)	लाखों वर्षों तक संचित, दहन के बाद तुरंत उत्सर्जित
नेट कार्बन प्रभाव	**लगभग शून्य (0)**	**ऋणात्मक (–)**	**धनात्मक (+)**
दीर्घकालिक कार्बन संरक्षण	✗ नहीं	✓ हाँ	✗ नहीं
जलवायु परिवर्तन पर प्रभाव	सीमित (यदि अवशेष न जलाए जाएँ)	जलवायु परिवर्तन के शमन (Mitigation) में सहायक	जलवायु परिवर्तन का प्रमुख कारण

तालिका 2. सामान्य बायोमास, जैव-चार एवं जीवाश्म ईंधन के कार्बन चक्र तथा जलवायु प्रभाव की तुलनात्मक प्रस्तुति।

2. IPCC एवं वैश्विक परिप्रेक्ष्य

जलवायु परिवर्तन पर अंतर-सरकारी पैनल (IPCC) ने जैव-चार को संभावित ऋणात्मक उत्सर्जन प्रौद्योगिकी (Negative Emission Technology) के रूप में मान्यता दी है। उपलब्ध वैज्ञानिक आकलनों के अनुसार, यदि वैश्विक स्तर पर जैव-चार का व्यापक उपयोग किया जाए, तो प्रतिवर्ष लगभग 0.5–2.0 गीगाटन CO_2 समतुल्य (CO_2e) कार्बन को दीर्घकाल के लिए वायुमंडल से हटाकर मृदा में संरक्षित किया जा सकता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में, जहाँ बायोमास संसाधनों की प्रचुर उपलब्धता है, इसकी संभावनाएँ और भी अधिक हैं।

प्रमुख तथ्य निम्नलिखित हैं—

- 1 टन जैव-चार के उत्पादन एवं मृदा में उपयोग से लगभग 2.5–3.0 टन CO_2 समतुल्य (CO_2e) कार्बन का दीर्घकालिक संरक्षण संभव माना जाता है।
- भारत की लगभग 140 मिलियन हेक्टेयर कृषि भूमि में यदि औसतन 5 टन प्रति हेक्टेयर जैव-चार का उपयोग किया जाए, तो लगभग 1.75 गीगाटन CO_2 समतुल्य कार्बन संरक्षण की सैद्धांतिक क्षमता विकसित की जा सकती है।
- वैश्विक कार्बन क्रेडिट बाज़ार में जैव-चार आधारित कार्बन संरक्षण परियोजनाओं की माँग लगातार बढ़ रही है, जिससे भविष्य में किसानों के लिए अतिरिक्त आय अर्जित करने की नई संभावनाएँ विकसित हो सकती हैं।

स्रोत एवं अनुप्रयोग: मानक सारणियाँ

1. बायोमास स्रोतों के अनुसार जैव-चार के गुण

जैव-चार के गुण उसके निर्माण में प्रयुक्त बायोमास स्रोत (Feedstock) तथा पायरोलिसिस तापमान पर निर्भर करते हैं। विभिन्न स्रोतों से निर्मित जैव-चार की कार्बन मात्रा, pH पर प्रभाव तथा उपयोगिता में उल्लेखनीय अंतर पाया जाता है। प्रमुख स्रोतों से प्राप्त जैव-चार के सामान्य गुण एवं उनके उपयोग निम्न तालिका में प्रस्तुत हैं।

बायोमास स्रोत	तापमान (°C)	कार्बन (% C)	pH पर प्रभाव	मुख्य उपयोग
धान की पुआल	400–500	45–55	+0.5 से +1.5	हल्की मृदाओं में सुधार
गेहूँ का भूसा	400–500	50–60	+0.8 से +1.2	जल धारण क्षमता में वृद्धि
लकड़ी (हार्डवुड)	500–700	65–80	+1.0 से +2.0	अम्लीय मृदाओं का सुधार
पशु अपशिष्ट	300–400	35–50	+1.5 से +3.0	पोषक तत्वों की आपूर्ति
नारियल का खोल	600–700	75–85	+0.5 से +1.0	उच्च CEC एवं दीर्घकालिक कार्बन संरक्षण
हरी खाद (ढैंचा)	350–450	40–55	+0.5 से +1.5	मृदा जैव विविधता में वृद्धि
मक्के की जड़ें	400–500	55–65	+0.8 से +1.5	NPK उपलब्धता में सुधार

तालिका 3. विभिन्न बायोमास स्रोतों से निर्मित जैव-चार के प्रमुख गुण एवं उपयोग।

2. फसल एवं मृदा के अनुसार अनुशंसित मात्रा

जैव-चार की प्रभावशीलता उसकी मात्रा, प्रयोग विधि तथा प्रयोग के समय पर निर्भर करती है। विभिन्न फसलों एवं मृदा प्रकारों के लिए अनुशंसित मात्रा निम्न तालिका में दी गई है।

फसल / मृदा प्रकार	अनुशंसित मात्रा	प्रयोग विधि	सर्वोत्तम समय	अपेक्षित लाभ
धान (सिंचित)	5–10 t ha^{-1}	भूमि में मिलाएँ	रोपाई से पूर्व	उत्पादन में 15–25%

				तक वृद्धि
गेहूँ (असिंचित)	3–8 t ha^{-1}	बुवाई से पूर्व मिट्टी में मिलाएँ	खरीफ फसल के बाद	जल उपयोग दक्षता में वृद्धि
सब्जियाँ	10–20 t ha^{-1}	क्यारियों में मिलाएँ	रोपण से पूर्व	पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि
बाग-बगीचे	3–5 kg प्रति पौधा	थाले में मिलाएँ	वर्षा ऋतु से पूर्व	जड़ विकास एवं पौध वृद्धि
अम्लीय मृदाएँ	10–15 t ha^{-1}	जुताई के समय मिलाएँ	फसल कटाई के बाद	pH में 0.5–1.5 इकाई तक वृद्धि
बलुई (रेतीली) मृदाएँ	8–12 t ha^{-1}	गहरी जुताई के साथ	मानसून से पूर्व	जल धारण क्षमता में लगभग 30% वृद्धि

तालिका 4. फसल एवं मृदा प्रकार के अनुसार जैव-चार की अनुशंसित मात्रा एवं प्रयोग विधि।

सीमाएँ एवं सावधानियाँ

यद्यपि जैव-चार मृदा सुधार का एक प्रभावी विकल्प है, फिर भी इसके वैज्ञानिक एवं संतुलित उपयोग के लिए कुछ महत्वपूर्ण सावधानियों का पालन आवश्यक है।

I. 30 टन प्रति हेक्टेयर से अधिक मात्रा के प्रयोग से मृदा का pH अत्यधिक बढ़ सकता है, जिससे जिंक (Zn), लोहा (Fe) एवं मैंगनीज़ (Mn) जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता घट सकती है।

II. क्षारीय मृदाओं ($pH > 7.5$) में जैव-चार का उपयोग करने से पूर्व मृदा परीक्षण अवश्य कराया जाना चाहिए।

III. जैव-चार को NPK उर्वरकों का विकल्प नहीं, बल्कि पूरक मृदा संशोधक (Soil Amendment) माना जाना चाहिए। अतः इसका प्रयोग संतुलित उर्वरक प्रबंधन के साथ करना अधिक उपयुक्त है।

IV. निम्न गुणवत्ता अथवा प्रदूषित बायोमास से तैयार जैव-चार में अवांछित तत्व हो सकते हैं, इसलिए केवल गुणवत्तायुक्त जैव-चार का ही उपयोग किया जाना चाहिए।

V. पहली बार प्रयोग करने से पूर्व छोटे भूखंड पर परीक्षण (Pilot Trial) करना लाभकारी रहता है।

VI. जैव-चार को गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट अथवा तरल जैव उर्वरकों के साथ 'चार्ज' (Activate) करके प्रयोग करने से उसकी प्रभावशीलता एवं पोषक तत्व धारण क्षमता में वृद्धि होती है।

निष्कर्ष

जैव-चार 21वीं सदी की उन महत्वपूर्ण कृषि प्रौद्योगिकियों में से एक है, जो मृदा अवक्रमण, जलवायु परिवर्तन एवं कृषि अवशेष प्रबंधन जैसी तीन प्रमुख चुनौतियों का एकीकृत समाधान प्रस्तुत करती है। टेरा प्रेटा (Terra Preta) की ऐतिहासिक अवधारणा से लेकर आधुनिक कार्बन संरक्षण एवं कार्बन क्रेडिट की अवधारणा तक, जैव-चार ने यह सिद्ध किया है कि यह केवल एक मृदा संशोधक नहीं, बल्कि जलवायु-स्मार्ट एवं टिकाऊ कृषि का एक महत्वपूर्ण घटक है।

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में, जहाँ कृषि अवशेषों की प्रचुर उपलब्धता, विशाल कृषि क्षेत्र तथा मृदा स्वास्थ्य सुधार की आवश्यकता है, वहाँ जैव-चार का उपयोग व्यापक संभावनाएँ रखता है। इसके सफल प्रसार के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान, गुणवत्तायुक्त उत्पादन, किसानों का प्रशिक्षण, स्थानीय स्तर पर उत्पादन इकाइयों की स्थापना तथा प्रभावी नीतिगत सहयोग आवश्यक है।

जैव-चार का वैज्ञानिक एवं संतुलित उपयोग न केवल मृदा स्वास्थ्य और फसल उत्पादकता को सुदृढ़ करेगा, बल्कि कार्बन संरक्षण, पर्यावरण संरक्षण एवं टिकाऊ कृषि विकास की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण कदम सिद्ध होगा।

♣♣♣

पशुपालन में कृत्रिम गर्भाधान : एक वैज्ञानिक एवं लाभकारी दृष्टिकोण

डॉ. प्रबुद्ध दुबे*- पशु प्रजनन, मादा रोग एवं प्रसूति विज्ञान विभाग
डॉ. हिमांशु द्विवेदी- पशु औषधि विभाग पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय, मेरठ

कृत्रिम गर्भाधान (Artificial Insemination; AI) आधुनिक डेयरी पशुपालन की एक अत्यंत महत्वपूर्ण एवं वैज्ञानिक तकनीक है। इस विधि के अंतर्गत उच्च आनुवंशिक गुणवत्ता वाले प्रमाणित नर पशु (साँड़) से वीर्य एकत्रित कर वैज्ञानिक विधियों द्वारा उसकी गुणवत्ता की जाँच की जाती है। तत्पश्चात उसे विशेष तापमान पर सुरक्षित रखकर उपयुक्त समय पर विशेष उपकरणों की सहायता से मादा पशु के गर्भाशय में स्थापित किया जाता है। यह तकनीक न केवल किफायती है, बल्कि पशुधन की नस्ल सुधारने तथा व्यावसायिक उत्पादन बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

मदकाल (गर्मी) के लक्षणों की सही पहचान

कृत्रिम गर्भाधान की सफलता मुख्यतः इस बात पर निर्भर करती है कि मादा पशु के मदकाल (Estrus) की सही पहचान समय पर की जाए। बड़े पशुपालन केंद्रों में इसके लिए प्रशिक्षित कर्मचारियों की नियुक्ति भी की जाती है। मदकाल के दौरान पशु में सामान्यतः निम्नलिखित लक्षण दिखाई देते हैं—

- पशु का बार-बार रंभाना तथा अत्यधिक बेचैनी प्रदर्शित करना।
- पूँछ को बार-बार ऊपर उठाना तथा थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बार-बार मूत्र त्याग करना।
- जननांगों में सूजन एवं लालिमा दिखाई देना तथा पारदर्शी, चिपचिपे श्लेष्म (म्यूकस) का स्राव होना।
- अन्य पशुओं पर चढ़ने का प्रयास करना अथवा उन्हें अपने ऊपर चढ़ने देना।
- प्रारंभिक लक्षण दिखाई देने के लगभग 10–12 घंटे बाद पशु अपेक्षाकृत शांत हो जाता है तथा अन्य पशुओं को अपने ऊपर चढ़ने देता है।

कृत्रिम गर्भाधान के प्रमुख लाभ

1. नस्ल सुधार में तीव्रता: इस तकनीक द्वारा कम समय में देशी एवं कम उत्पादन देने वाली गायों और भैंसों की नस्ल में वैज्ञानिक ढंग से सुधार किया जा सकता है।

2. उत्पादन क्षमता में वृद्धि: प्राकृतिक गर्भाधान में एक स्वस्थ साँड़ वर्षभर में लगभग 100 मादा पशुओं को ही गर्भित कर सकता है, जबकि कृत्रिम गर्भाधान द्वारा उसी साँड़ के वीर्य से लगभग 2,000 या उससे अधिक मादा पशुओं का गर्भाधान किया जा सकता है।

3. संक्रामक एवं प्रजनन रोगों की रोकथाम: प्राकृतिक सहवास के दौरान फैलने वाले अनेक संक्रामक एवं प्रजनन संबंधी रोगों के प्रसार को कृत्रिम गर्भाधान द्वारा काफी हद तक रोका जा सकता है।

4. आर्थिक लाभ: छोटे एवं सीमांत किसानों को महंगे प्रजनन साँड़ रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वे कम लागत पर उच्च गुणवत्ता वाले हिमीकृत वीर्य (Frozen Semen) का उपयोग कर सकते हैं।

5. उत्कृष्ट साँड़ों का अधिकतम उपयोग: यदि कोई उच्च आनुवंशिक क्षमता वाला साँड़ शारीरिक चोट अथवा अन्य कारणों से प्राकृतिक

ISSN: 3049-2211

गर्भाधान करने में असमर्थ हो, तब भी उसके वीर्य का उपयोग कृत्रिम गर्भाधान के माध्यम से किया जा सकता है।

सावधानियाँ एवं चुनौतियाँ

- कृत्रिम गर्भाधान केवल प्रशिक्षित एवं अनुभवी पशु चिकित्सक अथवा तकनीशियन द्वारा ही किया जाना चाहिए।
- प्रक्रिया के दौरान पूर्ण स्वच्छता बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है, अन्यथा गर्भाशय में संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है।
- कृत्रिम गर्भाधान की सफलता मुख्यतः इस बात पर निर्भर करती है कि पशु के मदकाल की सही एवं समय पर पहचान की गई है या नहीं।

सफलता दर बढ़ाने के लिए सर्वोत्तम अभ्यास

- **AM–PM नियम का पालन करें** – यदि पशु सुबह गर्मी में दिखाई दे तो उसी दिन शाम को गर्भाधान कराएँ। यदि शाम को लक्षण दिखाई दें तो अगले दिन सुबह गर्भाधान कराना उपयुक्त रहता है।
- गर्भाधान के दौरान पशु के साथ शांत एवं कोमल व्यवहार करें तथा किसी भी प्रकार के अनावश्यक बल का प्रयोग न करें।
- गर्भाधान प्रक्रिया सावधानीपूर्वक करें। वीर्यवाहक नली (AI Gun) को धीरे-धीरे गर्भाशय ग्रीवा (Cervix) तक पहुँचाकर उचित स्थान पर वीर्य छोड़ें, जिससे गर्भधारण की संभावना अधिक हो।

♣♣♣

डेयरी पशुओं में अमदकाल (गर्मी में न आना): प्रमुख कारण, निदान एवं वैज्ञानिक बचाव

डॉ. प्रबुद्ध दुबे*- पशु प्रजनन, मादा रोग एवं प्रसूति विज्ञान विभाग
डॉ. हिमांशु द्विवेदी- पशु औषधि विभाग पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय, मेरठ

डेयरी पशुओं, विशेषकर गाय एवं भैंस, की प्रजनन क्षमता उनके आर्थिक महत्व का प्रमुख आधार है। सामान्य परिस्थितियों में यौन परिपक्वता प्राप्त करने के बाद मादा पशुओं में नियमित अंतराल पर ऋतुचक्र (Estrous Cycle) चलता है, जिसके दौरान वे गर्मी (Heat/Estrus) में आती हैं और गर्भधारण करने में सक्षम होती हैं। गाय में सामान्य ऋतुचक्र लगभग 21 दिन तथा भैंस में 18–24 दिन का होता है।

प्रसव के बाद गर्भाशय को अपनी सामान्य अवस्था (Uterine involution) में लौटने तथा अंडाशय की सामान्य क्रियाशीलता पुनः प्रारम्भ होने में लगभग 45–60 दिन का समय लगता है। यदि इस अवधि के बाद भी पशु में ऋतुचक्र प्रारम्भ न हो अथवा वह गर्मी के लक्षण प्रदर्शित न करे, तो इस अवस्था को अमदकाल (Anestrus) कहा जाता है।

डेयरी व्यवसाय में लगभग 12–13 माह का कैल्विंग इंटरवल बनाए रखना आर्थिक दृष्टि से लाभदायक माना जाता है। इसके लिए आवश्यक है कि प्रसव के लगभग 60–90 दिनों के भीतर पशु पुनः गर्भधारण कर ले। यदि पशु लंबे समय तक गर्मी में नहीं आता, तो दुग्ध उत्पादन, प्रजनन दक्षता तथा किसान की आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

अमदकाल के प्रकार

1. प्रसवोत्तर अमदकाल (Postpartum Anestrus)

यह प्रसव के बाद सबसे सामान्य रूप से पाया जाने वाला अमदकाल है। सामान्यतः प्रसव के बाद कुछ समय तक पशु में ऋतुचक्र नहीं आता, जो एक प्राकृतिक अवस्था है। किन्तु यदि यह अवधि अत्यधिक बढ़ जाए तो इसे रोगात्मक अमदकाल माना जाता है।

मुख्य कारण

- हार्मोनल असंतुलन
- अपर्याप्त पोषण
- अत्यधिक दुग्ध उत्पादन
- गर्भाशय संक्रमण
- ऊर्जा की कमी (Negative Energy Balance)

2. गर्भाधान के पश्चात दीर्घकालीन अमदकाल

कई बार कृत्रिम गर्भाधान या प्राकृतिक समागम के बाद प्रारम्भिक भ्रूण मृत्यु (Early Embryonic Death) हो जाती है। ऐसी स्थिति में पशु सामान्य समय पर पुनः गर्मी में नहीं आता और अमदकाल जैसा प्रतीत होता है। इस कारण वास्तविक समस्या की पहचान में विलम्ब हो सकता है।

3. मूक मद (Silent Heat)

इस अवस्था में अंडोत्सर्जन एवं सामान्य ऋतुचक्र तो होता है, लेकिन पशु बाहरी रूप से गर्मी के स्पष्ट लक्षण प्रदर्शित नहीं करता। यह समस्या विशेषकर उच्च दुग्ध उत्पादन वाली गायों तथा भैंसों में अधिक देखी जाती है।

अमदकाल के प्रमुख कारण

- गर्भाशय में संक्रमण (Metritis, Endometritis)
- प्रारम्भिक भ्रूण मृत्यु

- ममीकृत अथवा सड़ा हुआ भ्रूण
- पोषण की कमी एवं ऊर्जा असंतुलन
- खनिज एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों (विशेषकर फास्फोरस, कॉपर, जिंक एवं सेलेनियम) की कमी
- परजीवी संक्रमण (कृमि)
- दीर्घकालीन या गंभीर रोग
- ऊष्मीय तनाव (Heat Stress)
- अंडाशय की निष्क्रियता (Ovarian Inactivity)
- ओवेरियन सिस्ट (Follicular/Luteal Cyst)
- जन्मजात दोष जैसे Freemartinism
- अत्यधिक दुग्ध उत्पादन के कारण नकारात्मक ऊर्जा संतुलन
- पशुपालक द्वारा गर्मी के लक्षणों की सही पहचान न कर पाना

निदान (Diagnosis)

अमदकाल के सही कारण का पता लगाने के लिए पशु चिकित्सक द्वारा निम्न परीक्षण किए जाते हैं—

1. इतिहास (History Taking)

- प्रसव का समय
- गर्भाधान का इतिहास
- दुग्ध उत्पादन
- पोषण स्तर
- पूर्व रोगों का इतिहास

2. गुदा परीक्षण (Rectal Examination)

इस परीक्षण द्वारा गर्भाशय एवं अंडाशय की स्थिति का मूल्यांकन किया जाता है।

(क) सक्रिय पीत पिंड (Persistent Corpus Luteum)

यदि अंडाशय पर पीत पिंड बना रहता है तथा पशु गर्मी में नहीं आता, तो यह Persistent Corpus Luteum, गर्भाशय संक्रमण अथवा प्रारम्भिक भ्रूण मृत्यु का संकेत हो सकता है।

(ख) निष्क्रिय अंडाशय (True Anestrus)

इस स्थिति में अंडाशय छोटे एवं निष्क्रिय दिखाई देते हैं तथा उन पर कोई विकसित फॉलिकल या पीत पिंड नहीं मिलता।

3. अल्ट्रासोनोग्राफी (Ultrasonography)

आधुनिक पशु चिकित्सा में गर्भाशय, अंडाशय, फॉलिकल, सिस्ट एवं प्रारम्भिक गर्भधारण की पुष्टि के लिए अल्ट्रासोनोग्राफी अत्यंत उपयोगी तकनीक है।

उपचार (Treatment)

अमदकाल का उपचार उसके वास्तविक कारण पर निर्भर करता है।

- संतुलित पोषण एवं खनिज मिश्रण की पूर्ति
- नियमित कृमिनाशन
- गर्भाशय संक्रमण का उचित उपचार
- हार्मोनल उपचार (GnRH, $PGF_2\alpha$, Progesterone आधारित प्रोटोकॉल) केवल पशु चिकित्सक की सलाह पर
- आवश्यकतानुसार Ovsynch या CIDR आधारित प्रजनन कार्यक्रम
- शरीर की उचित दशा (Body Condition Score) बनाए रखना

वैज्ञानिक बचाव

- पशुओं को संतुलित एवं पौष्टिक आहार उपलब्ध कराएँ।
- पर्याप्त मात्रा में खनिज मिश्रण एवं विटामिन नियमित रूप से दें।
- समय-समय पर कृमिनाशन कराएँ।
- प्रसव के बाद पशु का नियमित प्रजनन परीक्षण कराएँ।
- गर्मी के लक्षणों का प्रतिदिन सुबह एवं शाम ध्यानपूर्वक निरीक्षण करें।
- लंबे समय तक गर्मी न आने पर शीघ्र पशु चिकित्सक से परामर्श लें।
- ग्रीष्म ऋतु में पशुओं को छाया, स्वच्छ पेयजल, पंखे, स्प्रिंकलर अथवा शीतल जल स्नान की सुविधा उपलब्ध कराएँ।
- अधिक दुग्ध उत्पादन वाले पशुओं के लिए ऊर्जा एवं प्रोटीन युक्त संतुलित आहार सुनिश्चित करें।
- कृत्रिम गर्भाधान सही समय पर प्रशिक्षित तकनीशियन द्वारा ही कराएँ।
- नियमित स्वास्थ्य परीक्षण एवं टीकाकरण कार्यक्रम का पालन करें।

निष्कर्ष

अमदकाल डेयरी पशुओं में पाई जाने वाली एक महत्वपूर्ण प्रजनन समस्या है, जिसके कारण दुग्ध उत्पादन, बछड़ा प्राप्ति तथा पशुपालक की आर्थिक आय प्रभावित होती है। अधिकांश मामलों में यह समस्या संतुलित पोषण, उचित प्रबंधन, समय पर रोग निदान तथा पशु चिकित्सक की सलाह अनुसार उपचार से सफलतापूर्वक नियंत्रित की जा सकती है। आधुनिक निदान तकनीकों एवं वैज्ञानिक प्रजनन प्रबंधन को अपनाकर डेयरी पशुओं की प्रजनन क्षमता में उल्लेखनीय सुधार किया जा सकता है।

♣♣♣

कृषक मंच - अगस्त 2026 संस्करण

लोकप्रिय लेखों के लिए आमंत्रण

वेबसाइट: krishakmanch.com

अंतिम तिथि: 28 अगस्त 2026

लेख के विषय:

- कृषि विज्ञान के प्रमुख क्षेत्र: एग्रोनॉमी, बागवानी, कीट विज्ञान, रोग विज्ञान, कृषि प्रसार, कृषि अर्थशास्त्र, जैव प्रौद्योगिकी आदि।
- नवीनतम कृषि तकनीकें।
- फसल प्रबंधन एवं रोग नियंत्रण।
- जैविक खेती एवं प्राकृतिक कृषि।
- जल संरक्षण व सिंचाई तकनीकें।
- सरकारी योजनाएं।

हमारे व्हाट्सएप समूह से जुड़ें: